I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

मार्च-अप्रैल 2024 * भाग 40 - अंक 2

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

भारतीय विद्या मंदिर

Our Vision & Mission

- **Skill Development of Society through Cultural, Ethical & Values of Skilling Practices**
- **Upliftment of humanity through talents of Indian Heritage, Culture, Education & Research**
- **Publication of Books & Magazine**
- **Cultural & Social Activities**
- **Workers Training**
- **Organizing seminars and conferences on science and spirituality**

BHARATIYA VIDYA MANDIR

12/1, Nellie Sengupta Sarani, Kolkata-700087
Email: bvm.vaichariki@gmail.com
Website: www.bharatiyavidyamandir.com
Secretary : Shankar Lal Somani, Mob. : 9830559364

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष व प्रधान-सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध-सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

I.S.S.N. 0975-6531 **वैचारिकी** वर्ष 40 : अंक 2

(धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला)

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

मार्च-अप्रैल 2024 ● फाल्गुन कृष्ण 6, बैशाख कृष्ण 7 वि. सं. 2080-81 ● रु. 50

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** – 03
- **सम्पादकीय** – 05
- **भारतीय संस्कृति का बीज रूप : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा** – रामशरण युयुत्सु 08
- **सोच का ऊर्जा में रूपांतरण** – प्रमोद भार्गव 11
- **कुँवर नारायण की कविता में प्रकृति बोध**– अमरेंद्र पाण्डेय 17
- **केदारनाथ सिंह के काव्य में प्रकृति** – विद्या रजक 22
- **राजेश जोशी की कविताओं में बाल चेतना**– मकेश्वर रजक 27
- **कृष्णा सोबती के उपन्यासों के स्त्री-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन** – रूपा कुमारी साव 32
- **भरतपुर का चारबाग परिसर : कुछ रोक ऐतिहासिक तथ्य** – डॉ. गौरवदीप करौला 37
- **लोकमन और मिथक** – डॉ. राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी 42
- **लोक साहित्य और मिथक (ब्रज प्रदेशीय 'ढोला' के विशेष संदर्भ में)** – डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 48
- **नौटंकी : एक लोक नाट्य विधा** – डॉ. वन्दना चौबे 53
- **छत्तीसगढ़ की जनजातियों में गोदना** – शिव कुमार सिंघल 60
- **हरियाणवी ऐतिहासिक लोक गाथाएं** – रामशरण युयुत्सु 65
- **लोकोक्ति : रचना और अभिव्यक्ति** – डॉ. नीतू परिहार 74
- **राजस्थान का सांस्कृतिक पर्व-गणगौर** – पवन कुमार कल्ला 78
- **लोक पर्व टेसू-विवाह** – रामचरण यादव 81
- **प्राचीन राजस्थान के संस्कृत अभिलेखों में वर्णित नारी-शिक्षा** – रेखा शर्मा 84
- **पाठक मंच** 87

विवाह का बदलता सामाजिक स्वरूप, हमारे पूर्वज हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में, संगमेश्वर मंदिर का नन्दी, अधर में झूलती तीर्थंकर पार्श्वनाथ मूर्ति, मार्कण्डेय शिव मंदिर, अम्बादेवी (म.प्र.) के शैल चित्र, इराक में भारतीय सभ्यता के चिह्न, महत्वपूर्ण बौद्ध स्तूप।

- **प्रतिस्वर** 93

- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता होगा।

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर

12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी

कोलकाता-700087

दूरभाष : 033-71001614

मो. : 09830559364

ई-मेल :

bvm.vaichariki@gmail.com

वेबसाइट :

www.bharatiyavidyamandir.com

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 450/- रुपये

द्वैवार्षिक 900/- रुपये

सदस्यता शुल्क भेजने हेतु :–

Payee's Name :

BHARATIYA VIDYA MANDIR

Current A/c.No. : 32030320176

Bank : State Bank of India

Branch : New Market

IFSC Code No. : SBIN0004662

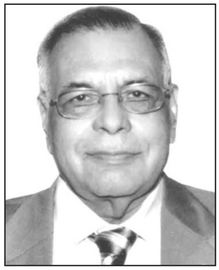

अध्यक्षीय

भारतीय समाज के जीवन-मूल्य और जीवन शैली बदल रही है। अपने निजी अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि आज की तुलना में मेरे बचपन के दौरान हमारी जीवन शैली अधिक स्वस्थ और उदात्त थी। एक ओर जीवन शैली बिगड़ती चली गई, दूसरी ओर खानपान की वस्तुएं भी प्रदूषित होती चली गईं। प्रकृति से दूर जाने का दुष्परिणाम हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक स्वास्थ्य पर भी लक्षित किया जा सकता है। प्रकृति के निकट जाने और प्रकृति के अनुकूल जीवनचर्या से हम कई समस्याओं से बच सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम प्रकृति के साथ समरस सम्बंध विकसित करें और उसके अनुकूल जीवन जियें।

प्रकृति से दूर जाने का एक परिणाम हमारी चित्तवृत्तियों में परिवर्तन के रूप में भी दिखाई देता है। हमारा सरस और सामंजस्यपूर्ण पारिवारिक और सामाजिक जीवन शनै-शनै शुष्क और विच्छिन्न होता चला जा रहा है। आदमी का अंतर्मन दुर्बल और संदेहशील हुआ है। आपसी विश्वास और भरोसे का स्थान अविश्वास और संदेह ने ले लिया है। भौतिक सम्पदा अर्जित करने के उत्साह में हम मानवीय संबंधों को उचित गरिमा देने में चूकते-से दिखाई देते हैं। भौतिक समृद्धि को अधिक महत्व देने के कारण आज हम अधिकाधिक स्टेटस कांशस हो गये हैं। अब मित्रता भी हैसियत देखकर बराबर के लोगों में होने लगी है। ऐसी मैत्री अलगाव को तो प्रश्रय देती ही है, ईर्ष्या को भी जन्म देती है। मित्रों के आपसी संवाद में– उनकी भाषा में– व्यंग्य का तत्व बढ़ गया है जो एक-दूसरे को नीचा दिखाने का ही उपक्रम प्रतीत होता है। यह स्थिति इनफीरियरिटी कॉम्प्लेक्स से– हीन भावना से– ही पोषण पाती है। आज के अधिकतर धनाढ्य लोग एक दूसरे की समृद्धि का आकलन करने में लगे रहते हैं। आज के विद्वानों का भी यही हाल है। वे अकारण एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या और द्वेष से भरे दिखाई देते हैं। हम शक्ति और सम्पदा से सम्पन्न-सफल व्यक्तियों का अनुमोदन और प्रशंसा पाना चाहते हैं किंतु बिना स्वार्थ के वह भी सुलभ नहीं होती दिखती। जो हमसे कमजोर और परिस्थितियों के मारे हैं उनके लिए न तो हमारे पास समय है और न ही सहायता का कोई भाव हमारे मन में आता है। कैसे थे वे कृष्ण जो अपने मित्र सुदामा की दुर्दशा पर करुणा से आप्लावित हो उठे थे। इस प्रसंग की पुनर्रचना करता कवि नरोत्तम दास का कितना सुंदर सवैया मिलता है–

ऐसे बेहाल बेवाइन सों, पग कंटक-जाल लगे पुनि जोए।
हाय? महादुख पायौ सखा, तुम आए इतै न कितै दिन खोए।
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानि परात को हाथ छूयौ नहिं, नैनन के जल सों पग धोए।।

काश! इसका एक अंश भी हमारे समाज में आ पाता। परिवारों में भी आपसी सम्बंध और संवाद का स्तर गिरा है। पिता-पुत्र और भाई-भाई के बीच भी अब संवाद की कमी है। बचपन में पुत्र अपने पिता को कुछ नहीं कह पाता और बाद में युवा पुत्र को कुछ भी कहते पिता संकोच करता है। संबंधों में स्वस्थ संवाद और समुचित पारदर्शिता आवश्यक है। इधर हम व्यक्ति की 90% अच्छाई को छोड़कर उसकी 10% कमी पर ज्यादा ध्यान देकर सम्बंधों को बिगाड़ लेते हैं। पूर्ण कोई नहीं होता सो हमें व्यक्ति को वह जैसा है, वैसा ही स्वीकार या अस्वीकार करना होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम अपने व्यक्तित्व को ही दमित कर लें, पर इतना साहस तो अवश्य होना चाहिए कि हम सच कह सकें– उचित और संगत भाषा में सच कह सकें।

❖ ❖ ❖

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के वेद विज्ञान विभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठी में विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित होने का अवसर मिला था। पिछले अध्यक्षीय में मैंने वेद और विज्ञान विषय पर केंद्रित इस संगोष्ठी में व्यक्त अपने विचारों का कुछ अंश साझा किया था। उसका दूसरा भाग सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत है :–

वेद का आविर्भाव :– वेद बहुत प्राचीन ग्रन्थ हैं। इसका समय निर्धारण देश-विदेश के बहुत सारे अध्येताओं ने किया है। विदेशी विद्वानों ने सामान्यतः वेद का समय 1000 से 3000 ई.पूर्व तक माना है। लेकिन लोकमान्य तिलक सहित भारतीय विद्वानों ने वेदों को ईसा से 6 हजार वर्ष पूर्व की रचना माना है।

वेद में विज्ञान :– वेद अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं और इसमें बहुत से वैज्ञानिक विचारों का प्रतिपादन देखने को मिलता। दुर्भाग्य की बात यह है कि जब भी कोई नवीन वैज्ञानिक विचार, सम्प्रत्यय या आविष्कार होता है तब हम उस आविष्कार के मूल का पता लगाते हुए वेद तक पहुँच जाते हैं। जबकि हमें वेदों में ही विभिन्न वैज्ञानिक विचारों और सम्प्रत्ययों की जो परिकल्पना दी गयी है उसका गम्भीर अध्ययन करना चाहिए। जिससे हमारे सामने विज्ञान की नयी दिशाएं और नया क्षितिज खुले। जब महर्षि दयानन्द ने प्राचीन भारत की भौतिक उन्नति के प्रमाण के रूप में वेदों में वर्णित उड़ने वाले विमान का ज़िक्र किया तो ए. ओ. ह्यूम ने महर्षि दयानन्द को पागल कहते हुए टिप्पणी की थी कि मनुष्य कभी भी आकाश में नहीं उड़ सकता। विमान का आविष्कार होने के बाद ह्यूम ने अपनी टिप्पणी पर खेद व्यक्त किया और क्षमायाचना की।

वेदों में विभिन्न विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं। वेदों में निहित वैज्ञानिक रहस्यों के प्रतिपादन की पद्धति गूढ़ और श्रमसाध्य है। यास्क ने इसीलिए लिखा कि 'न ह्येषु प्रत्यक्षमस्ति अनृषेरतपसो वा' (निरुक्त 13.12)। अर्थात जो ऋषि या तपस्वी नहीं है, उसको मंत्रों के अर्थ का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है। जो कठोर परिश्रम करेगा, वही उस रहस्य को समझ सकेगा। यही कारण है कि अत्यंत अनुभवी और सिद्ध अध्येता ही इस ओर प्रवृत्त हुए।

तैत्तिरीय आरण्यक और तैत्तिरीय उपनिषद में कहा गया है– *'विज्ञान यज्ञ तनुत, कर्माणि तनुतऽपि च।'* अर्थात विज्ञान से यज्ञ का तथा कर्मों का विस्तार होता है। गीता में भी कहा गया है– *'ज्ञानतऽह सविज्ञानम' तथा 'ज्ञान विज्ञान सहितम'।* यहां भी ज्ञान और विज्ञान दोनों पर बल दिया गया है।

परा और अपरा विद्या :– मुंडकोपनिषद अनुसार परा यौगिक साधना है और अपरा अध्यात्मिक ज्ञान है। जिस विद्या से 'अक्षरब्रह्म' का ज्ञान होता है, वह 'परा' विद्या है और जिससे ऋक्, यजु, साम, अथर्व, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष का ज्ञान होता है, वह 'अपरा' विद्या है। अतः विद्या दो प्रकार की होती है– 1. अपरा विद्या (Physics) 2. परा विद्या (Meta Physics)। बुद्धि (प्रज्ञा) भी दो प्रकार की होती है– 1. व्यवसायात्मिका बुद्धि, 2. निश्चयात्मिका बुद्धि (स्थितप्रज्ञ, ऋतम्भरा प्रज्ञा)।

इस वक्तव्य का शेष भाग पत्रिका के अगले अंकों में साझा करूंगा।

– डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

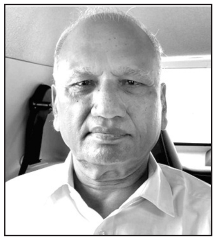

सम्पादकीय

14 फरवरी को वेलेंटाइन डे की तो धूम रही, परंतु बंगाल को छोड़कर अन्यत्र **बसंत पंचमी** पर सरस्वती पूजा की वैसी धूम नहीं रही। दीपावली पर लक्ष्मी पूजा का जोर रहता है, इसलिए कि धन की देवी हैं, ज्ञान-साहित्य-कला की देवी सरस्वती की उतनी पूछ नहीं? वैदिककाल में सरस्वती पूजा की धूम थी। हिमालय से निकलकर हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान में प्रवाहित रहने वाली सरस्वती (जल से भरपूर) नदी के तटों पर ही विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद की अधिकांश प्रारंभिक ऋचाओं की रचना हुई। इस सरस्वती के जल से ही वेद, विद् अर्थात ज्ञान की प्राप्ति हुई और फिर यह नदी ज्ञान की देवी सरस्वती के रूप में पूज्य हुई। बसंत ऋतु आते ही हिमालय के विशाल हिमशैल पिघलने लगते और नदी में जल की आवक बढ़ जाती थी, नदी सरस्वती का पाट जल से भर जाता था तब वैदिक ऋषिगण माघ शुक्ल पंचमी को बड़ा उत्सव कर सरस्वती नदी की पूजा करते, वसंत आगमन का आनन्द लेते और नई ऋचाओं की रचना कर उत्फुल्ल हो रही प्रकृति का स्तवन करते।

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को भारतीयों का **होली** एक सामूहिक त्यौहार है जो वस्तुतः एक माह के वसंतोत्सव या मदनोत्सव के साथ-साथ फसल पकने पर होने वाला नवान्नोत्सव (होली) भी है। माघ शुक्ल पंचमी (बसंत पंचमी) से रात्रि में डफ पर धमाल और फाल्गुन पूर्णिमा को एक निश्चित स्थान पर होली जलाई जाती है, जो वस्तुतः बिना किसी विधि-विधान या अनुष्ठान से होने वाला सामूहिक यज्ञ है जिसमें लोग नवान्न के गुच्छे पकाकर होला बनाते, खाते हैं। कालांतर में इसमें हिरण्यकशिपु-प्रह्लाद-होलिका की कथा और कृष्ण-गोपियों की जलक्रीड़ा का प्रवेश कर दिया गया। दूसरे दिन परस्पर धूल या छार डालकर धुलंडी/छारंडी का खेल होता है व लड़कियों द्वारा गौरी-पूजा प्रारम्भ होती है।

नव वि.सं. 2081 की शुभकामनाएं :- चैत्र शुक्ल एकम या वर्ष-संवत्सर प्रतिपदा को नववर्षारम्भ पर सामूहिक उत्सव की परम्परा हमारे नहीं है, अब इसे ईसाई नववर्ष 1 जनवरी की नकल पर सामूहिक उत्सव बनाने के हास्यास्पद प्रयास हो रहे हैं। नव वर्ष के प्रारम्भिक 9 दिन देवी के वार्षिक अथवा वासंतिक नवरात्र अनुष्ठान (वैयक्तिक) के निमित्त हैं। इसमें 9 दिन दुर्गासप्तशती के पाठ व हवनादि का आयोजन होता है। इसके अनुकरण पर राम-मंदिरों में भी नवरात्र-अनुष्ठान होने लगे हैं जिनका समापन भगवान राम के जन्म-दिन नवमी को उत्सव के रूप में होता है। इस अनुष्ठान में रामचरितमानस का नवाह्न पारायण होता है, कहीं कहीं वाल्मीकि रामायण का पारायण होता है।

रामनवमी चैत्र शुक्ल नवमी राम का जन्म-दिन। पुराणों में वर्णित दशावतारों में से राम का चरित्र ही भारतीय अथवा हिन्दू सनातन संस्कृति का आदर्श बना। इसी आदर्श के कारण

राम का नाम परस्पर अभिवादन (राम-राम) बन गया और उत्तर भारत में तो जन-जन का आराध्य। एकमात्र रामकथा ही है जिसको लेकर प्राचीनकाल से साहित्य-रचना का क्रम प्रारम्भ हुआ। संस्कृत में प्रथम महाकाव्य 'रामायण' की रचना हुई, फिर रघुवंश, उत्तर राम चरित आदि और तदुपरांत रामकाव्यों की रचना का सिलसिला चल पड़ा।

भारत के लगभग सभी प्रांतों और कई पूर्वी दक्षिणी देशों की अपनी-अपनी राम-कथाएं हैं, विश्व भर में 300 रामकथाएं हैं और राम नाम तो पश्चिम एशिया तथा यूरोप में भी स्थानों एवं व्यक्तियों के नामों से संयुक्त है। विश्व भर में किसी अन्य महापुरुष की इतनी स्मृतियां नहीं हैं। राम केवल साकार लीलाधाम होकर ही पूज्य नहीं हुए अपितु निराकार ब्रह्म के भी पर्याय बन गये। यह अद्भुत रहा कि उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा में लीला पुरुषोत्तम राम की साकार पूजा भी प्रचलित हई तो कबीर आदि जैसे निराकार उपासकों की संत परम्परा भी विकसित हुई जिसमें राम परब्रह्म के रूप में उपासनीय हैं, हां ये दोनों परम्पराएं इस बात पर एकमत हैं कि 'कलियुग एक नाम आधारा, सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा'। राम के नाम में समस्त विविध देवत्व का आधान हो गया। यद्यपि प्राचीनतम शिव-शक्ति की उपासना समस्त भारत में प्रचलित है, जिसका कि उत्तर-पूर्व में वर्चस्व है जहां राम-मंदिर अल्प हैं, जबकि दक्षिण में शिव के साथ विष्णु की प्रधानता है। वैदिक ब्राह्मणों ने अपने वैदिक आग्रह के कारण सभी दसों महापुरुषों को विष्णु-अवतार घोषित कर उनको एक गौण वैदिक देवता विष्णु के अधीन कर दिया। दुर्भाग्य है कि हममें से ही कई लोग इस महान व्यक्तित्व राम को काल्पनिक बताते हैं? जबकि अकबर इलाहाबादी भी राम को हिन्द का इमाम लिखते हैं और अयोध्या से रामेश्वरम् व नेपाल तक राम के अनगनित स्मारक हैं।

वस्तुतः समस्त **भारत का एक समग्र इतिहास** अभी तक तैयार नहीं किया जा सका है जिसमें भारतीय राष्ट्रीय दृष्टि का विनियोग हो, जो इतिहास ग्रंथ हैं उनमें भारत के अलग-अलग भू-भागों या प्रांतों का इतिहास है जिसमें भी अधिकांश 12वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुए गुलामी के काल के हैं जिनमें आक्रमणकारी सुल्तानों, बादशाहों का तो विस्तार से उल्लेख है, परन्तु उनका प्रतिरोध करने वाले भारतीय वीरों की उपेक्षा है, जैसे कि स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में बलिदानी क्रांतिकारियों की उपेक्षा की गई है। यह विडम्बना है कि उत्तर-दक्षिण-उत्तरपूर्व के ज्यादातर भारतीय एक-दूसरे के इतिहास से अनभिज्ञ हैं, ऐसे में वे भारत की एक राष्ट्रीय अवधारणा से कैसे जुड़ सकेंगे?

यह सही है कि हमारे पास संसार के प्राचीनतम ग्रंथ वेद हैं और उनसे संबंधित ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, उपवेद आदि हैं तथा रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्य एवं 18 पुराण-उपपुराण हैं एवं अन्य संस्कृत-साहित्य उपलब्ध है, साथ ही दक्षिण की तमिल आदि भाषाओं में व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी साहित्य उपलब्ध है, परंतु इन सबमें कल्पनाओं, मिथकों, सुनी-सुनाई बातों-बतंगड़ों एवं धार्मिक घटाटोपों, श्राप-वरदान की स्वार्थपूर्ण धंधात्मक कथाओं में से इतिहास खोज लेना असंभव तो नहीं कठोर श्रमसाध्य है और जिसमें भारतीयता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण की जरूरत है। मुस्लिम शासकों में तवारीख और आत्मकथा लिखने का रिवाज था। इनके अनुसरण से राजपूत राज्यों और शासक राजवंशों की ख्यातें-बातें लिखी जाने लगी। अंग्रेजों के शासन में यूरोपीय लोगों की जिज्ञासा वृत्ति और यूरोपीय विश्वविद्यालयों, संस्थानों की शोधपरक प्रवृत्तियों के कारण विदेशी अधिकारियों, विद्वानों, शोधार्थियों ने भारतीय संस्कृति, भाषा-साहित्य, इतिहास-पुरातत्व की गहन खोजबीन की जिससे इन सबसे संबंधित वैश्विक प्रकाशन हुआ और स्वयं हम भी अपने अतीत से अवगत हुए, निश्चित ही इन विदेशियों के प्रति कृतज्ञता है, तथापि उनकी सीमाएं भी थी और उनके कुछ आग्रहपूर्ण दृष्टिकोण भी थे। इन्होंने भारतीय इतिहास को भगवान बुद्ध के आविर्भाव से प्रारम्भ कर इसे केवल 2500 वर्ष का घोषित कर दिया और इससे पूर्व को प्रागैतिहास या अनैतिहास कहकर अंधेरे में छोड़ दिया। जैसी कि हमारी प्रवृत्ति है इनके पीछे लग गये और स्वामी विवेकानन्द

जैसे प्रखर विचारक के आह्वान के बावजूद अपने गौरवपूर्ण अतीत की उपेक्षा अभी भी किए हुए हैं। इतिहास लेखन में अधिकांश में पुरातात्विक साक्ष्यों को महत्व दिया जाता है, और निश्चित ही इनका महत्व निर्विवादित है, परंतु इनके अलावा साक्ष्य भी कम महत्व के नहीं होते और इनका उपयोग कर एक स्वतंत्रचेत्ता मनीषा से इतिहास लेखन किया जाना चाहिए और इसके लिए भारत सरकार द्वारा व्यापक महत्वाकांक्षी परियोजना का निर्माण (राष्ट्रीय स्तर पर देश के समस्त भूभागों-प्रांतों सहित) किया जाना चाहिए जिसमें केवल राजनैतिक ही नहीं आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिकताओं इत्यादि का भी समावेश किया जाना चाहिए। यहां इस मंतव्य का कुछ बिन्दुओं में उल्लेख करना चाहता हूं–

❖ वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों, रामायण (वाल्मीकीय), महाभारत एवं पुराणों का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन कर निष्कर्ष निकाले जायें।

❖ संस्कृत एवं प्रांतीय भाषाओं के साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन उपयोग किया जाये।

❖ प्राचीन एवं पूर्व मध्यकाल के संबंध में एकमात्र ऐतिहासिक ग्रंथ कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' का इतिहास लेखन में उपयोग किया जाना चाहिए। राजतरंगिणी में दी गई क्रोनोलॉजी के आधार पर प्रसिद्ध इतिहासकार श्री कोटावेंकटचलम (1885-1959) ने प्रचलित इतिहास की क्रोनोलाजी का पुनर्निर्धारण किया है, इसे महत्व दिया जाना चाहिये।

❖ श्री नीलकण्ठ ओक द्वारा 'रामायण', 'महाभारत' के ज्योतिषीय उल्लेखों के आधार पर रामायण एवं महाभारत का कालनिर्धारण किया है जो इस प्रकार है– राम-रावण युद्ध 12209 वर्ष पूर्व और कौरव-पाण्डव युद्ध 5561 वर्ष पूर्व हुए ज्योतिषीय साक्ष्य प्रामाणिक हैं। सुश्री रूपा भाटी भी इन साक्ष्यों का उपयोग कर भारतीय इतिहास के कालनिर्धारण हेतु प्रयासरत हैं। इनका एक लेख वैचारिकी के नवम्बर-दिसम्बर 2023 अंक में प्रकाशित हुआ है।

❖ विभिन्न हुए उत्खननों में प्राप्त साक्ष्यों का और वैज्ञानिक अध्ययन कर क्रोनोलॉजी में उपयोग किया जाना चाहिए। साथ ही नये सर्वेक्षणों का उपयोग किया जाए। उदाहरणार्थ द्वारका के पास समुद्र में किये गये सर्वे में सीढ़ियां, शेर, मूर्तियां व अन्य शिल्प मिले हैं, जिनका समय 9000 वर्ष पूर्व का आंका गया है। विभिन्न प्रांतों में हुए उत्खननों एवं वहां के पुरातत्व का एकीकृत अध्ययन आवश्यक है।

❖ प्रसंगवश गोवर्धन पीठ (पुरी) के शंकराचार्य-स्वामी निश्चलानन्दजी के संबंध में उनके पूर्व सचिव श्री शंकरलाल सोमानी ने सूचित किया था कि वे 145वें शंकराचार्य हैं। यदि यह तथ्य सही है तो आचार्य शंकर का समय लगभग 3600 वर्ष पूर्व हो जाता है, जबकि उनका समय 1200-1300 पूर्व माना जाता है। इस दृष्टि से शंकराचार्यों की परम्परा गवेषणीय है, जिससे उसका उपयोग इतिहास लेखन में हो सके।

– डॉ. बाबूलाल शर्मा

जिस दिन हमने सोच लिया कि हमने ज्ञान पा लिया है,
हमारी मृत्यु हो जाती है। क्योंकि, इसके बाद
अब ना कोई आश्चर्य होगा, ना कोई आनन्द होगा।
इसीलिए नया-नया ज्ञान पाने के लिए
उत्सुक रहना चाहिए। ***ओशो***

भारतीय संस्कृति का बीज रूप : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा

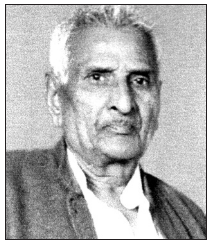

रामशरण युयुत्सु

विश्व में भारत एक अति विशिष्ठ, अद्‌भुत और विलक्षण देश है, इसकी विशेषता पूरे विश्व में एक दम प्राकृतिक और वैज्ञानिक है। यहाँ जो भी है, सभी वैज्ञानिक आधार पर है, जो विज्ञान की कसौटी पर शत-प्रतिशत खरा है। यहाँ का इतिहास भी सृष्टि रचना से शुरू होता है, जो एक अरब 97 करोड़ 29 लाख 49 हजार 100 से अधिक वर्ष पुराना है। भारत की काल गणना भी इसी के समकक्ष अर्थात प्राचीन है। भारतीय पंचांग का जन्म भी अत्यंत प्राचीन है। भारत में पंचांग भी कई प्रचलित हैं, जिनमें से ईस्वी सन् (युरोपिय पद्धति पर आधारित) आदि एक दो को छोड़कर सभी खगोलीय वैज्ञानिक पद्धति से काल गणना पर आधारित हैं। परन्तु खेद का विषय है कि भारत में स्वतंत्रता के बाद भी एक अंग्रेज पादरी के नाम पर ग्रेगोरियन वर्ष से गणना की जनवरी मास को नववर्ष के प्रारम्भ के रूप में मनाया जाता है।

पाश्चात्य खगोल शास्त्री, दार्शनिक विचारक जो सिद्धांत स्थिर करते है, आगे चलकर काल क्रम में उनको बदलना भी आवश्यक हो जाता है। यथा पश्चिम के धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि इस विश्व की उत्पत्ति 6-7 हजार वर्ष पूर्व हुई। यूरोप का पंचांग भी ईस्वी सन् जितना ही है। इसका कोई भी वैज्ञानिक अथवा खगोलीय आधार नहीं है, परन्तु इसकी पद्धति बहुत ही आसान है; इसी कारण से अनेक देशों ने इसको स्वीकारा है। स्वीकृति देने वाले इन देशों में भारत भी एक है, 14वीं शताब्दी तक यूरोप को गिनती करनी भी नहीं आती थी। भारत ने यूरोप को गिनती करनी सिखाई। यूनान के किसी भी गणितज्ञ को आज भी यदि एक अरब की संख्या लिखने को कहा जाये तो वह इसके लिए काफी समय लेगा, परन्तु एक भारतीय तत्क्षण लिख देगा।

वस्तुत प्राचीन काल में ग्रेगोरियन कलैण्डर अर्थात रोमन कैलेण्डर का निर्माण भी भारतीय पंचांग की नकल पर ही किया गया था। मासों के नाम का क्रम भी भारतीय क्रमानुसार लिया गया, यथा सप्ताम्बर से सितम्बर, अष्टाम्बर से अक्टोबर, नवाम्बर से नवम्बर तथा दशाम्बर से दिसम्बर। यही कारण है कि ग्रेगोरियन कैलेण्डर की गणना में दिसम्बर वर्ष का अन्तिम मास न होकर 10वां मास है, अन्तिम मास तो फरवरी है। इसका प्रमाण है कि जब दिनों की संख्याओं में जमा-घटाना किया जाता है तो वह अन्त में होता है, न कि बीच में। उदाहरण के रूप में लीप वर्ष में जब एक दिन बढ़ता है, तो उसका प्रभाव अन्तिम मास फरवरी पर पड़ता है, जिसके कारण फरवरी महीने में दिनों की संख्या 28 की अपेक्षा 29 हो जाती है।

संसार में नववर्ष का समारोह विभिन्न ढंगों से मनाया जाता है। परन्तु नए वर्ष का जैसा समारोह ईसाई परम्पराओं के साथ मनाया जाता है, वैसा दुनियां के किसी अन्य धर्म या संस्कृति में इतने बड़े पैमाने पर नहीं मनाया जाता है, इसी से सर्वत्र इसका प्रचलन हो गया है। किसी संस्कृति में नाच-गाकर नववर्ष का स्वागत किया जाता है, तो कहीं पूजा-पाठ व ईश्वर की

आराधना करके। ईसाई समाज 1 जनवरी को नववर्ष मनाता है। लगभग 4000 वर्ष पूर्व बेबीलोन में नया वर्ष 21 मार्च को मनाया जाता था, जो कि बसंत के आगमन की तिथि मानी जाती थी। तब रोम के तानाशाह जुलियस सीजर ने ईसा पूर्व 45वें वर्ष में जुलियन कैलेंडर की स्थापना की, उस समय विश्व में पहली बार 1 जनवरी को नए वर्ष का उत्सव मनाया गया। तब से परम्परा नहीं बदली तथा आज तक ईसाई धर्म के लोग इसी दिन (1 जनवरी को) नववर्ष मनाते हैं। अब यह विश्व में सबसे अधिक प्रचलित नववर्ष है।

हिन्दू नववर्ष का प्रारम्भ चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा से माना जाता है। इसे हिन्दू नव संवत्सर या नव संवत् कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि भगवान ब्रह्मा ने इसी दिन से सृष्टि की रचना प्रारम्भ की थी। इसी दिन से विक्रम संवत के नववर्ष का आरम्भ भी होता है। इसे गुड़ी पड़वा, उगादि आदि नामों से भारत के अनेक क्षेत्रों में मनाया जाता है। सिक्ख धर्म के अनुयायी पंजाब में नववर्ष वैशाखी पर्व के रूप में मनाते हैं। सिक्ख नानकशाही कैलेंडर के अनुसार होला मोहल्ला (होली के दूसरे दिन) नया साल होता है।

क्रिसमस को हालांकि ईसा मसीह के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है, लेकिन ईसाई विद्वान इस बात पर लगभग एकमत हैं कि ईसा के जन्म का वास्तविक दिन यह नहीं है। ...तो फिर 25 दिसम्बर को उनका जन्म दिन मनाने की परम्परा कैसे शुरू हुई? हुआ यूँ कि जब ईसाई धर्म यूरोप पहुँचा तो वहाँ कई त्यौहार पहले ही से प्रचलित थे। इन में प्रमुख था, 25 दिसम्बर को सूर्य के उत्तरायण होने का पर्व था। इस तिथि से दिन का लम्बा होना शुरू होने के कारण इसे सूर्य देवता के पुनर्जन्म का दिन भी माना जाता था। फिर सूर्य देवता के पुनर्जन्म का पर्व ईसा के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाने लगा। शुरू में इस बात को लेकर मतभेद भी था कि क्या ईसा का जन्म दिन मनाया जाना चाहिए। क्योंकि तब ईसा के बलिदान तथा पुनरुत्थान का पर्व ईस्टर ही ईसाइयों का प्रमुख त्यौहार हुआ करता था।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नवम्बर 1952 में वैज्ञानिक और औद्योगिक परिषद् के द्वारा पंचांग सुधार समिति की स्थापना की गई। समिति ने 1955 में सौंपी अपनी रिपोर्ट में विक्रमी सम्वत को भी स्वीकार करने की सिफारिश की थी। किन्तु तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के आग्रह पर ग्रेगोरियन कलैण्डर को ही सरकारी कामकाज हेतु उपयुक्त मान कर 22 मार्च 1957 को इसे राष्ट्रीय कलैण्डर के रूप में स्वीकार कर लिया गया। ईस्वी सन् के नाम से जाने जाने वाले ग्रेगोरियन कलैण्डर का भारत में प्रचलन अंग्रेजी शासकों ने 1752 में आरम्भ किया। अधिकांश राष्ट्रों के ईसाई होने और अंग्रेजों के विश्वव्यापी प्रभुत्व के कारण ही इसे विश्व के अनेक देशों के साथ ही भारत ने भी अपनाया।

भारत की जनता में पंचांग सम्राट विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित विक्रमी सम्वत् की पद्धति से प्रचलित है जबकि सरकारी गजट प्रकाशन में अंग्रेजी कलैण्डर के साथ-साथ शक-सम्वत् का प्रयोग किया जाता है। अब इतिहास लेखन में विक्रमी सम्वत् के साथ ही युगाब्द का उपयोग भी होने लगा है। वर्तमान युगाब्द चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होता है। चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमं ऽहनि। शुक्ल पक्षे समग्रे तुनदा सूर्योदये सति।। अर्थात चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिवस सूर्योदय के समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। प्रसिद्ध वैज्ञानिक भास्कराचार्य अपने विख्यात ग्रन्थ 'सिद्धांत शिरोमणि' में लिखते हैं कि चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में रविवार के दिन से मास, वर्ष और युग एक साथ शुरू हुए। इसके मनाने (पूजन) की विधि 'उत्सवचन्द्रिका', 'पंचांगपारिजात', 'निर्णयसिन्धु', 'विष्णुधर्मोत्तर तथा 'दानचन्द्रिका' में विस्तार दी गई है। 'अथर्ववेद' में निर्दिष्ट है- संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वां रात्र्युपास्महे। सा न आयुष्मती प्रज्ञा रायस्पेषिण संसृज।। वेद में संवत्सर स्वरूप प्रजापति की प्रतिमा का पूजन बताया गया है। 'यजुर्वेद' में संवत्सर की पूजा का यह मंत्र है– संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीडावत्सरोऽसि अनुवपसरोऽसि वत्सरोऽसि। 'शतपथ ब्राह्मण' में भी इस पर्व का उल्लेख मिलता है। इसके वैदिक और पौराणिक स्वरुप में केवल इतना ही अन्तर है कि जहाँ

वेद में संवत्सर-रूप प्रजापति की प्रतिमा का पूजन लिखा है, वहाँ पुराणों में ब्रह्मा जी की मूर्ति के पूजन का विधान है। युगाब्द की काल गणना किसी व्यक्ति या ऐतिहासिक घटना पर आधारित न होकर विशुद्ध खगोल-विज्ञान पर आधारित है।

1752 से पहले ईस्वी सन् 25 मार्च से प्रारम्भ होता था, किन्तु फिर इसकी शुरूआत एक जनवरी से होने लगी। जिस प्रकार ईस्वी सन् का सम्बन्ध ईसाई जगत से है उसी प्रकार हिजरी सन् का सम्बन्ध मुस्लिम जगत से है। किन्तु विक्रमी सम्वत् का सम्बन्ध किसी भी धर्म से न होकर सारे विश्व के खगोल सिद्धांत व ब्रह्माण्ड के ग्रहों-नक्षत्रों से है। भारतीय कालगणना पंथ निरपेक्ष है। नवसम्वत् यानि संवत्सरों का वर्णन यजुर्वेद के 27वें व 30वें अध्याय के मंत्र क्रमांक 45 व 15 में विस्तार से दिया गया है। सौर मण्डल के ग्रहों व नक्षत्रों की चाल व निरन्तर बदलती उनकी स्थिति पर ही हमारे दिन, महीने, वर्ष और उनके सूक्ष्मतम भाग आधारित होते हैं।

भारत में सम्वत् का पहला दिन तथा संवत् उसी राजा के नाम पर प्रारम्भ होता था, जिसके राज्य में न कोई चोर हो, न अपराधी हो और न ही कोई भिखारी हो, साथ ही राजा चक्रवर्ती सम्राट भी हो। सम्राट विक्रमादित्य ने 2080 वर्ष पूर्व इसी दिन अपना राज्य स्थापित संवत प्रवर्तित किया था। वास्तव में वर्ष प्रतिपदा ही हमारा गौरवमयी राष्ट्रीय पर्व है। क्या एक जनवरी के साथ ऐसा कोई एकभी प्रसंग जुड़ा है, जिससे राष्ट्र प्रेम जाग सके, स्वाभिमान जाग सके या श्रेष्ठ होने का भाव जाग सके। आइये, विदेशी को फैंक स्वदेशी को अपनाएं। मानसिक दासता से मुक्त होकर हम अपना नववर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन मनाये। मानसिक दासता से मुक्त होकर हम अपना नववर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन मनायें।

सहायक ग्रंथ

1. वैवस्वत मन्वन्तर में मानव सृष्टि..., सं. विद्याचन्द ठाकुर, भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति, दिल्ली। **2.** विश्व की कालयात्रा, वासुदेव पोद्दार, भारतीय विद्या मंदिर कोलकाता। **3.** भारतीय काल गणना की रूपरेखा, डॉ. दामोदर झा, योगक्षेम प्रतिष्ठान, दिल्ली। **4.** भारतीय इतिहास माला, भाग-1, श्रीराम साठे, श्री बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति, नागपुर। **5.** इतिहास लेखन योजना, दिशा-निर्देश, डॉ. विद्याचन्द ठाकुर, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी, जिला हमीरपुर (हि.प्र.)। **6.** भारतीय नववर्ष का प्रतीक वर्षप्रतिपदा, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली। **7.** कैलेंडर की यात्रा कथा, योगेशचन्द्र शर्मा, दैनिक ट्रिब्यून, चंडीगढ़।

❑❑

श्री अंगिरा शोध संस्थान,
419/3, शांति नगर, पटियाला, चौक
जिन्द-126102 (हरियाणा)
मो. 9416387432

शिक्षा की जड़ें कड़वी होती हैं लेकिन फल मीठा होता है। -अरस्तु

अरस्तू के सर्वश्रेष्ठ शैक्षिक उद्धरणों में से एक, यह कथन केवल उस संघर्ष की वास्तविकता को व्यक्त करता है जिसे हर कोई शिक्षा प्राप्त करने के वर्षों के दौरान झेलता है। जबकि आपको रास्ते में कई संघर्षों और बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है, केवल एक चीज जो आपको यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि आप इसे अपना सर्वश्रेष्ठ दे रहे हैं। अपनी गलतियों के साथ-साथ आपके सामने आने वाली कठिनाइयों से सीखें क्योंकि ये सभी आपके कौशल और क्षमताओं को निखारेंगे और अंततः आपको एक बेहतर और सीखा हुआ व्यक्ति बनाएंगे।

सोच का ऊर्जा में रूपांतरण

प्रमोद भार्गव

अचरज लगेगा जब आप सोचें कि कार की खिड़कियां खोलनी हैं और बस सोचते ही खिड़कियां खुल भी जाएं या फिर बंद हो जाएं। जिस गंतव्य पर आप जाना चाहते हैं, कार उसी दिशा और उसी मंजिल की ओर चलने लग जाए। आप जो सुनना या देखना चाहते हैं, वही रेडियो या टीवी पर शुरू हो जाए। बिना कोई बटन दबाए फोन या मोबाइल से मनचाहा फोन लग जाए। अभी तक किस्सों, कहानियों में हमने इन अचरजों को पढ़ा है या फिर फिल्मों में देखा है। हमारे प्राचीन ग्रंथों रामायण, महाभारत और पुराण कथाओं में भी हमने विमानों को इच्छानुसार चलते देखा है। लेकिन मिथकीय गल्प समझी जाने वाली इन आश्चर्यजनक कथाओं को अब यूरोप की सबसे बड़ी कार कंपनी मर्सिडीज की मर्सिडीज विजन एवीटीआर कार ने हकीकत में बदल दिया है। यूरोप के सबसे बड़े ऑटो शो आईएए जर्मनी के म्यूनिख में वियरेबल बेरन कंप्युटर तकनीक से इन कल्पनाओं को दृश्य रूप में बदलते दिखाया गया है। भविष्य में सोच को ऊर्जा में रूपांतरित करने के विज्ञान से चलने वाली ये सभी सुविधाएं मर्सिडीज कारों में मिलने जा रही हैं।

मसलन इन कारों के सारे क्रियाकलाप सिर्फ सोच से नियंत्रित होंगे। उपयोगकर्ता को 'वियरेबल ब्रेन कंप्युटर इंटरफेस' पहनना जरूरी होगा और कार चलाते वक्त डिजिटल डैशबोर्ड में लगे सेंसर पर फोकस करना होगा। कार की कृत्रिम बुद्धिमत्ता तकनीक चालक की दिमागी तरंगों का विश्लेषण कर पता कर लेंगी कि आपकी मंशा क्या है। बस इसे पकड़ते ही डैशबोर्ड को कमांड मिल जाएगी और कार पहले से ही फीड किए रास्ते पर चल पड़ेगी। महज सात सेकेण्ड के भीतर कार सौ किमी की गति पकड़ लेगी। एक बार चार्ज की गई बैटरी से यह कार चार सौ किमी. का सफर तय करेगी। इन कारों में सौर उर्जा से चार्ज की सुविधा भी दी जाएगी। मनोरंजन के लिए कार में फिल्म और वीडियो गेम देखने की सुविधा भी रहेगी। इसमें दृश्यों की प्रस्तुति के लिए ऐसी स्क्रीन रहेगी जो डैशबौर्ड पैनल से मनचाहे आकार में फैलाई जा सके। इसमें स्टीयरिंग की जगह चालक की सीट के दोनों ओर एयरकॉन अर्थात वातानुकूलन प्रणाली लगाई गई है, जो सीधे वातावरण से खींची गई हवा को शुद्ध कर कार में भेजेगी। साफ है, कार की ये विशेषताएं उर्जा, ध्वनि और तरंगों के उसी प्रभाव से संचालित होंगी, जो विशेषताएं हमारे प्राचीन ग्रंथों में पुष्पक विमान और यातायात के अन्य साधनों व उपकरणों के प्रयोग में दर्शाई गई हैं।

ब्रेन कंप्युटर इंटरफेस (बीसीआई) यानी 'मस्तिष्क-संगणक-अंतरपट' एक ऐसी प्रणाली है, जो, दो विषय क्षेत्रों के बिंदुओं में समन्वय स्थापित करती है। अर्थात सूचना प्रदाता कंप्युटर प्रोग्राम और सूचना प्रयोक्ता (कंप्युटर रिसीवर) का संबंध अंतरपट (इंटरफेस) पर परस्पर जुड़

जाता है। नतीजतन इस प्रणाली के माध्यम से संचार का सीधा मार्ग खुल जाता है। इस बीसीआई पद्धति का उपयोग मानव संज्ञानात्मक या संवेदी मोटरकार्यों पर तेजी से हो रहा है। हालांकि इसके पहले इस पद्धति की शुरूआत चूहों, बंदरों और सुअरों में सफलतापूर्वक की जा चुकी है। बंदरों ने स्क्रीन पर कंप्युटर कर्सर को नेविगेट किया और रोबोटिक हथियारों को केवल कार्य के बारे में सोचकर और दृश्य माध्यम से प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए काम करने के सरल आदेश दिए हैं। 2008 में पीट्सबर्ग मेडिकल सेंटर विश्वविद्यालय में एक बंदर को सोचकर रोबोटिक भुजा का संचालन करने वाली तस्वीरें कई विज्ञान पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। इस सिलसिले में भेड़ों का भी उपयोग किया जा चुका है। 2021 में ऐलेन मस्क ने दावा किया कि उन्होंने एक न्यूरालिंक उपकरण का उपयोग करके एक बंदर को वीडियो गेम खेलने में सक्षम बना दिया है।

कार इमेजरी (वाहन-छवि) आधारित बीसीआई एक ऐसी पद्धति है, जो बाहरी मशीन और मस्तिष्क के बीच उत्पन्न होने वाली सोच या संवेदना को तरंग और ध्वनि के माध्यम से परस्पर जोड़ देती है। दरअसल मानव-मस्तिष्क एक जैविक कंप्यूटर की भांति है। इस जैविक संगणक की पृष्ठभूमि में अभिकलन (प्रोग्रामिंग) है, जो दिमाग के भीतर उपलब्ध एक कणीय (क्वांटम) कंप्यूटर के माध्यम से संचालित होती है। इसी आधार पर नासा क्वांटम कंप्यूटर विकसित कर रहा है। चेतन दिमाग की कोशिकाओं में प्रोटीन से बनी सूक्ष्म नलिकाओं (माइक्रो ट्यूबुल्स) में ऊर्जा के सूक्ष्म स्रोत अणुओं एवं उप-अणुओं के रूप में रहती है। विज्ञान की नवीनतम अवधारणाओं के अनुसार यह जीव-जगत पदार्थ तथा ऊर्जा के समन्वय से अस्तित्व में आया है। इन्हीं दो तत्वों को सनातन भारतीय दर्शन में शिव एवं शक्ति कहा गया है। ऊर्जा का ही शुद्धतम रूप चेतना है। यही चेतना जीवन का निर्माण करती है। अकेला पदार्थ निष्क्रिय, नीरस और जड़ है। बावजूद ऊर्जा कणों से निर्मित इस जड़ पदार्थ में भी हलचल है। भारतीय दर्शन में इसी हलचल को चेतना या सोच माना गया है, इसीलिए वह पदार्थ को भी चेतनामयी मानता है। कार या अन्य किसी वाहन की यांत्रिक प्रणाली पदार्थ की इसी सोच को ब्रेन कंप्युटर इंटरफेस के माध्यम से मानव-मस्तिष्क की सोच से जोड़ देती है। भारतीय मनीषियों ने इस सोच पर हजारों साल पहले काम शुरू कर दिया था।

चेतना, ऊर्जा की विवेकपूर्ण संपूर्ण अभिव्यक्ति है, किंतु यह विज्ञान के लिए अबूझ पहेली बनी हुई है। कृत्रिम बुद्धि यानी आर्टिफीशियल इंटेलीजेंस तो विज्ञान ने आविष्कृत कर ली है। लेकिन चेतना को पढ़ पाना अभी भी दूर की कौड़ी बनी हुई है। चुनांचे चेतना को समझा या अनुभव अवश्य किया जा सकता है, लेकिन इसका रचा जाना लगभग असंभव है। भारतीय योगी-मनीषी इसका अभ्यास सदियों से करते आए हैं। योग वशिष्ठ और पतंजलि योग में इस चेतना को अनुभव करने के अनेक उदाहरण हैं। बिहार के मुंगेर में स्थित दुनिया के पहले योग विवि में इस ऊर्जा के विविध आयामों को पढ़ने की कोशिश कुछ वर्षों से की जा रही है। इसमें दुनिया के पचास विद्यालयों और कण-भौतिकी (क्वांटम फिजिक्स) पर शोधरत अनेक वैज्ञानिक अपनी प्रज्ञा लगा रहे हैं। इसका विषय है, 'टेलीपोर्टेशन ऑफ क्वांटम एनर्जी', अर्थात मानसिक कण-ऊर्जा का परिचालन व संप्रेषण। इस शोध केंद्र में भारतीय योग व ध्यान परम्परा के 'नाद' पर भी अनुसंधान हो रहा है। इसी नाद रूप प्राण-ऊर्जा, यानी चेतना के मूल आधार तक पहुंचने का मार्ग खोजा जा रहा है। विवि के परमाचार्य स्वामी निरंजनानंद सरस्वती इस शोध की केंद्रीय भूमिका में हैं।

निरंजनानंद सरस्वती एक तरह से आधुनिक युग के वैज्ञानिक संत हैं। उन्होंने महत्वपूर्ण मंत्रों के मानसिक व बाह्य उच्चारण से उत्पन्न ऊर्जा को क्वांटम मशीन के जरिए मापने के उपाय किए हैं। दरअसल मानसिक संवाद, नाद, संवेदना और दूरानुभूति (टेलीपैथी) विद्याएं भारतीय योग विज्ञान का विषय रही हैं। इसीलिए मानसिक ऊर्जा के परिचालन और संप्रेषण को वैज्ञानिक आधार पर समझने का प्रयास हो रहा है। निरंजनानंद को उम्मीद है कि यदि यह आधार समझ आ जाता है तो कुछ सालों में एक ऐसा मोबाइल फोन अस्तित्व में आ सकता है, जिसमें नंबर डायल करने, बोलने और

कान में लगाकर सुनने की जरूरत नहीं रह जाएगी। मानसिक सोच और ऊर्जा के जरिए ही तीनों कार्य संपन्न हो जाएंगे। एलन मस्क भी इसी तरह का मोबाइल विकसित करने की कोशिश में लगे हैं।

निरंजनानंद का मानना है कि जहां ऊर्जा है, वहां गति और कंपन है। कंपन ही ध्वनि का मूल स्रोत है। कुछ ध्वनियां हैं, जो कानों के रंध्रों से नीचे हैं, तो कुछ उनके ऊपर। ये कंपन भौतिक या प्राणवान शरीर तक ही सीमित नहीं रहते हैं, ये मन, भाव और प्रज्ञा-जगत में विद्यमान रहते हैं। अतएव जब हम चिंतन करते हैं तो मन के अंदर तरंगें उत्सर्जित होती हैं, जिन्हें कंपन और ध्वनियां उत्पन्न करती हैं। भारतीय योग विज्ञान में इसे नाद कहा है, अर्थात चेतना का प्रवाह! अतएव कह सकते है कि मनुष्य एक लघु ब्रह्मांड है और संपूर्ण जगत विश्व ब्रह्मांड है। अर्थात जो कुछ व्यष्टि में हो रहा है, वही समष्टि में हो रहा है। इसीलिए उपनिषद् में कहा गया है, 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्मांडे।' यानी दोनों चेतनामय हैं।

विज्ञान भी मानता है कि संसार की सभी वस्तुएं स्पंदनीय ऊर्जा की ही सतत क्रियाएं हैं। चुनांचे हम यदि मानसिक-तरंग-प्रतिरूप को संयोजित, स्थापित और संप्रेषित करने की क्षमता हासिल कर लेते हैं तो चेतना को अभिव्यक्त करने में सफल हो सकते हैं। अपनी इन्हीं विज्ञान सम्मत संभावनाओं के चलते निरंजनानंद सरस्वती नासा के पांच सौ वैज्ञानिकों के समूह में शामिल हैं। ये लोग इस अध्ययन में जुटे हैं कि भविष्य में यदि दूसरे ग्रहों पर मनुष्य गया तो वह वहां मौजूद चुनौतियों से कैसे सामना कर सकता है। स्वामी निरंजनानंद को ऊर्जा और चेतना पर किए जा रहे इन विज्ञानसम्मत कार्यों के लिए 2017 में भारत सरकार ने पद्म-भूषण से अलंकृत किया है। दरअसल प्रकृति के जो भी जीवनदायी तत्व हैं, वे ऊर्जा के अक्षय स्रोत हैं, उनका पूर्ण रूप में क्षरण कभी नहीं होता है, लेकिन विघटन होता है। इसलिए विघटित शक्ति को आसुरी और अक्षय अर्थात केंद्रीय शक्ति को दैवीय कहा है। इसी ऊर्जा से पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और मनुष्य का निर्माण हो रहा है। एक ही पदार्थ से एक के बाद एक वस्तुएं रूपांतरित होकर नया आकार लेती रहती हैं। इन सभी अस्तित्वों में चेतना अंतर्निहित है। लेकिन चेतना का आकार अत्यंत सूक्ष्म है। चेतना के इस पहलू को भारतीय मनीषियों ने बहुत पहले जान लिया था, अब इसे ही दुनिया के आधुनिक वैज्ञानिक जानने में अपनी प्रज्ञा लगा रहे हैं।

पुष्पक विमान में चेतना का विज्ञान– वाल्मीकी रामायण एवं नाना रामायणों तथा अन्य ग्रंथों में 'पुष्पक-विमान' के उपयोग के विवरण हैं। इससे स्पष्ट होता है, उस युग में राक्षस व देवता न केवल विमान-शास्त्र के ज्ञाता थे, बल्कि सुविधायुक्त आकाशगामी साधनों के रूप में वाहन उपलब्ध थे। रामायण के अनुसार पुष्पक-विमान के निर्माता ब्रह्मा थे। 'रामायण' में दर्ज उल्लेख के अनुसार पुष्पक-विमान मोर जैसी आकृति का आकाशचारी विमान था, जो अग्नि-वायु की समन्वयी ऊर्जा से चलता था। इसकी गति तीव्र थी और चालक की इच्छानुसार इसे किसी भी दिशा में गतिशील रखा जा सकता था। इसे छोटा-बड़ा भी किया जा सकता था। यह सभी ऋतुओं में आरामदायक यानी वतानुकूलित था। इसमें स्वर्ण-खंभ, मणिनिर्मित दरवाजे, मणि-स्वर्णमय सीढ़ियां, वेदियां (आसन) गुप्त-गृह, अट्टालिकाएं (केबिन) तथा नीलम से निर्मित सिंहासन (कुर्सियां) थे। अनेक प्रकार के चित्र एवं जालियों से यह सुसज्जित था। यह दिन और रात दोनों समय गतिमान रहने में समर्थ था। इस विवरण से ज्ञात होता है, यह उन्नत प्रौद्योगिकी और वास्तुकला का अनूठा नमूना था।

'ऋग्वेद' में भी चार तरह के विमानों का उल्लेख है जिन्हें आर्य-अनार्य उपयोग में लाते थे। इन चार वायुयानों को शकुन, त्रिपुर, सुन्दर और रुक्म नामों से जाना जाता था। ये अश्वहीन, चालक रहित, तीव्रगामी और धूल के बादल उड़ाते हुए आकाश में भी उड़ते थे। इनकी गति पतंग (पक्षी) की भांति, क्षमता तीन दिन-रात लगातार उड़ते रहने की और आकृति नौका जैसी थी। त्रिपुर विमान तो तीन खण्डों (तल्लों) वाला था तथा जल, थल एवं नभ तीनों में विचरण कर सकता था। रामायण में ही वर्णित हनुमान की आकाश-यात्राएं, महाभारत में देवराज इन्द्र का दिव्य-रथ, कार्त्तवीर्य अर्जुन का स्वर्ण-विमान एवं सोम-विमान, पुराणों में वर्णित

नारदादि की आकाश यात्राएं एवं विभिन्न देवी-देवताओं के आकाशगामी वाहन रामायण-महाभारत काल में वायुयान और हैलीकॉप्टर जैसे यांत्रिक साधनों की उपलब्धि के प्रमाण हैं।

ताजा वैज्ञानिक अनुसंधानों ने तय किया है कि रामायण काल में वैमानिकी प्रौद्योगिकी इतनी अधिक विकसित थी, जिसे आज समझ पाना भी कठिन है। रावण के ससुर मयासुर अथवा मयदानव ने भगवान विश्वकर्मा (ब्रह्मा) से वैमानिकी विद्या सीखी और पुष्पक विमान बनाया जिसे कुबेर ने हासिल कर लिया। पुष्पक विमान की प्रौद्योगिकी का विस्तृत व्यौरा महर्षि भारद्वाज द्वारा लिखित पुस्तक 'यंत्र-सर्वेश्रवम्' में भी किया गया है। वर्तमान में यह पुस्तक विलुप्त हो चुकी है, लेकिन इसके 40 अध्यायों में से एक अध्याय 'वैमानिक शास्त्र' अभी उपलब्ध है। इसमें भी शकुन, सुन्दर, त्रिपुर एवं रुक्म सहित 25 तरह के विमानों का विवरण है। इसी पुस्तक में वर्णित कुछ शब्द जैसे 'विश्व क्रिया दर्पण' आज के राडार जैसे यंत्र की कार्यप्रणाली का रूपक है।

नए शोधों से पता चला है कि पुष्पक-विमान एक ऐसा चमत्कारिक यात्री विमान था, जिसमें चाहे जितने भी यात्री सवार हो जाएं, एक कुर्सी हमेशा रिक्त रहती थी। यही नहीं यह विमान यात्रियों की संख्या और वायु के घनत्व के हिसाब से स्वमेव अपना आकार छोटा या बड़ा कर सकता था। इस तथ्य के पीछे वैज्ञानिकों का यह तर्क है कि वर्तमान समय में हम पदार्थ को जड़ मानते हैं, लेकिन हम पदार्थ की चेतना को जागृत कर लें तो उसमें भी संवेदना सृजित हो सकती है और वह वातावरण व परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालने में सक्षम हो सकता है। रामायण काल में विज्ञान ने पदार्थ की इस चेतना को संभवतः जागृत कर लिया था, इसी कारण पुष्पक-विमान स्व-संवेदना से क्रियाशील होकर आवश्यकता के अनुसार आकार परिवर्तित कर लेने की विलक्षणता रखता था। तकनीकी दृष्टि से पुष्पक में इतनी खूबियां थीं, जो वर्तमान विमानों में नहीं हैं। ताजा शोधों से पता चला है कि यदि उस युग का पुष्पक या अन्य विमान आज आकाश गमन कर लें तो उनके विद्युत चुंबकीय प्रभाव से मौजूदा विद्युत व संचार जैसी व्यवस्थाएं ध्वस्त हो जाएंगी। पुष्पक-विमान के बारे में यह भी पता चला है कि वह उसी व्यक्ति से संचालित होता था, जिसने विमान संचालन से संबंधित मंत्र सिद्ध किया हो, मसलन जिसके हाथ में विमान को संचालित करने वाला रिमोट हो। शोधकर्ता इसे कंपन तकनीक (वाइब्रेशन टेकनोलॉजी) से जोड़ कर देख रहे हैं। पुष्पक की एक विलक्षणता यह भी थी कि वह केवल एक स्थान से दूसरे स्थान तक ही उड़ान नहीं भरता था, बल्कि एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक आवागमन में भी सक्षम था। यानी यह अंतरिक्षयान की क्षमताओं से भी युक्त था।

रामायण एवं अन्य राम-रावण लीला विषयक ग्रंथों में विमानों की केवल उपस्थिति एवं उनके उपयोग का विवरण है, इस कारण कथित इतिहासज्ञ इस पूरे युग को कपोल-कल्पना कहकर नकारने का साहस कर डालते हैं। लेकिन विमानों के निर्माण, इनके प्रकार और इनके संचालन का संपूर्ण विवरण महर्षि भारद्वाज लिखित 'वैमानिक शास्त्र' में है। यह ग्रंथ उनके प्रमुख ग्रंथ 'यंत्र-सर्वेश्रवम्' का एक भाग है। इसके अतिरक्त भारद्वाज ने 'अंशु-बोधिनी' नामक ग्रंथ भी लिखा है, जिसमें 'ब्रह्मांड-विज्ञान' (कॉस्मोलॉजी) का वर्णन है। इसी ज्ञान से निर्मित व परिचालित होने के कारण विमान विभिन्न ग्रहों की उड़ान भरते थे। वैमानिक-शास्त्र में आठ अध्याय, एक सौ अधिकरण (सेक्शंस) पांच सौ सूत्र (सिद्धांत) और तीन हजार श्लोक हैं। इस ग्रंथ की भाषा वैदिक संस्कृत है।

सिर्फ सोचने से चलेंगे मोबाइल एवं कंप्युटर– आपने सोचा होगा कल सुबह 4 बजे जागना है, बिना अलार्म लगाए आप सो गए और सुबह ठीक 4 बजे फोन का अलार्म बजने लगा, आप उठकर खड़े हो गए। दफ्तर से घर आते वक्त रास्ते में याद आया कि अपने बॉस को एक जरूरी मेल भेजना तो भूल ही गए लेकिन जब आप इसी काम के लिए मेलबॉक्स खोलते हैं तो पाते हैं कि बॉस को मेल जा चुका है। ये कैसे हो रहा है? आप जो भी काम सोच रहे हो, बिना कोई कमांड दिए ये काम हो कैसे रहा हैं? हम किसी फिल्म का सीन नहीं बता रहे, बल्कि अगले कुछ सालों में इंसानी जीवन-शैली की झलकियां दे रहे हैं।

इस नई तकनीक में आपका दिमाग और मशीन एक-दूसरे के साथ सीधा संबंधित होकर बिना कोई कमांड दिए सोचने भर से काम शुरू कर देंगे। विख्यात इंजीनियर एलन मस्क ने पिछले साल ऐसी घोषणा की जिसने सबको चैंका दिया। मस्क ने कहा कि उनकी कंपनी न्यूरालिंक ने एक ऐसा न्यूरल इम्प्लांट विकसित किया है, जो बिना किसी बाहरी हार्डवेयर के दिमाग के अंदर चल रही गतिविधि को वायरलेस से प्रसारित कर सकेगा। अपनी कार्य संस्कृति के मुताबिक मस्क केवल घोषणा करने नहीं आए थे, बल्कि उन्होंने इस तकनीक का सबके सामने प्रदर्शन भी किया। घोषणा करते हुए कुछ ऐसे सुअरों को दिखाया, जिनके दिमाग में न्यूरालिंक के डिवाइस को प्रत्यारोपित किया गया था। ये सुअर जो भी हरकतें कर रहे थे, उनके दिमाग के भीतर की सारी गतिविधियां एक स्क्रीन पर दिखाई दे रही थीं।

न्यूरालिंक कंपनी की घोषणा करते हुए मस्क ने बताया कि इसका लक्ष्य एक ऐसे न्यूरल इंप्लांट को विकसित करने का है, जो इंसानी दिमाग को आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से सिंक्रोनाइज कर कंप्युटर्स, कृत्रिम शरीरिक अंग और दूसरी मशीनों को केवल विचारों के माध्यम से चला सके। न्यूरालिंक जिस डिवाइस को बना रहा है, वो एक उंगली के नाखून के बराबर बैटरी से चलने वाली और इंसानी बाल से भी कई गुने पतले तारों से लैस छोटी सी मशीन होगी, जो दिमाग के अंदर प्रत्यारोपित कर दी जाएगी। न्यूरालिंक के इंम्प्लांट में बैटरी, प्रोसेसिंग चिप और ब्लूटूथ रेडियो सहित सभी आवश्यक चीजें होंगी। साथ ही इस डिवाइस में लगभग 1000 इलेक्ट्रोड होंगे। हर इलेक्ट्रोड दिमाग में शून्य और चार के न्यूरॉन्स (दिमाग के अंदर संदेशवाहक कोशिकाओं) के बीच की गतिविधि को रिकॉर्ड करता है। हालांकि वैज्ञानिकों के लिए यह तकनीक नई नहीं है, विश्व स्तर पर शोधकर्ताओं की टीम करीब 15 सालों से मनुष्यों में सर्जिकली इम्प्लांटेड चिप (ब्रेन कंप्युटर इंटरफेस) सिस्टम पर काम कर रही है। एलन मस्क की कंपनी केवल इस डिवाइस को बनाने में ही काम नहीं कर रही, बल्कि इस डिवाइस को दिमाग के भीतर लगाने की तकनीक पर भी काफी हद तक सफलता पा चुकी है। न्यूरालिंक ने एक ऐसा सर्जिकल रोबोट विकसित किया है, जो दिमाग में बेहद संवेदनशील गहराई तक प्रत्यारोपित करने पर दिमाग के तंतुओं को कम से कम नुकसान पहुंचाता है। कालांतर में यदि यह तकनीक संपूर्ण रूप से विकसित हो गई तो इसका सबसे ज्यादा लाभ उन लोगों को होगा जो रीढ़ की हड्डी, चोट, पक्षाघात, या अन्य किसी शरीरिक अथवा मानसिक अक्षमता से गुजर रहे हैं।

वेदांत से प्रभावित है सोच का विज्ञान– है न आश्चर्य की बात कि सोच या चेतना का जो विज्ञान आज नए आविष्कारों के रूप में धरातल पर आ रहा है, वह भारतीय दर्शन की देन है। स्वामी विवेकानंद जुलाई 1893 में अमेरिका पहुंचे थे। इसी साल सितम्बर में विश्व धर्म संसद का आयोजन हुआ था। जिसने विवेकानंद और हिंदू धर्म के वेदांत दर्शन को अमेरिकी बौद्धिक जगत के बीच पहुंचा दिया था। निकोला टेस्ला और विद्युत बल्व के एडीसन की प्रतिद्वंदिता और उनके आविष्कारों के भारी प्रचार के चलते इस दौर तक अमेरिका के सामान्य पढ़े-लिखे लोगों में विज्ञान को लेकर जिज्ञासा एवं जागरूकता पैदा हो चुकी थी। इसी समय अमेरिका के वैज्ञानिक चेतना संपन्न समाज का परिचय वेदांत दर्शन से हुआ। दुनिया के सबसे प्राचीन धर्म का यह दर्शन कई मायनों में अमेरिकी पाश्चात समाज को वैज्ञानिक लगा। किसी भी वस्तु या घटना के मूल में एक परम सत्ता की उपस्थिति और प्रकृति के साथ जीवन की एकात्मता वेदांत दर्शन का ऐसा मूल सूत्र था, जिसने वैज्ञानिक समुदाय को भी अपनी तरफ आकर्षित किया।

निकोला टेस्ला इस वेदांत दर्शन से अत्यंत प्रभावित हुए थे। 1907 में उन्होंने 'मैन्स ग्रेटेस्ट अचीवमेंट' शीर्षक से एक आलेख लिखा था। इसमें उन्होंने 'आकाश' और 'प्राण' जैसे संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने इन शब्दों का उपयोग करते हुए कहा है, 'जिन भी पदार्थों की अनुभूति की जा सकती है, वे मूल रूप से एक ही तत्व या उस विरलता से निकले हैं, जिसकी कोई शुरुआत नहीं है। यह ब्रह्मांड के प्रत्येक पृथ्वी और आकाश के बीच मौजूद समस्त वायुमंडल में भरा होकर

प्रकाशमान है। यही ईथर (आकाश) वह तत्व है जो जीवन देने वाले प्राण या रचनात्मक ऊर्जा से प्रभावित होता है।

टेस्ला की स्वामी विवेकानंद से मुलाकात भी हुई थी। इस मुलाकात के बाद टेस्ला ने वेदांत दर्शन पर गंभीरता से चिंतन शुरू कर दिया था। हालांकि इसके पुख्ता प्रमाण नहीं मिलते हैं, लेकिन कुछ दस्तावेज इस तरफ इशारा करते हैं। इनमें पहला अभिलेख खुद स्वामी विवेकानंद का एक पत्र है, जो उन्होंने टेस्ला से मुलाकात के कुछ दिन पहले लिखा था। इसमें वे कहते हैं, 'मिस्टर टेस्ला सोचते हैं कि वे गणितीय सूत्रों के जरिए बल और पदार्थ का ऊर्जा में रूपांतरण साबित कर सकते हैं। मैं अगले हफ्ते उनसे मिलकर उनका यह नया गणितीय प्रयोग देखना चाहता हूं।' (विवेकानंद रचनावली, खंड 5)। विवेकानंद इसी पत्र में आगे लिखते हैं कि 'टेस्ला का यह प्रयोग वेदांत की वैज्ञानिक जड़ों को साबित कर देगा जिनके मुताबिक यह पूरा विश्व एक अनंत ऊर्जा का रूपांतरण है।'

इसके अलावा अतर्राष्ट्रीय टेस्ला सोसायटी के अध्यक्ष रहे टॉबी ग्रोट्ज़ का भी एक आलेख बताता है कि एक सार्वजनिक कार्यक्रम में स्वामी विवेकानंद और निकोला टेस्ला की मुलाकात हुई थी। वे एक छायाचित्र में साथ-साथ बैठे हैं। हालांकि टेस्ला पदार्थ-उर्जा संबंध को गणित के माध्यम से स्थापित करने में कामयाब नहीं हो पाए थे, लेकिन वेदांत दर्शन के प्रभाव के चलते वे इसे स्वीकार करते थे। बाद में अलबर्ट आइंस्टीन ने पदार्थ और ऊर्जा के संबंध को स्थापित किया था। यह स्थापना एक तरह से वेदांत दर्शन के मूल विचार की स्थापना थी। शिकागो में विवेकानंद द्वारा भारतीय दर्शन की फहराई गई इसी पताका से अध्यात्म और विज्ञान के बीच अंतरसंबंध की जिज्ञासा बढ़ी थी। इसी आधार पर 15 सितंबर 2018 को भारत और सार्बिया ने स्वामी विवेकानंद और महान वैज्ञानिक निकोला टेस्ला को समर्पित एक स्टांप जारी किया था। यह स्टांप भारत के उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू और सार्बिया के राष्ट्रपति अलेकजेंडर वुसिस ने जारी किया था। निकोला टेस्ला ने विद्युत के क्षेत्र में अनेक आविष्कार किए थे, लेकिन टेस्ला को बहुत ज्यादा वैज्ञानिक मान्यता नहीं मिली थी। परंतु एलन मस्क जानते थे कि टेस्ला का विद्युत ऊर्जा के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। इसलिए उन्होंने जब इलेक्ट्रिक कार कंपनी की आधारशिला रखी तो उन्होंने इस कार का नामकरण 'टेस्ला' के नाम से किया।

❑❑

शब्दार्थ, 49 श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी म. प्र.
मो. 09425488224, 09981061100

❑ हमेशा सच बोलना एक तपस्या ही है, सच बोलने का सबसे बड़ा फायदा यह है कि हम इस बात के लिए बेखबर रह सकते हैं कि हमने किसे क्या कहा था, जबकि झूठ बोलने वाले व्यक्ति को यह बात याद रखनी होती है कि उसने किसे क्या कहा था।

❑ लक्ष्य बड़ा हो तो भाग्य के भरोसे न बैठें, अपनी मेहनत पर भरोसा रखें। ध्यान रखें, काम करने से ही लक्ष्य पूरा होता है। मेहनत से ही जीवन में सकारात्मक बदलाव आते हैं।

कुँवर नारायण की कविता में प्रकृति बोध

अमरेन्द्र पाण्डेय

हिंदी साहित्य में प्रकृतिबोध की एक लंबी परंपरा है, छायावाद का प्राकृतिक चित्रण इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। वे कवि कम हैं जिनमें प्रकृति-चित्रण का बोध कालिदास, तुलसीदास से होते हुए आधुनिक हिंदी कवियों तक पहुँचा है। आधुनिक हिंदी कविता में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह और अज्ञेय हैं, जिनकी कविता में प्रकृति-चित्रण विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पाता है। कहीं वे अस्तित्व की स्वीकारोक्ति के रूप में आते हैं, तो कहीं ग्राम्य जीवन के स्मृति सौंदर्य को बढ़ाने के लिए, तो कहीं वैचारिक व रोमानी भाव की अभिव्यक्ति के रूप में आते हैं। इसी क्रम में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, ऋतुराज, चन्द्रकांत देवताले, विनोद कुमार शुक्ल, लीलाधर मंडलोई, जितेन्द्र श्रीवास्तव, कुमार अनुपम, बसंत त्रिपाठी, प्रांजल धर आदि कवियों के यहाँ प्रकृति चित्रण के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं।

कुँवर नारायण अपने काव्य में सामाजिक सरोकारों को अधिक महत्त्व देते हैं और उसमें भी नैतिक समर्थन अधिक दिखलाई देता है और जब बात सामाजिक सरोकार की हो तो उसके अंदर कौन-कौन घटक काम करते हैं, वही संयुक्त घटक जीवन संदर्भों को आगे बढ़ाने में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। इसी तरह के घटकों में से एक 'प्रकृति' है। प्रकृति का मनुष्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है, लेकिन आज औद्योगिकीकरण व पूँजीपतियों द्वारा अधिक लाभ कमाने के एवज में लगातार जंगलों व पेड़ों को काटा जा रहा है जिससे मनुष्य व प्रकृति के संबंध भी प्रभावित हो रहे हैं। वे दिनों दिन दूर होते चले जा रहे हैं, दोनों के बीच द्वंद्व की स्थिति बन गई है। कुँवर नारायण इन्हीं चिंताओं को लेकर प्रकृति व मनुष्य के संबंध को कई कविताओं में गहन व सघन विश्लेषण करते नज़र आते हैं। वे प्रकृति के सौंदर्य को जीवन व मानवीयता का सौंदर्य मानते हैं और प्रकृति को 'जीवनधर्मी मूल्य' की तरह देखते हैं। आज प्रकृति से आशय सिर्फ पहाड़, धरती, वायु, आग, चट्टान, वृक्ष, घास, नदी, सूर्य, चाँद, तारे, सुबह, शाम, दोपहर, धूप, झील, झरना आदि ही नहीं बल्कि वे तमाम तरह के वन्य-जीव भी हैं जिनकी जिंदगी प्रकृति के दोहन से खतरे में पड़ गई है। कुँवर नारायण ने प्रकृति को जिन्दगी की निरर्थकता, निराशा और अवसाद के सन्दर्भ में भी जोड़ने की कोशिशें की हैं। उनकी यह कविता शाम को कितने अनूठे ढंग से व्याख्यायित करती है– *'डूबते देखा समय को/जो अभी अभी सूर्य था/अपने में मस्त/मैं, शाम में इस तरह व्यस्त/कि जैसे वह हुई नहीं मैंने/उसके व्यर्थ रंगों को/एक साहसिक योजना दी।'*[1]

कुँवर नारायण को शुरू से ही प्राकृतिक परिवेश अपनी तरफ आकर्षित करते रहे हैं। वे लिखते हैं कि 'प्राकृतिक दृश्यों और ऐतिहासिक स्थानों के प्रति शुरू से ही मेरे मन में अतिरिक्त आकर्षण रहा है। वे मेरे अंदर अजीब तरह के सपने जगाते हैं।'[2] हालाँकि यह लगाव द्विवेदी युगीन प्रकृति चित्रण जैसा नहीं है जिसमें उपदेश दिया गया हो और न ही छायावादी रहस्यवादिता

व वायवीयता की तरह ही है बल्कि कुँवर नारायण प्रकृति की तरफ वैज्ञानिक दृष्टि लेकर जाते हैं जिसमें अनुसंधान व कल्पना का अद्‌भुत संयोग दिखाई पड़ता है। कुँवर नारायण के प्रकृति-चित्रण में दुनिया की हलचलों व उनके जीवन संघर्षों को सुना जा सकता है। उनके प्रकृति-बोध को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है– *'प्राची के सोतों से /मीठी गरमाहट के फव्वारे फूट रहे/ धूप के गुलाबी रंग/ पेड़ों की गीली हरियाली पर छूट रहे/ चाँद कटी पतंग-सा/ दूर उस झुर मुट के/ पीछे गिरता जाता।'*[3] इन पंक्तियों में कवि प्रकृति में कल्पना का अद्‌भुत संयोग व बिम्ब रचता है। चंद्रमा डूब रहा है उसको कवि ने पतंग के रूप में दिखाया है जो झाड़ियों के पीछे से लगातार डूबता चला आ रहा है। इसी तरह से जीवन के विशेषणों व उपमानों को कवि प्रकृति के दृश्यों में ढालकर उन्मुक्त ढंग से उसका उपयोग करता है। प्रकृति के सौंदर्य को देखकर उन्हें जीवन की विषमताएं याद आती हैं। वे तमाम पारंपरिक उपादानों को एक नई दृष्टि प्रदान करते हैं जो उनका अभिनव प्रयोग है– *'ये जंगली फूल, जो हर साल/ हल्ला बोलकर शहर में घुस आते हैं/ और राह चलते आते जाते लोगों को/ बेशर्मी से घूरते, फुसलाते हैं-/ क्या इन्हें मालूम नहीं/ कि शहरों में इसकी सख्त मनाही है/ कि कोई किसी से बिना जान पहिचान बोले/ और कहे कि देखो, बहार आई है।'*[4]

कुँवर नारायण प्रकृति-चित्रण में कहीं-कहीं वैचारिक भी होते हैं जहाँ उनकी प्रकृति परक कविता शिथिल पड़ जाती है। 'सवेरा'[5] कविता इसी तरह की है जहाँ संदेश व बिंब तो बन रहा है किंतु कुँवर नारायण अंधकार और प्रकाश के बीच संघर्ष, दोनों के कर्मों के आधार पर दिखाते रह गए हैं और कविता दोनों स्तरों पर बंटी नज़र आती है। 'कुँवर नारायण की कविता में शुरु से ही प्रकृति के प्रति एक विशेष आकर्षण है, बिल्कुल अपनापन लिए हुए एक आत्मीय रिश्ता, उनका संवेदनशील मन प्रकृति के सौंदर्य को ढूंढ़ने और पाने में संलग्न, हमेशा ही उसके साथ एक सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश में कार्यरत रहता है। प्रकृति के 'पर्सोनिफिकेशन' के कितने ही सुंदर और टटके उदाहरण उनके काव्य-जगत में विद्यमान हैं।'[6] उनकी कविता 'कार्निस पर' का एक उदाहरण देखिए– *'कार्निस पर/एक नटखट किरण बच्चे-सी/किलकती है/मुझे देखो सांस रोके/बाँह फैलाए खड़ा गुलमोहर/कब वह कूदकर आ जाए उसकी गोद में।'*[7]

उनकी 'तीसरा सप्तक' (सन् 1959) की कविताएँ छायावादी परिपाटी की लगने के बावजूद नवीन अर्थ देती हैं। कवि ने भी मानवीय क्रियाकलापों को उभारने का काम किया है। कभी-कभी यह सहज लगता है तो कभी वह विचित्र व कौतूहल सा लगता है। कुँवर नारायण परिवेश को अधिक महत्त्व देते हैं किंतु उनके यहाँ प्रकृति का स्वतंत्र रूप भी मिलता है, उनमें अल्हड़ता नहीं विवेक का साथ होता है। मानवीय गरिमा की कसौटियाँ होती हैं और ज्ञान की समझ को विस्तारित करने वाले ढंग होते हैं। 'ओस नहायी रात'[8] कविता निराला की 'सन्ध्या सुन्दरी' की याद दिलाती है। इसी तरह से मानवीयता से युक्त कवि की यह पंक्ति द्रष्टव्य है– 'चाँद पर लुढ़क पड़ी छाया घनी। एक बूढ़ी रात ओढ़े चाँदनी।'[9] इसके अतिरिक्त'हवा और दरवाजे की बहस'[10] 'हवा का दरवाजे को थप्पड़ जड़ देना'[11], 'अखबार का खड़ा हो जाना'[12] आदि इसी तरह की मनुष्य के क्रियाकलाप संबंधित बिम्ब वाली कविताएँ हैं। कुँवर नारायण की प्रकृति परक कविताओं की खासियत व शिल्प गत्यात्मकता व लयात्मकता से युक्त हैं, कई जगहों पर बिंबधर्मिता का अभिनव प्रयोग दिखाई पड़ता है जो फिल्म की तरह दृश्यमान हो जाता है, उसकी सबसे अच्छी मिसाल 'कमरे में धूप'[13] कविता है। प्रकृति के जरिए कुँवर नारायण जीवन की गत्यात्मकता को पकड़ते हैं और अपनी प्रकृति परक कविताओं पर लगातार जैवीकीय आचरण आरोपित करते हैं, उनके द्वारा प्रयुक्त उंघ रही है, सो रही है, नहा रही है आदि इसी तरह के बिंब हैं।

उनकी कविता गहरे अनुभव से बनती है, वह अलग-थलग नहीं पड़ती बल्कि उनकी संवेदना का अनिवार्य हिस्सा बन जाती है। बाह्य दृश्य को वे अपने आंतरिक स्पंदनों से जोड़ देते हैं जहाँ कविता में कवि की सोच एकमेक होकर बाहर निकलती है। वे लिखते हैं– 'कार्तिक की एक हँसमुख सुबह/नदी-तट से लौटती

गंगा नहाकर सुवासित भीगी हवाएँ/सदा पावन/माँ सरीखी/ अभी जैसे मंदिरों में चढ़ा कर खुशरंग फूल/ठंड से सीत्कारती घर में घुसी हो/और सोते देख मुझको जगाती हों।'[14]

इस कविता में भी कवि की बिंबधर्मिता स्पष्ट ढंग से देखी जा सकती है। कुँवर नारायण प्रकृति को प्रेम के रूप में भी प्रयोग करते हैं कई कविताओं में यह तादात्म्य इतना सुंदर है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए कवि की पंक्ति द्रष्टव्य है– 'रात जैसे दर्पणों की गली हो/ और तुम एक चाँद बनकर निकली हो/ हर चीज़ तुम्हारे रूप का आइना/ हर ख्वाब तुम्हारे प्यार से सना।'[15] इस कविता में प्रिय के सौंदर्य को कवि ने बिंब के जरिए बताने का काम किया है। मुक्तिबोध कुँवर नारायण के इस नाट्य शब्द चित्रण को नई कविता की उपलब्धि मानते हैं जो बिंब-धर्मी होकर प्रभावी भूमिका अदा करती है। 'कवि कुँवर नारायण ने जो बाह्य सौंदर्य चित्र प्रस्तुत किए हैं– चाहे वे घर में आई किरण के हों या नारी रूप के, धूप के अथवा सिर्फ खुशी के हमें यह कहना पड़ता है कि शब्द-चित्र बहुत प्रभावोत्पादक हैं और साथ ही नई कविता के विकसित रूप को सूचित करते हैं।'[16]

कुँवर नारायण के यहाँ प्रकृति अप्रस्तुत से प्रस्तुत का अंश है। वे प्रकृति को प्रतीक रूप में इस्तेमाल करते हुए उसमें अपने स्वभाव के अनुसार विचार तर्क करते हुए, साथ ही आध्यात्मिक चेतना से युक्त करते हैं। इससे उनकी प्रकृति परक कविताएँ पाठकों को ज्यादा आकर्षित भी करती हैं तो कई बार उन्हें अपनी सांस्कृतिक परंपरा के धरोहरों के संरक्षण रूप में न लेकर दूसरे वैचारिक खेमे में डालने का काम उनके द्वारा किया जाता है। उनकी पंक्ति हैं– *'सूनी मत होने दो/ लहराती क्षितिज कोर/ दूर हटो नीरव नभ, सलिल ज्वार करो शोर/ बरसो हे जलद दिनों/ इसी पार धरती पर पारदर्शी असीम बूँदों से धुंधलाकर/ हिलने दो आँधी में/ यह अटूट बियाबान टूट पड़े खण्ड-खण्ड/ चिल्लाकर आसमान'*[17] इस कविता में उपमान योजना अलग सी जोड़ी हुई प्रतीत नहीं हो रही है बल्कि प्रस्तुत का अंश बन जाती है। कुँवर नारायण की प्रकृति दृष्टि केदारनाथ सिंह की तरह ग्राम्य व देशज से बचती है, वे वैचारिक दृष्टि को लेकर प्रकृति से साक्षात्कार करने जाते हैं, उनके पास अपने संदर्भ होते हैं, कलात्मकता की जरूरत के खातिर भी वे प्रकृति की तरफ देखते हैं, हालाँकि उनकी प्रकृति परक कविताओं में नागर व कुलीन के साथ-साथ ग्राम्य चित्रण का द्वंद्व भी दिखाई पड़ता है किंतु वे नागर चित्रण के करीब लगते हैं। वे 'लखनऊ,[18] कविता में लखनऊ का सजीव चित्र अंकित करते हैं। केदारनाथ अग्रवाल की तरह वे पूरी तरह से लोक-संपृक्त व देशज नहीं हैं और उनके प्रकृति बोध में गीतात्मकता भी है। वे प्रकृति संरक्षण को लेकर चिन्तित भी नज़र आते हैं। शब्दावली शहरी या नागर प्रकृति की अधिक है। उन्हें प्राकृतिक सौंदर्य बहुत पसन्द है जो आज के तनाव भरे माहौल में एक अजीब सा शुकून देता है जिसे निहारते हुए उस सौंदर्य के आगोश में मन को अजीब सी शांति मिलती है जहाँ ठहरकर विश्राम करने का मन करता है।

पर्यावरण सुरक्षा कवि की प्रमुख चिंताओं में से है इसी चिंता को व्यक्त करने के लिए कवि ने प्रकृति को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और इसके पीछे सामाजिक सोद्देश्य की भावना छिपी रही, तो कहीं कवि कर्म की अतिरंजकता। कुँवर नारायण की यह कविता एक स्लोगन की तरह आज हमें सोचने के लिए विवश करती है कि हम पर्यावरण संरक्षण को लेकर कितने संजीदा हैं, जब वे कहते हैं कि– *'देश को बचाना है देश के दुश्मनों से/बचाना है/नदियों को नाला हो जाने से... बचाना है- जंगल को मरुस्थल हो जाने से बचाना है- मनुष्य को जंगल हो जाने से।'*[19] इसी तरह का विचार कुँवर नारायण 'वाजश्रवा के बहाने में' व्यक्त करते हैं। जहाँ प्रकृति से समाज और मानवता के सामंजस्य पर जोर है। डॉ. लताश्री 'कुँवर नारायण : कविता की एक भावदीप्त विचार-यात्रा' पुस्तक में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के कथन को उद्धृत करती हैं। डॉ. तिवारी लिखते हैं– 'कवि एक रूपक के माध्यम से जीवन और वन का पैतृक संबंध बनाते हुए 'वन' शब्द के अत्यंत गूढ़ार्थों में जाता है और क्षितिज के पार तक फैले अछोर जंगल को अपने भीतर प्रतिबिंबित देखता है। वह इस महावन या कहें कि महाप्रकृति के संतुलन को बिगड़ते नहीं देखना

चाहता... उसके अनुसार प्रकृति की विकास योजना नितांत सांयोगिक नहीं है, अतः उसके प्रति मनुष्य में ग्रहण से पहले अर्पण का विनम्र भाव होना चाहिए। यहां न तो छायावादी कवियों की वैयक्तिक्ता है न ही नई कविता की अवसादग्रस्त दृष्टि यहां इन दोनों से भिन्न, प्रकृति के साथ एक समभाव की चेतना है।'[20]

उनकी कविता में आज के समय में नदी में बढ़ रही गंदगियों की गंभीर पड़ताल आती है जिसके कारण नदी सिर्फ प्रदूषित ही नहीं बल्कि सूखती भी जा रही है। निश्चय ही कवि पर्यावरणविद् की तरह चिंता करता हुआ पर्यावरण को स्वस्थ व खुशहाल बनाने के लिए संघर्षरत है। 'एक वृक्ष की हत्या'[21] को वे एक वयोवृद्ध चौकीदार और वृक्ष के रूपक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, यहाँ भी प्रकृति के दोहन पर चिंता है। 'अन्तिम उँचाई'[22] 'पहला सवाल'[23] और 'सम्पत्ति का सन्ताप'[24] कविता में कवि बौद्धिकता के साथ प्रवेश करता है जहाँ समाज के प्रति जवाबदेही है जो दुर्गम वनों, रात और सूर्य के जरिए प्रकट हुई है। कुँवर नारायण प्रकृति से सिर्फ प्रेरणा ग्रहण नहीं करते वरन् बहुत कुछ सीखते भी हैं। अपनी जिंदगी के सच, संघर्ष, साहस व आत्मसजगता को प्रकृति की यात्रा पर चलकर तलाशने की कोशिश करते हैं। इनकी तलाश में प्राकृतिक उपमान, प्रसंग इतने अच्छे काव्य रूपक में ढल जाते हैं कि उससे जीवन का धर्म व मर्म समझने में कठिनाई नहीं होती। कुँवर नारायण की 'सबीना' कविता समस्त ऋतुओं के प्रतीक रूप में आती है जो साहस, संघर्ष में पीछे नहीं बल्कि आगे बढ़ने को लालायित रहती है। कविता इस प्रकार है– 'मैं नहीं जानता उसका अतीत उसका राष्ट्र... वह एक झील है पहाड़ों से घिरी/ उसकी आँखें आसमानी/ उसका नाम है सबीना/...एक अपराजेय साहस है वहां।'[25]

कुँवर नारायण प्रेम की तरह प्रकृति को भी एक मूल्य की तरह सहेजे जाने वाली जरूरी चीज़ मानते हैं और इसके साथ-साथ 'जीवन परिदृश्य को बड़ा बनाने की एक कारगर युक्ति'[26] भी मानते हैं। इनके यहाँ वर्तमान की विभीषिका को 'चक्रवात'[27] कविता के द्वारा दिखाया गया है। जहाँ प्रकृति सब कुछ नष्ट कर देती है। प्रकृति के विकराल रूप में भी जीवन के प्रति संघर्ष कहीं-न-कहीं अवशेष रहता है। कवि भी जीवन के इन्हीं संघर्षों को लेकर सचेत दिखाई पड़ता है। 'कुँवर नारायण प्रकृति से मनुष्य की विच्छिन्नता या बसन्त की अगवानी में उसकी आत्मिक असमर्थता को आतिथ्य के भारतीय मूल्य की विस्मृति या हानि से भी जुड़ा हुआ मानते हैं, इसलिए यह विषय उनके यहाँ दोहरी कचोट में बदल गया है– 'समीप से सुगंधि-रथ गुजर गए/मन उचाट इस तरह/कि हम अतिथि शुभागमन भुला गए।'[28]

कुँवर नारायण अपने परिवेश के प्रति काफी सजग नज़र आते हैं, इनके जीवन संदर्भ में प्रकृति एकदम नए ढंग से विमर्श करती है। 'कुँवर नारायण की प्रकृति की कविताएँ सिर्फ उसके निरूपण या सौंदर्य के बखान का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिकता के दायरे में भी उसकी तरह रच-बस गई हैं, जिस तरह उनकी जीवन-संबंधी कविताएँ।'[29] कवि के लिए प्राकृतिक चित्र और जीवन रंग बहुत अलग-अलग न होकर संश्लिष्ट हैं, दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। कुँवर नारायण समकालीन कविता में ऐसे एकमात्र कवि प्रतीत होते हैं जो प्रकृति-चित्रण का बखान रोमानी भाव, उद्दीपन, आलम्बन व किसी शिल्प की कसावट के लिए न करके पर्यावरण के संरक्षण, अनुसंधान, ज्ञान, जिज्ञासा के भाव के उद्देश्य से अधिक करते हैं। उनकी प्रकृति परक कविताओं में मनुष्य के सुख-दुख की जितनी भी भाव भंगिमा, भाषाएँ हो सकती हैं; उन सबके शेड्स 'एक मेरा घनिष्ठ पड़ोसी'[30] कविता में दिखाई पड़ते हैं, जिसमें प्रकृति का सौंदर्य आम जन-जीवन में सहज ही प्रवेश कर जाता है। प्राकृतिक व्यापार कवि प्रक्रिया की गत्यात्मकता को एकमेक कर देता है और उसे अपना सबसे अच्छा दोस्त, पड़ोसी स्वीकार करता हुआ कहता है– *मेरा घनिष्ठ पड़ोसी है/ एक पुराना पेड़.../ हमारे सुख-दुख की भाषा एक ही है/ जाड़ा गर्मी बरसात उसे भी उसी तरह/ भासते जैसे मुझे/ पतझर की उदासी/ वसन्त का उल्लास/ कितनी ही बार हमने साथ मनाया है/ एक दूसरे के जन्मदिन की तरह।'*[31] असल में 'प्रकृति की अमूल्य धरोहर ये पर्वत, पहाड़, नदी, सागर, झील, झरने, घाटी, वन, उपवन, लता, पेड़-पौधे सभी से कवि का घनिष्ठ संबंध है। अपने पड़ोसी वृक्ष के साथ उसकी गाढ़ी दोस्ती है।'[32]

दरअसल कुंवर नारायण प्रकृति व जीवन प्रक्रिया को एकमेक मानते हुए उसकी संश्लेषणात्मकता पर जोर देते हुए कहते हैं 'प्रकृति की महाप्रशांति में निर्द्वंद्व होकर बहो, उसमें खलल मत डालो। तुम वही हो जो 'वह' है। उसे अपने बनाए नियमों में मत बांधो। उसकी सहज, स्वच्छंद, अनियमितताओं का वरण करो– पत्थरों से घबराओ मत, उनके बीच से गाते हुए पानी की तरह बहो, वे भी तुम्हारे साथ गाने लगेंगे।'[33] प्रकृति के संबंध में कही गई यह बात जैन दर्शन की है जिसको कुँवर नारायण आदर्श मानते हुए उद्धृत करते हैं। कुँवर नारायण प्रकृति के बाहरी सौंदर्य से ही प्रभावित नहीं हैं वे उसकी अतरंग विकास यात्रा को भी उतना ही महत्त्व देते हैं। वे कहते हैं 'प्रकृति से मेरा मतलब केवल बाहरी प्रकृति यानी उसके दृश्यों, सैरों, रूपाकारों, वन प्रांतर आदि से ही नहीं है। उस जीव-शास्त्र से भी है, जो प्रकृति के अंतरंग जीवन का अध्ययन, उद्‌घाटन और विवेचन करता है, जिस वर्ग में हम डार्विनवाद तथा पर्यावरण संबंधी चिंताओं को रख सकते हैं। मैं एक कविता की बनावट को कुछ-कुछ उसी तरह देखता हूँ, जैसे एक विकसित या अर्ध विकसित पौधे फूल की बनावट को। जिसका मूल तत्त्व संश्लेषणात्मक है।'[34]

कुंवर नारायण प्राकृतिक व्यापार को सामाजिक चेतना की सुंदर कलाएँ मानते हैं। उनकी प्रकृति परक कविताओं में मानवीय अभिव्यक्ति की सुंदर योजना है जो विभिन्न उपमानों के जरिए जीवन की लीला बन जाती है। प्राकृतिक घटकों का सुंदर निर्वाह उन्होंने अपनी कविता में किया है। इनका प्रकृति-बोध अत्यंत सजग एवं समयानुकूल है और संरक्षण की चिंता आज की प्रमुख समस्या है। कुँवर नारायण प्रकृति में भी मनुष्यता की तलाश करते हैं, शांति और सौन्दर्य ढूंढते हैं और यही नहीं वे प्रकृति के साथ समभाव रखने की पक्षधरता के समर्थक हैं।

संदर्भ

1. कुँवर नारायण, अपने सामने, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1979, पृ. 76। **2.** सं. यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. 159। **3.**सं. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, आठवाँ संस्करण 2003, पृ.163। **4.** कुँवर नारायण, परिवेश : हम-तुम, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1987, पृ. 63। **5.** कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995, पृ. 19। **6.**डॉ. लताश्री, कुँवर नारायण– कविता की एक भावदीप्त विचार-यात्रा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण 2018, पृ. 136। **7.** सं. यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण : संसार से, पृ. 57। **8.**कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995, पृ. 18। **9.** स. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2003, पृ. 164। **10.** कुँवर नारायण, परिवेश हम-तुम, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1987, पृ. 62। **11.** वही, पृ. 62। **12.** वही, पृ. 62। **13.** वही, पृ. 62। **14.** वही, पृ.58। **15.**वही, पृ.25। **16.** सं. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली-5; राजकमल प्रकाशन, पृ. 479। **17.** कुँवर नारायण, परिवेश : हम-तुम, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1987, पृ.17। **18.** सं. पुरुषोत्तम अग्रवाल, कुँवर नारायण : प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ.102। 19.वही, पृ. 208। **20.**डॉ. लताश्री, कुँवर नारायण- कविता की एक भावदीप्त विचार-यात्रा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण 2018, पृ.135-136। **21.** कुँवर नारायण प्रतिनिधि कविताएँ, सं. पुरुषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. 207। **22.** वही, पृ. 92। **23.** वही, पृ.152। **24.** कुँवर नारायण, इन दिनों, राजकमल प्रकाशन संस्करण 2007, पृ.114। **25.** वही, पृ. 32। **26.** वही, पृ. 77। **27.** सं. दिनेश कुमार शुक्ल, कई समयों में, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2012, पृ. 32। **28.**पंकज चतुर्वेदी, जीने का उदात्त आशय, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2015, पृ. 83। **29.** सं. दिनेश कुमार शुक्ल, कई समयों में, भारतीय ज्ञानपीठ, 2012, पृ. 31। **30.** कुँवर नारायण, इन दिनों, पृ. 52। **31.** वही, पृ. 52, 53। **32.** डॉ. लताश्री, कुँवर नारायण- कविता की एक भावदीप्त विचार-यात्रा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण 2018, पृ. 139। **33.** दिशाओं का खुला आकाश, सं. यतीन्द्र मिश्र, संस्करण 2012, पृ. 21। **34.** वही, पृ. 99।

❏❏

असिस्टेंट प्रोफेसर
श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मो. 9871940171

केदारनाथ सिंह के काव्य में प्रकृति

विद्या रजक

समकालीन कवियों में केदारनाथ सिंह का नाम उल्लेखनीय है। हिन्दी के शीर्ष कवि केदारनाथ सिंह ने समकालीन हिन्दी कविता को समृद्ध किया है। इनका पहला कविता-संग्रह 'अभी बिलकुल अभी (1960)' से लेकर अंतिम कविता-संग्रह 'मतदान केंद्र में झपकी' (2018) तक की जो काव्य यात्रा है, वह भारतीय जीवन सौंदर्य एवं विडम्बना को एक साथ देखने की यात्रा है। इन्होंने अपनी कविता में न केवल ग्राम्य जीवन का चित्रण किया है बल्कि नगरीय जीवनबोध एवं कस्बाई जिंदगी का यथार्थ चित्रण भी किया है और इन सब के बीच लोकभूमि की सुगंध इनकी कविता में बराबर मौजूद रही है। गाँव से लेकर महानगर की ओर यह स्थानान्तरण ऐसा है जिसे केदार जी के पूरे विकासक्रम में देखा जा सकता है। उन्होंने कई काव्य पीढ़ियाँ एक साथ न केवल देखी बल्कि उनके साथ जुड़े भी रहे। लीलाधर मडलोई के शब्दों में– 'भोजपुरी ग्रामीण संवेदना का जब एक द्वन्द्वात्मक मेल खड़ी बोली और नागर संवेदना से होता है तो जो नया कवि रूप बनता है, दरअसल उसी पहचान का नाम है-केदारनाथ सिंह'।[1]

कवि केदारनाथ सिंह अपनी काव्य-यात्रा की शुरुआत प्रकृति और जीवन के उल्लास भरे गीतकार के रूप में करते हैं। उनकी शुरुआती दौर की कविताओं को पढ़, मैं उन लोकगीतों की ओर लौट जाती हूँ जो अक्सर किसी मंगल अवसर पर हमारे मोहल्ले की स्त्रियाँ गाया करती थीं, फिर से वह सारे गीत मानों सजीव हो उठते हैं। कई बार बचपन में जब मेरे मोहल्ले की स्त्रियां लोकगीत गाया करती थी, तो मैं सबसे छुपाकर अपने ही मन में उन गीतों को गुनगुनाती या यू कहूँ कि सीखने का प्रयास भी करती, कुछ एक गीत मैंने सीख भी लिए थे, जैसे भैयादूज पर गाये जाने वाले गीत। केदार जी ने इसी प्रगीत तत्व को आधुनिक संदर्भ में नये ढंग से अपनी कविताओं में रचा है। इनकी पहचान जिन कविताओं से बनती है वे कविताएँ लोकभूमि पर रचित कविताएँ हैं। ये कविताएँ न केवल लोक-जीवन का प्रसंग हमारे समक्ष रखती हैं बल्कि इनकी धुनें भी प्रायः लोकगीतों वाली हैं। इस संदर्भ में 'धानों का गीत' कविता की कुछ पंक्तियों को देख सकते हैं– *'धान उगेंगे कि प्राण उगेंगे/ उगेंगे हमारे खेत में/ आना जी बादल जरूर!/ चंदा को बांधेंगे कच्ची कलगियों में/ सूरज को सूखी रेत में/ आना जी बादल जरूर।'*[2]

इन गीतों में ग्राम जीवन एवं ग्रामीण प्रकृति के संवेदनसशील चित्र ही नहीं हैं बल्कि इनका रूप भी लोक-गीतों की भाँति लचीला है। जीवन के प्रति उनका गहरा राग बोध उन्हें अत्यंत सूक्ष्म और सुकुमार संवेदना से उपलब्ध हुआ है। यह सब उन्हें अनायास ग्राम संस्कृति से अपनी जातीय विरासत के रूप में हस्तगत हुआ है। जिसकी वहज से उनमें सृष्टि के प्रति उनका अनुराग, दुनिया की तमाम समृद्ध सभ्यताओं के निकट परंपरा व पहचान के बाद भी सम्पूर्ण जीवन काल में तनिक

भी कम नहीं हुआ था– 'नैतिक परिप्रेक्ष्य के आलोक में केदार जी की कविता को पढ़ें तो वह सृष्टि की पक्षधरता की ऐसी कविता है, जिसमें जीव-जन्तु और मनुष्य से लेकर प्रकृति का भौतिक-अभौतिक वास है। वह लोक से शक्तिग्रहण करती है, मिथकों का नये ढंग से संधान करती है और इतिहास विवेक के साथ अवतरित होती है।'[3]

केदार जी की कविता, मनुष्य को प्रकृति के साथ जोड़ने वाली कड़ियों के तड़कने से उपजी अनुगुंजों की कविता है। प्रकृति केदार जी की कविता की सहचरी रही है, वे प्रकृति को निहारते भी हैं और उससे उजास भी लेते हैं। प्रकृति के कण-कण की अनुगूँज उनकी कविताओं में सुनाई पड़ती है। इस संदर्भ में 'सृष्टि पर पहरा' कविता की कुछ पंक्तियाँ– *'कितना भव्य था/ एक सूखते हुए वृक्ष की फुनगी पर/ सहज तीन चार पत्तों का हिलना/ उस विकट सुखाड़ में/ सृष्टि पर पहरा दे रहे थे तीन-चार पत्ते'।*[4]

केदारनाथ सिंह ने अपनी बहुआयामी चेतना के कारण अपनी कविताओं में विभिन्न प्रवृतियों को उद्‌घाटित करने में सफलता प्राप्त की है। इनकी कविताओं का मुख्य विषय ही प्रकृति और मनुष्य रहा है। उनका यह मानना है कि जीवित रहने की चाह मानव को प्रकृति की ओर खींचती है। इनकी कविता में प्रकृति विभिन्न रूपों में लक्षित हुई है। वे अपनी कविताओं में प्रकृति का वर्णन नहीं बल्कि बड़ी ही सुक्ष्मता से उसका निरीक्षण करते हैं। कवि को ग्रामांचल एवं वहाँ की प्रकृति से अत्यंत लगाव था जिसे वे स्वयं कहते भी हैं- 'प्रकृति बहुत शुरू से मेरे भावों का आलंबन रही है। मेरा घर गंगा और घाघरा के बीच में है। घर के ठीक सामने एक छोटा-सा नाला है जो दोनों को मिलाता है। मेरे भीतर भी कहीं गंगा और घाघरा की लहरें बराबर टकराती रहती हैं। खुले कछार, मक्का के खेत और दूर-दूर तक फैली पगडंडियों की छाप आज भी मेरे मन पर उतनी ही स्पष्ट है जितनी उस दिन थी, जब मैं पहली बार देहात के ठेठ वातावरण से शहर के घुमैल और शतशःखंडित आकाश के नीचे आया।'[5]

मानव के साथ प्रकृति के गहरे रिश्ते को कवि बहुत अच्छे से समझता है, और इस रिश्ते को मार्मिक ढंग से अपनी कविता में प्रस्तुत करता है। प्रकृति के बगैर मानव अधूरा है या यह कहें कि वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, जिसे कवि 'बालू का स्पर्श' कविता में दिखाते हैं। गंगा के जल में स्नान करने के बाद बालू के स्पर्श से कवि को जो आनंद प्राप्त होता है उसका सजीव चित्रण इस कविता में करते हैं– *'एक पक्षी कि तरह/ घूँट-घूँट जल पिया/ आत्मा ने देर तक / गहरे अथाह जल से बातें की/ देह को अच्छा लगा जल/ ख़ूब-ख़ूब अच्छा लगा/ ठंडा-ठंडा जल/ पवित्र जल/ जो मछली की गंध से घुल कर/ और भी ज्यादा पवित्र हो गया था।'*[6] वे अपनी कविताओं के द्वारा आदमी के साथ प्रकृति के गहरे रिश्ते को प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति को मानव के सुख-दुख के साथ जोड़ते हैं। कभी वसंत ऋतु को खुशी से जोड़ते हैं तो कभी ग्रीष्म ऋतु को निराशा के साथ। 'दुपहरिया' कविता में देख सकते हैं– *'झरने लगे नीम के पत्ते बढ़ने लगी उदासी मन की/ उड़ने लगी बुझे खेतों से, झुर-झुर सरसों की रंगीनी/ धूसर धूप हुई मन पर ज्यों- सुधियों की चादर अनबीनी।'*[7]

कवि को धरती, सूरज, चाँद-सितारों को देख कर ऐसा लगता है मानों ये सब आदमी और उसके सुख के लिए बने हैं। इसीलिए केदार जी ने अपनी कविताओं में मानव और प्रकृति के बीच के संबंध को विभिन्न पहलुओं से देखा है। मनुष्य की उपस्थिति के बिना प्रकृति एक बेजान व मूल्य से रहित वस्तु है। वे प्रकृति व आदमी को विभिन्न भावनाओं और परिस्थितियों के अंदर देखते हैं। *'मुझे विश्वास है/ यह पृथ्वी/ यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में/ यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में/ रहते हैं दीमक.../ यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अंदर/ यहीं और कहीं नहीं तो मेरी जबान/ और मेरी नश्वरता में/ यह रहेगी।*[8] सृष्टि से इतना प्रेम समकालीन कवियों की कविताओं में मिलना दुर्लभ है।

आज के इस संवेदनहीन समाज में जहाँ मानव वस्तु मात्र बनकर रहा गया है, वहीं केदार जी की कविता वस्तुओं को भी चरित्र के रूप में बदल देती हैं। वे अपनी कविता में समाज के छोटे से छोटे व्यक्ति का जिक्र करते हैं, चाहे वह छोटा सा जीव ही क्यों न हो। साधारण वस्तुओं से लगाव ने उन्हें असाधारण बना

दिया है। केदार जी अपनी कविता में न केवल मनुष्य को स्थान देते हैं बल्कि प्रकृति से जुड़ी उस छोटी-से-छोटी वस्तु को भी अपनी कविता में स्थान देते हैं, जिसका प्रकृति से किसी न किसी रूप में संबंध है, चाहे वह एक छोटी-सी चींटी क्यों न हो। चींटियों पर लिखी उनकी एक कविता है। जहाँ उन्होंने चींटियों को प्रकृति की बेहद खूबसूरत रचना के रूप में देखा है। वे उनके अस्तित्व को बचाए रखने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं, उन्हें यह चिंता है कि कहीं मनुष्य जाति इन चींटियों को इस संसार से बेदखल न कर दे– *'सुनो, लगता है यह शहर अपनी जगह से खिसककर/ किसी/ गलत आक्षांश/ पर आ गया है/ कि अपनी धुरी से/ उतर गये हैं इसके चक्के/ और इस इतने बड़े शहर में अब इतनी भी जगह नहीं/ कि एक गर्भवती चींटी/ कहीं रख दे अपना अंडा।'*[9]

इस पृथ्वी की सबसे अनमोल धरोहर पानी अब लुप्त होने के कगार पर है, 'पानी की प्रार्थना' कविता में स्वयं पानी अपने लुप्त होने के कारण पर प्रश्न खड़ा करता है– *'अंत में प्रभु/ अंतिम लेकिन सबसे जरूरी बात/...अब पानी दुर्लभ होने के कगार तक पहुँच चुका है/ पर इसमें चिंता की कोई बात नहीं। यह बाज़ारों का समय है/ और वहाँ किसी रहस्यमय स्रोत से/ मैं हमेशा मौजूद हूँ...'।*[10] इन पंक्तियों के माध्यम से केदार जी ने आज के समूचे सत्ता एवं पूंजीवादी तंत्र की पोल खोल कर रख दी है। कवि हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हैं जहाँ बाजारवाद ने सभी वस्तुओं को अपना शिकार बनाया है- वहाँ पानी को कैसे छोड़ देता, पानी को बाजार की वस्तु बनाने की लिए ही इसके प्राकृत स्रोतों को नष्ट किया जा रहा है। कवि सृष्टि के बने रहने की आशा करते हैं, जिसे वह अपनी कविता 'ईश्वर को एक भारतीय नागरिक के कुछ सुझाव' में व्यक्त करते हैं– *'इस उलट-फेर में बस इतना ध्यान रहे मेरा छोटा-सा गाँव/ कहीं उजड़ न जाय/और दलपतिपुर-चट्टी की बुढ़िया की बकरी/ लौट आए घर/...सो पृथ्वी का कॉपीराइट संभालकर रखना/ यह क्लोन-समय है/ कहीं ऐसा न हो/ कोई चुपके से रच दे/ एक क्लोन-पृथ्वी।'*[11] केदार जी यहाँ सृष्टि के अस्तित्व को लेकर चिंतित हैं। वे इस आधुनिकीकरण के युग में चाहे जो हो जाए सृष्टि के साथ-साथ गाँव के बचे रहने की आकांक्षा को व्यक्त करते हैं।

कवि केदारनाथ सिंह का लोक जीवन से गहरा संबंध है। केदार जी अपनी कविता में लोक को लेकर अत्यंत सजग दिखाई देते हैं। उनके लिए उनका लोक सिर्फ ग्रामीण परिवेश, गाँव की संस्कृति, प्रकृति या वहाँ के पेड़-पौधे, नदी, पहाड़ का चित्रण करना मात्र नहीं बल्कि अपने लोक को अपनी गरिमा के साथ प्रस्तुत करना है। लोक-जीवन का जितना विस्तार एवं जितनी सघनता केदार जी की कविता में मिलती है, वह अत्यंत अपेक्षाकृत कम देखने को मिलती है। इनकी कविता को पढ़ यह महसूस होता है कि वे कृषक जीवन के ज्यादा समीप हैं। स्वयं केदारनाथ के शब्दों में– 'मेरा आरंभिक जीवन गाँव में बीता। मेरा परिवार कृषि व्यवसाय से जुड़ा था, इसलिए घर में जो माहौल था वह बिल्कुल वैसा ही था। जैसा कि एक किसान परिवार में होता है। साहित्यिक माहौल गाँव में कोई नहीं था, पर लोकजीवन की जो अपनी स्वतः स्फूर्त रचनाशीलता होती है, वह मेरे गाँव में थी और यदि मैं कहूँ कि वहीं से पहले पहल अपनी काव्य दीक्षा आरंभ की तो अनुचित न होगा।'[12]

नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल एवं त्रिलोचन की भाँति ही केदारनाथ सिंह को अपनी जड़ों के प्रति अपार लगाव है। इनकी कविता में साधारण जन बोलते-बतियाते नजर आते हैं। इनकी कविता बतकही की कविता है, जहाँ कवि पाठक के साथ जीवन के अनुभव को साझा करते नजर आते हैं। कवि का अपने गाँव से गहरा जुड़ाव है जिसके कारण वह गाँव का बने रहने का पक्ष लेते है, अपने लोगों के बीच जीना चाहते हैं। गाँव के प्रति उनका गहरा रिश्ता ही है जिसकी वजह से वह अपने कविता संग्रह 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएं' की कविता 'गाँव आने पर' में कहते हैं– *'क्या करूं मैं?/ क्या करूं, क्या करूं कि लगे/ कि मैं इन्हीं में से हूँ/ कि यही हैं मेरे लोग/ जिनका मैं दम भरता हूँ कविता में/ और यही वही जो मुझे कभी नहीं पढ़ते।*[13]

'कविता में एक खास बात होती है, वह प्रकृति की तरफ जल्दी आकृष्ट होती है। 'धूप में घोड़ा' कविता केदार जी को अपनी ओर जिन कारणों से आकृष्ट करती है

वह यह कि घोड़े को कवि प्रकृति के रूप में देखते हैं। घोड़ा एक प्रकृतिक जीव है। जिस तरह पेड़-पौधे होने चाहिए, वैसे प्राकृतिक जीव भी होने चाहिए। ये हमारे जीवन के आवश्यक अंग हैं। अपनी इस कविता में वह घोड़े को एक प्राकृतिक सम्पदा के रूप में देखते हैं न कि जरूरत की वस्तु की तरह कि उससे काम लिए जाएं, जैसे पेड़ काटने पर कवि को दुख होता है, उसी तरह घोड़े को लुप्त होते देख कवि को उसकी चिंता सताती है। केदार जी के शब्दों में– *'घोड़ा-जो मेरे लिए सौंदर्य है/ आवश्यकता है/ हमारे जीवन में होना चाहिए/ घोड़े को प्राकृतिक जीवन से लुप्त होना पीड़ा का विषय है/ सवारी करने के लिए ही नहीं वरन पेड़, फूल, पौधों की तरह उसकी भी उपयोगिता है/ पूरी बहस को देखें तो घोड़ा नष्ट होती हुई वास्तविकता है/ जिस पर अनेक दिशाओं से प्रहार हो रहा है/ यही नष्ट होती हुई वास्तविकता इस कविता में मेरी चिंता है/ मेरी परेशानी है।'*[14]

केदार जी के लिए प्रकृति अंतिम समाधान एवं शरण्य है। प्रकृति उनकी चिरपरिचित संबंधी जैसी है जिसे हम 'बादल ओ' कविता में देख सकते हैं– *'हम नन्हें-नन्हें धानों के बच्चे/ तुम्हें पुकार रहे हैं/ बादल ओ! बादल ओ! बादल ओ/ ....तुमही पिता हो/ इंद्रधनुष बरसो/ की फूल बरसो/ की नींद बरसो/ बादल ओ बादल/ ...ओ सुनो, बीजवर्षी बादल/ ओ सुनो अन्नवर्षी बादल'*[15] इसी क्रम में 'कुछ सूत्र जो एक किसान बाप ने अपने बेटे को दिये' कविता को देख सकते हैं– *'हरा पत्ता/ कभी मत तोड़ना/ और अगर तोड़ना तो ऐसे/ कि पेड़ को जरा भी/ न हो पीड़ा/ रात को रोटी जब भी तोड़ना/ तो पहले सिर झुकाकर/ गेहूँ के पौधे/ को याद कर लेना'।*[16] यह कविता हमारी लोक संस्कृति को उजागर करती है, जहाँ भोजन से पूर्व हम पहले अन्न को प्रणाम करते हैं उसके पश्चात ही उसे ग्रहण करते हैं। केदार जी बंदिशों के नहीं स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं। वे न केवल मानव की स्वतन्त्रता की बात करते हैं बल्कि प्रकृति के हर अंग की स्वतन्त्रता की बात करते हैं। इस संदर्भ में हम उनकी 'हक दो' कविता को देख सकते हैं जहाँ कवि ने मिट्टी के स्वतंत्र रहने की आकांक्षा को व्यक्त किया है– *'माटी को हक दो/ वह भीजे, सरसे, फूटे, अंखुआए/ इन मेड़ों से लेकर उन मेड़ों तक छाए/ और कभी न हारे/ (यदि हारे)/ तबभी उसके माथे पर हिले/ और हिले/ और उठती जाए/ यह दूब कि पताका/ नए मानव के लिए।'*[17] वे प्रकृति के विध्वंसक रूप के साथ नहीं बल्कि घास के पक्ष में खड़े नजर आते है। इस संदर्भ में 'घास' कविता की कुछ पंक्तियां– *'आदमी के जनतंत्र में/ घास के सवाल पर / होनी चाहिए लंबी एक अखंड बहस/ पर जब तक वह न हो/ शुरुआत के तौर पर मैं घोषित करता हूँ/ कि अगले चुनाव में/ मैं घास के पक्ष में मतदान करूंगा/ कोई चुने या न चुने/ एक छोटी-सी पत्ती का बैनर उठाए हुए/ वह तो हमेशा मैदान में है।'*[18]

वे प्रकृति को उद्दीपन रूप में नहीं बल्कि आलंबन रूप में अपनी कविता में चित्रित करते है। केदार जी की प्रकृति संबंधि कविताएं बाह्य वर्णन के साथ-साथ आंतरिक गुणों से भी गहरे स्तर पर जुड़ती हैं। वे प्रकृति के आंतरिक गुणों से भी मानव का खास रिश्ता कायम करते हैं– *'वे देवता को पसंद नहीं/ लेकिन आश्चर्य इस पर नहीं/ आश्चर्य तो ये है कि कविगण भी/ लिखते नहीं कविता कपास के फूल पर/ प्रेमीजन भेंट में देते नहीं उसे/ कभी एक-दूसरे को/ जबकि वह है कि नंगा होने से/ बचाता है सबको/ और सुतर गया मौसम/ तो भूख और प्यास से भी/ बचाता है वह'*[19] परंतु जीवन के अप्रिय यथार्थ से प्रकृति और ऋतुरंग का विरूप भी जुड़ा रहता है, अकाल, बाढ़ आदि विभीषिका प्रकृति के ऐसे ही रूप का व्यंजक है। लेकिन केदार जी की कविता प्रकृति में धड़कती हुई जिजीविषा को उपयुक्त शब्द देने में कामयाब हुई है– *भयानक सूखा है/ मवेशी खड़े हैं/ एक-दूसरे का मुंह ताकते/ कहते हैं पिता/ ऐसा अकाल कभी नहीं देखा/ ऐसा अकाल की बस्ती में/ दूब तक झुलस जाय/ सुना नहीं कभी/ दूब मगर मरती नहीं/ कहते हैं वे/ ....निकलता हूँ मैं/ दूब की तलाश में... मिलती नहीं दूब/ ...अंत में/ सारी बस्ती छानकर/ लौटता हूँ निराश/ ....कि अचानक मुझे दिख जाती है/ शीशे के बिखरे हुए टुकड़ों के बीच एक हरी पत्ती/ है-अभी बहुत कुछ है/ अगर बची है दूब।'*[20] केदार जी जितने मानव–संघर्ष के कवि हैं उतने ही प्रकृति की लीला और सौंदर्य के भी।

उनकी कविताओं में प्रकृति बहुत गहराई तक रची- बसी है, संघर्ष के बीच से जिंदगी का रस ढूँढ लेना इनकी एक विलक्षण क्षमता है। प्रकृति का मनोहर और हराभरा रूप केदार जी तक आते-आते मुरझाता नहीं बल्कि और भी हराभरा होकर फलने-फूलने लगता है।

प्रकृति केदारनाथ सिंह की कविता में एक जैविक उपस्थिति है जो उनके पहले कविता संग्रह से ही साथ है और अब तक के आख़िरी संग्रह 'मतदान केंद्र में झपकी' में और भी सघन और अर्थपूर्ण हुई है। इसकी शीर्षक कविता में एक ऐसे सूखते हुए पेड़ का चित्र है जो मुक्तिबोध के ब्रह्मराक्षस की तरह 'सिवान के प्रहरी' के रूप में खड़ा है, लेकिन उसके शीर्ष पर तीन-चार पत्ते हिल रहे हैं। केदार जी इन पत्तों में सृष्टि के बचे रहने और जारी रहने की एक बड़ी उम्मीद, एक बड़ी सामर्थ्य देख लेते हैं– *'उस विकट सुखाड़ में/सृष्टि पर पहरा दे रहे थे/* तीन-चार पत्ते, दरअसल केदार जी की कविता की यह एक बड़ी सामर्थ्य है कि वह किसी मामूली वस्तु या व्यक्ति को गैर-मामूली और मार्मिक परिप्रेक्ष्य में रख देती है। उन्हें प्रकृति के जड़ रूपों में भी जीवन के चिह्न दिखाई देते हैं। कवि प्रकृति के महत्त्वपूर्ण अंग पेड़ को भी एक नागरिक की संज्ञा देते हैं– *'अबकी वोट देने पहुँचा/ तो अचानक पता चला/ मतदाता सूची में/ मेरा नाम ही नहीं है/ किसी से कुछ पूछूं कि मेरे भीतर से/ आवाज आई-/ उजबका कि तरह ताकते क्या हो/ न सही मतदाता सूची में/ उस विशाल सूची में तो है ही/ जिसमें वह सारे नाम हैं/ जो छूट जाते हैं बाहर/ बाहर निकला/ तो निगाह पड़ी सामने खड़े पेड़ पर/ सोचा-वह भी तो नागरिक है इसी मिट्टी का / और देखो न मरजीवे को/खड़ा है कैसा मस्त मलंग।'*[21]

कवि ने मानव जीवन को प्रकृति के साथ इस प्रकार जोड़ा है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। उनकी कविता कहीं भी मानव संदर्भों से कटी नहीं दिखती। प्रकृति उन्हें मनुष्य के संदर्भ में ही आकर्षक लगती है। यही कारण है कि वह जब गंगा को देखते हैं तो घर जाने को तैयार बूढ़े मल्लाह को नहीं भूलते। गाँव की नदी झुम्मन मियाँ के बिना अपनी सार्थकता नहीं पाती। कवि जब नीम के पेड़ को चित्रित करते हैं तो आँख मूँदे उसके तले बैठे व्यक्तियों को भी अपनी कविता के अनुभव में शामिल करते हैं। वस्तुतः प्रकृति को कवि ने मानव की विभिन्न भावनाओं और परिस्थितियों के अंदर देखा है।

संदर्भ

1.स. मंडलोई लीलाधर, 'नया ज्ञानदोय' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक 182 अप्रैल 2018, पृष्ठ-11। **2.** स. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण; 2003, पृष्ठ-134। **3.** स. मंडलोई लीलाधर, 'नया ज्ञानदोय' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक 182 अप्रैल 2018, पृष्ठ-12। **4.** सिंह केदारनाथ, 'सृष्टि पर पहरा' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृष्ठ-61। **5.** स. यायावर भारत, 'विपक्ष 4' नोएडा, संस्करण 1990, पृष्ठ-33। **6.** सिंह केदारनाथ, 'अकाल में सारस' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृष्ठ-22। **7.** स. अज्ञये, तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण; 2003, पृष्ठ-130। **8.** सिंह केदारनाथ, 'यहाँ से देखो' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 1999, पृष्ठ-25। **9.** सिंह केदारनाथ, 'तालस्ताय और साइकिल' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2010, पृष्ठ-90। **10.** सिंह केदारनाथ, 'तालस्ताय और साइकिल' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2010, पृष्ठ-9। **11.** सिंह केदारनाथ, 'सृष्टि पर पहरा' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृष्ठ-48। **12.**सिंह केदारनाथ, 'मेरे समय के शब्द' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2013, पृष्ठ-182। **13.** सिंह केदारनाथ, 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2009, पृष्ठ-12। **14.** सिंह केदारनाथ, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण ; 2008, पृष्ठ-114। **15.** सिंह केदारनाथ, 'अभी बिल्कुल अभी' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2016, पृष्ठ-45। **16.** सिंह केदारनाथ, 'अकाल में सारस' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृष्ठ-18। **17.** सिंह केदारनाथ, 'सृष्टि पर पहरा' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृष्ठ-67। **18.** सिंह केदारनाथ, 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2009, पृष्ठ-58। **19.** सिंह केदारनाथ, 'अकाल में सारस' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृष्ठ-15। **20.** सिंह केदारनाथ, 'अकाल में सारस' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृष्ठ-22। **21.** सिंह केदारनाथ, 'मतदान केंद्र में झपकी' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ-12।

❒❒

सहायक प्राध्यापक बंगबासी कॉलेज,
कलकत्ता 700009 , संपर्क- 8910499914

राजेश जोशी की कविताओं में बाल चेतना

मकेश्वर रजक

राजेश जोशी आजादी के बाद के एक ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं में सामाजिक चेतना के व्यापक तत्व मिलते हैं। चाहे स्त्री की बात हो या बाल-वृद्ध की, वे सामान्य रूप से इन पर हुए शोषण और अत्याचार का विरोध करते हैं। आजादी के बाद संविधान निर्माताओं ने संविधान में मानवीय मूल्यों की रक्षा की बात की है और इसके लिए समुचित व्यवस्था भी की गयी है, तथापि भारतीय समाज में इनके साथ दुर्व्यवहार हो रहा है। हमारे समाज के बच्चे जुल्म, अत्याचार और शोषण के शिकार हो रहे हैं और ये सबकुछ घर से शुरू होकर बहुत दूर तक जाता है जो दुखद और चिंता का विषय है। राजेश जोशी के कुल सात काव्य-संग्रह प्रकाशित हैं जो इस प्रकार हैं– 'एक दिन बोलेंगे पेड़', 'मिट्टी का चेहरा', 'नेपथ्य में हँसी', 'दो पंक्तियों के बीच, 'चाँद की वर्तनी', 'जिद' और 'उल्लंघन'। 'धूप घड़ी', उनके काव्य-संग्रह– 'एक दिन बोलेंगे पेड़' और 'मिट्टी का चेहरा' का संयुक्त प्रकाशन है। 'साहित्य अकादेमी पुरस्कार' से सम्मानित राजेश जोशी अपनी कविताओं में बच्चों पर हो रहे अत्याचार का विरोध करते हैं। इस शोध-आलेख में इसी संदर्भ में राजेश जोशी की कविताओं पर विचार किया गया है।

सामाजिक स्तर पर बाल-श्रम इस देश की एक ज्वलंत समस्या है। आजादी के बाद यह समस्या और अधिक विकराल रूप धारण किया है। यह कहना गलत नहीं होगा कि बाल-श्रम केवल स्वतंत्र भारत की ही समस्या नहीं है, बल्कि पूरे विश्व स्तर पर इसे देखा जा रहा है। यह पूँजीपतियों द्वारा फैलाया हुआ एक ऐसा तंत्र है, जो बच्चों के बचपन को छिन लिया है जिसका विरोध दुनिया भर के सामाजिक संस्थाओं ने की है और कर रही है। बाल-श्रम का अर्थ होता है- अल्प-आयु के बच्चों का बचपन और उनके उमंगों को छीनकर शिक्षा से वंचित रखना। तत्पश्चात उन्हें काम पर लगा कर उनका शारीरिक, मानसिक और सामाजिक शोषण करना। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अल्प-आयु के बच्चों से कठिन काम करवाया जाता है, जैसे- बंधुआ-मजदूरी, घरेलू कामकाज, भीख मंगवाना तथा खेतों, होटलों, रेंस्तरों, ईट-भट्ठों, कल-कारखानों एवं औद्योगिक इकाइयों में काम करवाना आदि। कहीं-कहीं बच्चों से घृणित कार्य भी करवाए जाते हैं, जैसे– देह व्यापार, यौन उत्पीड़न, वेश्यावृति, अप्राकृतिक शोषण आदि। इस प्रकार की सामाजिक विसंगतियों को बाल-शोषण कहते है जिसके विरुद्ध समाज को सचेत होना आवश्यक है। '2011 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार, भारत में बाल-मजदूरों की संख्या 1.01 करोड़ है जिसमें 56 लाख लड़के और 45 लाख लड़कियाँ हैं। दुनिया भर में कुल मिलाकर 15.20 करोड़ बच्चे– 6.4 करोड़ लड़कियाँ और 8.8 करोड़ लड़के बाल मजदूर होने का अनुमान लगाया गया है अर्थात दुनिया भर में प्रत्येक 10 बच्चों में से एक बच्चा बाल मजदूर है'।[1] यही कारण है कि दुनिया भर के कई देशों एवं संस्थाओं ने

बाल-श्रम एवं बाल-शोषण को घृणित प्रथा माना है।

बाल श्रम एवं शोषण के कई महत्वपूर्ण कारण हैं। इनमे में सबसे महत्वपूर्ण कारण हैं– गरीबी और सामाजिक असामानता। आर्थिक विपन्नता के कारण गरीब परिवार के लोग अपने बच्चों को काम पर लगा देते हैं। जहाँ उनका शोषण होता है। सामाजिक असामानता के कारण उच्च वर्ग के लोग सदैव गरीब परिवार के बच्चों का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करते हैं। इसमें कुछ ऐसे भी गिरोह शामिल हैं, जो गरीब परिवार को झांसा देकर उनके बच्चों की तस्करी भी करते हैं। उनके बच्चे कहाँ गए- इसकी जानकारी भी उन्हें नहीं होती है। ऐसे बच्चों को शारीरिक और मानसिक यातना देकर ज़बरदस्ती वेश्यावृति में धकेल दिया जाता है और वर्षों उनका यौन शोषण होता है। यह भी देखा गया है कि कुछ लोग गैर-कानूनी तरीके से बच्चों को गोद लेते हैं और बाद में उनसे मजदूरी कराते हैं। कुछ बच्चे आतंकवादियों के हाथों बेच दिये जाते हैं, जहाँ बचपन से ही उनके हाथों में किताब की जगह हथियार दे दिया जाता है। इस प्रकार वह बच्चा एक आदर्श नागरिक न बनकर खूंखार आतंकवादी बन जाता है। इस प्रकार हमारे समाज में बाल-श्रम और बाल-शोषण ने वर्षों से स्थान बना रखा है जिसका विरोध हो रहा है।

भारतीय संविधान में बाल-श्रम को रोकने के लिए समुचित प्रावधान किया गया है। भारत सरकार ने बाल-श्रम को समाप्त करने के लिए 1986 ई. में ‘बाल-श्रम निषेध और नियमन अधिनियम, पारित किया था जिसके 24वें अनुच्छेद के अनुसार 14 वर्ष के कम उम्र के बच्चों को खतरनाक कामों में लगाना निषिद्ध है। तथापि बाल-श्रम और बाल-शोषण में कमी नहीं आ रही है जिसकी चिंता समकालीन कवियों को भी है। सुधीर रंजन के शब्दों में, ‘यह आकस्मिक नहीं है कि राजेश जोशी के प्रत्येक संग्रह में बच्चों पर कवितायें हैं। उनका गहरा सम्बंध क्रूर वास्तविकता को बदलने के उपक्रम से है। बच्चों को जादुई दुनिया से खींच कर स्वप्नहीन बनाने का काम किया जा रहा है, कवि का सवाल मुख्यतः इस बात से जुड़ा है’।[2] कहना न होगा कि बच्चों के भविष्य से खिलवाड़ किया जा रहा है। राजेश जोशी की कविता ‘बच्चे काम पर जा रहे हैं’ बच्चों के जीवन की स्वप्नहीनता से जुड़ी हुई कविता है। कवि लिखते हैं– ‘बच्चे काम पर जा रहे हैं/ हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह/ भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना/ लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह’[3]।

बच्चे काम पर क्यों जा रहे हैं- यह समाज के सामने बहुत बड़ा सवाल है जिसे राजेश जोशी अपनी कविता में उठाते हैं। इसके साथ ही बच्चों के जीवन और उमंगों से जुड़े हुए कई सवाल उठ खड़े होते हैं, जैसे- क्या उनकी रंग-विरंगी किताबों को दीमक ने खा लिया है, क्या उनके सारे खिलौने किसी काले पहाड़ के नीचे दब गए हैं, क्या सारे स्कूलों और मदरसों की इमारतें किसी भूकंप में ढह गई हैं या क्या सारे बाग-बगीचे, मैदान और घरों के आँगन खत्म हो गए हैं और अगर ऐसा नहीं है तो कोहरे से ढकी सड़कों पर बच्चे स्कूल के बजाय काम पर क्यों जा रहे हैं? उनके साथ असभ्य और अमानवीय व्यवहार क्यों हो रहा है, ऐसे अनेक बाल संबंधी सवाल हैं जिसे राजेश जोशी अपनी कविताओं में ढूँढना चाहते हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था भी पूँजीपतियों द्वारा फैलाया हुआ मकड़जाल है जिसमें हमारे बच्चे फँसते जा रहे हैं। यहाँ बच्चों के शरीर का जितना वजन होता है, उससे कई गुणा अधिक उनके किताबों का वजन होता है जहाँ बच्चों का दिमागी शोषण होता है। किताबों के नाम पर अर्थ कमाने का धंधा जोरों पर है जिसे बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ अंजाम दे रही हैं। बच्चे यहाँ पढ़ते कम हैं, किताबों को ढोते अधिक हैं। तभी तो सुधीर रंजन भी स्वीकारते हैं– ‘सवाल सिर्फ यह नहीं है कि बच्चे काम पर जा रहे हैं। स्कूल जाते बच्चे भी बस्तों के बोझ में लद-फंदकर जा रहे हैं, यह भी भयानक है’[4]।

‘बच्चों की चित्रकला प्रतियोगिता’ कविता में कवि राजेश जोशी एक महत्वपूर्ण सवाल की ओर इशारा करते हैं जो हमारी चेतना को जागृत करता है। कवि कहते हैं कि चित्र प्रतियोगिता में चित्र बनाने के क्रम में नीला आकाश, सूरज, चाँद, सितारे, पेड़-पौधा, धरती, हरियाली, नदी-नाले, पहाड़-झरने, मकान, सड़कें, सड़कों

पर चलने वाली गाड़ियाँ आदि बनाए गए। इन्हें बनाने के क्रम में इतने अधिक चित्र बन गए कि बच्चों को अपनी गेंद रखने की कोई जगह ही नहीं बची। यह कैसी विडम्बना है कि जो इस समाज का भावी नागरिक है, उसके जीवन को विकसित करने के लिए इस समाज में कुछ बचा हुआ ही नहीं है। कहना न होगा कि आज बच्चों के उमंग, खुशियाँ एवं उनके बचपन को छीन लिया गया है और ये सब कुछ वयस्कों द्वारा हो रहा है। इस पर गहरी सामाजिक चिंतन की जरूरत है। राजेश जोशी लिखते हैं– 'नहीं बची चित्र में/ गेंद रखने की जगह/ तब समझ आया उन्हें/ कि बड़ों ने कैसी-कैसी गलतियाँ की हैं/ इस दुनिया को बनाने में'।[5]

राजेश जोशी भिखारियों के बच्चों की दयनीय स्थिति को देखकर मर्माहत हैं। आर्थिक विपन्नता बच्चों को भीख माँगने के लिए बाध्य कर देती है। समाज की भयावह उदासीनता ने इन बच्चों को किसी कोने में इस प्रकार फेंक दिया है कि इनका जीवन और भविष्य बद से बदतर हो गया है। जब कोई बच्चा अपना पेट दिखाते और गिड़गिड़ाते हुए कहता है कि वह कई दिनों से भूखा है तो इस दृश्य को देखकर किसी का भी हृदय पिघल जाएगा। वर्तमान व्यवस्था में ऐसी कौन सी खामियाँ हैं कि एक बच्चा जन्म के उपरांत से ही भीख माँगने के लिए बाध्य हो जाता है। राजेश जोशी का हृदय उस समय काँप उठता है जब वे एक बच्चा को भीख माँगते हुए इस रूप में देखते हैं– 'अपने छोटे-छोटे हाथ फैलाते हैं/ गिड़गिड़ाते हैं पेट दिखाते हुए कहते हैं वे कई दिनों से भूखे हैं'[6]।

भीख माँगते हुए ये बच्चे दया हेतु हर तरह के हथकंडे अपनाते हैं, पर जब इन्हें भीख नहीं मिलती है तो वे उन लोगों पर खिलखिलाकर हँस देते हैं जो इन्हें कुछ देने के लिए अपना जेब तो टटोलते हैं, पर बिना कुछ दिये ही चले जाते हैं। यह भी हमारे समाज की क्रूरता ही है जिस ओर हमें ध्यान देने की जरूरत है। इसके पूर्व निराला ने भी 'भिक्षुक' कविता लिखकर हमारी चेतना को जगाने का प्रयास किया था। लेकिन सामाजिक परिवर्तन में अभी भी बच्चों का यह क्षेत्र अनछूवा ही है।

'लेबर कॉलोनी के बच्चे' कविता में कवि इन बच्चों के बारे में कहते हैं कि ठंडे की मौसम की सुबह की भाँति ये बच्चे साँवले और धुंधले हैं, फिर भी तरोताजा हैं। उन्हें भूख और प्यास है। बदन पर फटे-पुराने चिथड़े हैं, तथापि वे सुबह की अखबार की भाँति ताजा हैं क्योंकि वे अपने भविष्य से अनभिज्ञ हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि उनका भविष्य अंधकार में है। इस कविता के माध्यम से कवि ऐसे बच्चों के प्रति चेतना जगाने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं कि उनके जीवन में खतरा ही खतरा है, तथापि वे खिलखिलाते रहते हैं। अर्थात उन्हें लगता है कि कभी तो उनके जीवन में सुधार होगा। कवि *समाज से अपेक्षा के भाव रखते हैं। वे लिखते हैं- 'चारो ओर से उतर रहे/ खतरों के बीचोबीच। खिलखिलाता हुआ/ बच्चा पाँव ले रहा है'*[7]।

'हमारे समय के बच्चे' बच्चों को स्वप्नहीनता से जुड़ी हुई कविता है। इसके पूर्व राजेश जोशी 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' कविता लिखे थे जो सन 1985 ई. में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'नेपथ्य में हँसी' में संकलित है और 'हमारे समय के बच्चे' सन 2000 ई. में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'चाँद की वर्तनी' में संकलित है। इस प्रकार दोनों कविताओं के प्रकाशन वर्ष में करीब 21 वर्ष का अंतर है। इस बीच हमारे समय और समाज मे काफी परिवर्तन हुआ है। यह विज्ञान, तकनीक और सूचनाओं का समय है। इस समय के बच्चे इन कार्यों में निपुण भी हो रहे हैं। अब वे काम पर नहीं जा रहे हैं, बल्कि समय के दौड़ में शामिल हैं जिसने उनके जीवन को असमंजस में डाल दिया है। विज्ञान, तकनीक और सूचनाओं के दुनिया पर कार्पोरेट सेक्टर के बहु-राष्ट्रीय कंपनियों का कब्जा है जिन्होंने इन बच्चों के मस्तिष्क को अपने वश में कर लिया है। भले ही आज के बच्चे काम पर न जाते हों, पर वे कहीं न कहीं इस तकनीकी युग का गुलाम हो चुका है। इनके बचपन को छीनकर इन्हें मशीन में तब्दील कर दिया है जो बच्चों के जीवन की ट्रेजडी है। ऐसा लगता है कि इन बच्चों के हाथों को किसी दैत्य ने जकड़ रखा है जो उनके जीवन को स्वप्नहीन बना दिया है। यह सत्य है कि आधुनिक समाज के विकास के लिए विज्ञान,

तकनीक, प्रौद्योगिक और सूचनाएँ जरूरी हैं, लेकिन बच्चों के जीवन से खिलवाड़ हो रहा, इसे कतई अच्छा नहीं कहा जा सकता है। राजेश जोशी लिखते हैं– *'हमारे समय की इस भयावह फैन्टेसी में/ किसी अदृश्य दैत्य की उंगली थामे जाते लगते हैं कभी-कभी/ हमारे समय के बच्चे'।*[8]

बाल चेतना पर आधारित राजेश जोशी की एक महत्वपूर्ण कविता है– 'खिलौना'। वर्तमान समाज की विडम्बना है कि बच्चे दिन-प्रतिदिन अकेले होते जा रहे हैं जिसकी चिंता कवि को भी है। खिलौना जो कभी बच्चों का साथी हुआ करता था, वह अब अपना रूप बदल चुका है। अब परंपरागत खिलौने नहीं बनाए जाते हैं, बल्कि खिलौनों के रूप में नकली बंदूकें, मशीनगनें, पिस्तौल, टेंक आदि बनाए जा रहे हैं जो बच्चों को बचपन से ही हिंसक और उत्तेजक प्रवृत्ति के बना देते हैं। दरअसल परंपरागत खिलौने बनाने वालों पर बहु-राष्ट्रीय कंपनियों का इस प्रकार दबदबा है कि उन्हें आगे बढ़ने ही नहीं देते हैं। दूसरी ओर बहु-राष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बनाए गए खिलौने इतने आकर्षक और सस्ते होते हैं कि आम बच्चे सहज ही उन खिलौनों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। इस प्रकार एक तरफ जहाँ परंपरागत खिलौने दम तोड़ रहें हैं तो दूसरी तरफ बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ ऐसे भड़कालू खिलौने बनाकर बच्चों को बचपन से ही हथियार धराने में सफल हो रहे हैं और तीसरी तरफ देश की आर्थिक व्यवस्था को कमजोर कर अपनी पूंजी का विस्तार कर रहे हैं। यह बच्चों के जीवन से जुड़ी हुई वर्तमान समय की सबसे बड़ी विसंगति है जो दिन-प्रतिदिन बच्चों को अकेला करती जा रही है। राजेश जोशी इस भयावह स्थिति को इस रूप में बयान करते हैं– *'बच्चों के अकेलेपन को एक नकली और हिंसक उत्तेजना/ से भरने की एक भयावह कोशिश की जा रही थी/ हमारा अन्याय और हमारी हिंसा जो हमेशा ही/ गरीब बाल मजदूरों और भिखारी बच्चों के सामने/ एक दुत्कार की तरह प्रकट होती है/ अब हमारे खिलौनों में प्रकट हो रही थी'*[9]।

संयुक्त परिवार का टूटना भी बच्चों के जीवन में अकेलापन का कारण है जहाँ उनका मानसिक विकास बाधित होता है। भारतीय समाज में इस प्रकार की स्थिति साठ के दशक के बाद से उत्पन्न हुई है। जब संयुक्त परिवार टूटा तो बच्चे भी टूटने लगे। पहले एक परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होने से बच्चों की भी संख्या अधिक हुआ करती थी। एकल परिवार तो अपने में ही घुट-घुट कर जी रहे हैं। उनका बाहरी लोगों से संपर्क नहीं है। इस कारण बच्चे भी अकेले होते जा रहे हैं। यही कारण है कि आजकल के बच्चे मानसिक रोगों के शिकार अधिक हो रहे हैं। अकेलापन के कारण उनमें गुस्सा, उत्तेजना और चिड़चिड़ापन अधिक है। पारिवारिक झगड़े, कलह, मनमुटाव, आपसी मतभेद आदि का भी प्रभाव बच्चों के मस्तिष्क पर पड़ता है जहाँ वे अपने को अकेला महसूस करते हैं। 'परंपरागत खिलौने बनाने वाला' के माध्यम से राजेश जोशी यह कहना चाहते हैं कि सांसारिक परिवर्तन जहाँ अनेक समस्याओं को जन्म दिया है वहीं बच्चों के जीवन को लगातार अकेला भी करता जा रहा है। वे लिखते हैं– *हर नया परिवर्तन नई समस्याओं को भी पैदा करता है/ एकल परिवार की भी बहुत सारी खूबियाँ थी/ पर उसकी समस्याएँ भी कम न थीं/ कहानियों को पढ़ते और बहसों को सुनते उस डिज़ाइनर के मन को/ मथ रहा था एक ही विचार/ कि बच्चे अकेले होते जाएँगे'*[10]।

राजेश जोशी बाल चेतना के कवि हैं। यही कारण है कि अपनी बाल संबंधी कविताओं में बच्चों के जीवन के दुख और तकलीफ पर चिंता व्यक्त करते हुए समाज से सवाल भी करते हैं कि बच्चे स्कूल क्यों नहीं जाते हैं और जाते भी हैं तो भाग कर घर क्यों आ जाते हैं? कवि यहाँ एक अहम सच्चाई की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करते हैं। वे कहते हैं कि बच्चे स्कूल इसलिए नहीं जाते हैं और भागकर घर आ जाते हैं, क्योंकि स्कूल के कुछ शिक्षक बहुत ही मरखने होते हैं। इस वजह से उनका मन किताबों में नहीं लगता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि सभी शिक्षक ऐसे नहीं होते हैं। कुछ अनुशासनहीन शिक्षकों के चलते ही सारे शिक्षक बदनाम हो रहे हैं। कुछ दिन पूर्व ही एक घटना प्रकाश में आई थी कि एक बच्चा ने शिक्षक के घड़ा से पानी पी लिया तो उसे इतना

मारा गया कि वह मर गया। ऐसे बच्चे भय के कारण स्कूल छोड़कर और घर से भाग कर होटलों, दुकानों या रईस लोगों के घरों में काम करते हैं। वहाँ भी उनके साथ अमानवीय व्यवहार होता है तो भाग खड़ा होता है और अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए चोरी करने लगता है। वहाँ भी जब वे पुलिस द्वारा पकड़े जाते हैं तो थाना में उनकी पिटाई होती है। इस क्रम मे वे इतने रोते हैं कि अब उनके पास रोने के लिए आँसू भी नहीं बचता है। सरकार ऐसी घटनाओं के खिलाफ कारवाई कर रही है, तथापि समाधान अभी कोसों दूर है। ऐसे बच्चे सड़कों, ढाबों, फूटपाथों या चाय की दुकानों पर काम एवं शरारत करते दिख जाते हैं। राजेश जोशी लिखते हैं– *'वे इतने पिट चुके हैं कि रोना भूल गए/ दुख जैसा कोई शब्द उनके पास नहीं है/ 'इस क्रूरता के बीच भी कमाल की शरारतें/ हमेशा उनके दिमागों में उपजती रहती है'*[11]।

राजेश जोशी बच्चों की व्यथा और उनकी अपेक्षाओं पर लगातार लिख रहे हैं और वह भी एक नए सोच के साथ। वे जहाँ भी बच्चों पर अत्याचार या शोषण को देखते हैं या यह देखते हैं कि उनके जीवन से खिलवाड़ हो रहा है तो उनका हृदय व्याकुल हो उठता है और कलम उठाए बिना नहीं रहते हैं। राजेश जोशी बच्चों के जीवन और उत्पीड़न पर कविता लिखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उन सपनों को साकार किए जहाँ वे कहा करते थे कि वर्तमान कवि बच्चे, भाई-बहन और माँ-बाप को छोड़कर सभी विषयों पर कविताएँ लिख रहे हैं। राजेश जोशी की बाल संबंधी कविताओं के अध्ययन के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी कविता बाल चेतना से अनुप्रेरित है। वे चाहते हैं कि बच्चों पर अत्याचार बंद हो। उनके शोषण पर लगाम लगे। इसके लिए व्यवस्था की तरफ से भी कड़ी कारवाई होनी चाहिए तथा समाज को भी जागृत होना होगा क्योंकि आज के बच्चे ही कल देश का भविष्य होगा। हमें बच्चों के संदर्भ में साकारात्मक सोच अपनाना होगा।

संदर्भ

1. https://www.unicef.org **2.**सिंह, सुधीर रंजन, राजेश जोशी : प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ.16। **3.** जोशी, राजेश, नेपथ्य में हँसी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1994, पृष्ठ-23। **4.** सिंह, सुधीर रंजन, राजेश जोशी:प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2013, पृष्ठ-16। **5.** जोशी, राजेश, नेपथ्य में हँसी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 1994, पृष्ठ- 26। **6.** जोशी, राजेश, दो पंक्तियों के बीच, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2014, पृष्ठ- 28। **7.** जोशी, राजेश, धूप घड़ी (एक दिन बोलेंगे पेड़), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2014, पृष्ठ- 47। **8.** जोशी, राजेश, चाँद की वर्तनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2013, पृष्ठ- 31। **9.** वही, पृष्ठ- 106। **10.** वही, पृष्ठ- 105। **11.** जोशी, राजेश, जिद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2015, पृष्ठ- 24।

❑❑

(सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मानकर कॉलेज बर्धमान विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल)

ईमेल : makeshwarrajak2018@gmail.com
S- 43, Rasbihari Nayak Sarani
Ramkrishnapally (South)
Benachity, Durgapur- 13
Dist- Burdwan (West Bengal)
PIN- 713213
Mobile Number- 9332653595

कृष्णा सोबती के उपन्यासों के स्त्री-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

रूपा कुमारी साव

साहित्य और समाज के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। दोनों के ही विकास की प्रक्रिया एक दूसरे पर निर्भर होती है। समाज में होने वाले किसी भी परिवर्तन का प्रभाव मानव-मन पर पड़ता है, जिसे रचनाकार साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास करता है। आरम्भ में जहाँ उपन्यास साहित्य का वर्ण्य विषय तिलस्मी, मनोरंजनपरक कथा, भूत-प्रेत, संयोग-वियोगपरक भावों का प्रकटीकरण था, वहीं आज वर्तमान साहित्य का स्वरूप नवीन तथ्यों एवं यथार्थ से ओत-प्रोत है। इसमें मानव-जीवन की मानसिक क्रिया-प्रक्रिया, कुंठा, तनाव, घुटन, राग-द्वेष आदि मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रण विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। जहाँ तक मनोविज्ञान का प्रश्न है तो मनोविज्ञान का अर्थ है 'मन का विज्ञान' अर्थात् वह शैक्षिक और अनुप्रयोगात्मक विधा जो प्राणी यानि मनुष्य एवं पशु आदि के मानसिक प्रक्रियाओं का, उसके अनुभवों एवं प्रकट तथा अप्रकट व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। सिगमंड फ्रायड 'आधुनिक मनोविज्ञान' के जनक माने जाते हैं। उनके अनुसार– मन या व्यक्तित्व के दो पहलू होते हैं जिनके माध्यम से मानव के आंतरिक क्रिया-कलापों का उसके चरित्र की समग्रता में अध्ययन संभव है। प्रथम, गत्यात्मक पहलू (इदम्, अहम्, पराहम्) तथा द्वितीय, स्थल रूपरेखीय पहलू (चेतन, अवचेतन, अचेतन)।

युद्धत्तरकालीन परिस्थितियों के फलस्वरूप पाश्चात्य पृष्ठभूमि पर पल्लवित मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन की परंपरा का प्रभाव हिंदी उपन्यास लेखन पर भी पड़ा। हिंदी के उपन्यासकार फ्रायड, युंग और एडलर की मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं से प्रभावित हुए और इसके परिणामस्वरूप हिंदी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन' की परंपरा का सूत्रपात हुआ। हिंदी साहित्य के अंतर्गत जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी एवं अज्ञेय मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन के लिए जाने जाते हैं। अनेक विद्वानों ने जैनेन्द्र के 'परख' उपन्यास से मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात माना है। जैनेन्द्र ने 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' आदि उपन्यासों में पात्रों के मन की अतल गहराइयों में होने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रियाओं का यथार्थ चित्रण किया है। इलाचन्द्र जोशी ने 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित' आदि उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए मानव मन की कुंठाओं एवं ग्रन्थियों को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' उपन्यासों में मनोविश्लेषण के सिद्धांतों का आश्रय ग्रहण करते हुए व्यक्तित्व विकास, असामान्य व्यवहार, कामवृत्ति, अहम्, भय, कुंठा आदि मानसिक विकृतियों का चित्रण किया है। यधपि कृष्णा सोबती मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार तो नहीं हैं परन्तु यहाँ हम उनके उपन्यासों के स्त्री-चरित्रों को उनके व्यक्तित्व की समग्रता में अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का आश्रय

ग्रहण करेंगे। ऐसा इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि आज वर्तमान साहित्य का संपूर्ण ढाँचा ही मनोवैज्ञानिक धरातल पर अवस्थित है। ऐसे में किसी रचना के पात्र, जो इस समाज के ही प्रतीक होते हैं, बिना मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का आधार ग्रहण किए उनके आंतरिक व्यक्तित्व का आकलन संभव नहीं है। इनके द्वारा रचित उपन्यासों में 'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यास एकमात्र मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, शेष सभी उपन्यासों के अध्ययन में भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण उपयोगी सिद्ध होंगे।

कृष्णा सोबती द्वारा रचित लघु उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' की प्रमुख स्त्री पात्र 'पाशो' है, जिसे केंद्र में रखकर लेखिका ने इस पितृसत्तात्मक समाज में नारी जीवन की विडंबना एवं तन-मन की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। पाशो एक ऐसे भारतीय मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार में पली-बढ़ी है, जहाँ एक स्त्री का जीवन यदि एक बार भी अपनी धुरी से पृथक होता है तो वह विखंडित होता चला जाता है। पाशो भी एक ऐसी ही स्त्री है जिसे उसकी इच्छानुसार कभी शारीरिक-मानसिक सुख की प्राप्ति हुई ही नहीं। ननिहाल में मामा-मामियों द्वारा दिए जाने वाले मानसिक कष्ट उसके 'अचेतन मन' में उस कदम को बढ़ावा देने लगते हैं जिसे वह 'आजादी' या 'मुक्ति' का साधन मानने लगती है। यही कारण है कि वह पलायन कर शेखों की हवेली में पहुँच जाती है जहाँ उसकी सुरक्षा का ध्यान रखते हुए उसका विवाह अम्बडवाल गाँव के दिवानजी से करा दी जाती है परन्तु उसके जीवन की परिस्थितियाँ करवट लेती हैं। वह पति के सुख से वंचित हो अपने देवर बरकत के शोषण का शिकार होती है। उसके पश्चात लाला और उसके तीन जवान बेटों द्वारा उसका शारीरिक-मानसिक शोषण होता है। मानों वह कोई इंसान नहीं, बल्कि कोई वस्तु हो जिसे कभी पुरुषत्व के जोर पर तो कभी खरीद-बिक्री द्वारा कोई भी अपना बना ले रहा है। ऐसी जटिल परिस्थितियों में व्यक्ति के मन में 'हीन भावना' का जागना स्वाभाविक है। मनोवैज्ञानिक एडलर ने व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली मनोग्रंथियों में 'हीनता ग्रन्थि' का उल्लेख किया है। यह ग्रन्थि व्यक्ति में हीनता की भावना उत्पन्न कर व्यक्ति को अपने वातावरण एवम् समाज के साथ एक उपयुक्त समायोजन स्थापित करने में असफल बना देता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति किसी भी कार्य के असफलता के लिए स्वयं को दोषी मान अपने भाग्य को कोसता है। पाशो भी 'हीन भावना' से भर स्वयं को कोसती हुई कहती है कि– 'पिछले जन्म पाप किए होंगे, दुखियारों को और दुखाया होगा, सताए हुओं को और सताया होगा। नहीं तो जीते-जी दिवानों की घरवाली की यह हालत होती।[1] साथ ही ऐसी परिस्थितियाँ जीवन के प्रति मोहभंग पैदा कर देती है। पाशो भी अपना सब कुछ खोकर जीवन की जटिल परिस्थितियों के बहाव में बहती चली जाती है और अंततः शरणार्थी कैंप से वह अपने भाई द्वारा पहचाने जाने पर पुनः अपने घर, अपनों के बीच, अपनी डार पर पहुँच जाती है।

'मित्रोमरजानी' उपन्यास में पहली बार एक स्त्री लेखिका द्वारा स्त्रीपक्ष में 'सेक्सुअलिटी' को एक गंभीर समस्या के रूप में दर्शाया गया और 'सेक्स' को पुरुष के समान ही स्त्री के लिए भी आवश्यक एवम् आनंदप्रद बतलाया गया। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र सुमित्रावन्ती उर्फ मित्रो पंजाब के एक संयुक्त परिवार की ऐसी बहु है जिसकी जैविक जरूरत आर्थिक संकट से भी बड़ी समस्या है। वह स्वयं से प्रेम करती है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में, 'कृष्णा सोबती की मित्रो के तमाम आवेग और उच्छ्वास, क्रीड़ाएं और मुद्राएं पुरुष के रस-रंजन के लिए नहीं, अपनी तृप्ति के लिए हैं। पुरुष का आनंद महत्वपूर्ण नहीं, अपनी 'उपलब्धि' महत्वपूर्ण है। यानी भोग में सम-बराबरी की ठोस मांग जो स्त्री के बिना शर्त समर्पण की मांग का विलोम रचकर 'काम' को संतानोत्पत्ति के आरोपित दायित्व से मुक्त कर 'आनंद' का स्रोत भी बनाती है। जाहिर है यहाँ पुरुष की निरंकुश सत्ता छिन्न-भिन्न हुई है। आखेटक बने रहने की अभ्यस्त उसकी हस्ती 'आखेटक' कर लिए जाने की पीड़ा से बिंध-बिंध जाने लगी है।[2] वास्तव में यहाँ कृष्णा सोबती समाज के समक्ष यह प्रश्न उठाती है कि एक स्त्री अपने 'सेक्स डिजायर' का क्या करें? नारी शुचिता के नाम पर कब तक एक स्त्री देह दबे और क्यों? असल में हर स्त्री में आत्ममोह (Narcissism)

होता है 'मनोविश्लेषण के अनुसार आत्ममोह का अर्थ है' व्यक्ति का स्वयं अपने प्रति कमात्मक प्रेमभाव का होना 'इस सिद्धांत की खोज स्वयं फ्रायड ने एक पौराणिक कथा को आधार बनाकर निर्मित किया' मित्रो का भी अपने सौन्दर्य के प्रति आकर्षण द्रष्टव्य है- 'हाथों से छातियाँ ढँक मग्न हो कहा– सच कहना, जिठानी सुहागवन्ती, क्या ऐसी छातियां किसी और की भी हैं?[3] परन्तु हमारे समाज में यदि कोई स्त्री अपनी देह-पिपासा का संकेत भी करे तो वह 'निर्लज्ज', 'चरित्रहीन', 'बेहया' जैसी संज्ञाओं से नवाजी जाती है। मित्रो अपने पति के प्रेम के अभाव में जब अपनी कामतृप्ति के उद्देश्य से माँ के घर जाती है तो वह जीवन की इस सच्चाई से अवगत होती है कि– 'तेरी माँ के जमाने लद गए, री मित्ती! अब कौन इसका मित्र-प्यारा और कौन इसका संगी-साथी'[4] अंततः वह अपनी काम-भावना पर नियंत्रण कर वापस अपने बेसुध मर्द सरदारीलाल के पास आ लौट आती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी यह सत्य है कि व्यक्ति असुरक्षा की भावना से ग्रस्त होने पर उस दिशा की ओर ही अग्रसर होता है जहाँ उसे सुरक्षा पाने की उम्मीद हो। मित्रो भी यही कदम उठाती है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

'तिन पहाड़' उपन्यास में प्रेम में असफल होने वाली नारी 'जया' की स्नेहमयी एवं कारुणिक स्थितियों का चित्रण है। अनाथ जया का पालन-पोषण श्रीदा की माँ करती है। जया बचपन से श्रीदा के संपर्क में रही है। दोनों के मध्य प्रेम भी उत्पन्न होता है जो विवाह की स्वीकृति भी प्राप्त करता है। परन्तु श्रीदा विदेश जाकर वहाँ 'एडना' नामक युवती से विवाह कर लेता है। जया इस मानसिक आघात से स्वयं को उबारने के लिए दार्जिलिंग जाती है जहाँ वह तपन के संपर्क में आती है जो उसके आगे के सफर का भागीदार होता है। फिर पुनः उसकी मुलाकात श्रीदा से होती है। जीवन के इस मोड़ पर जहाँ एक ओर उसका स्वाभिमान उसे श्रीदा के पास लौटने से रोकता है, वहीं दूसरी ओर वह तपन की सहानुभूति का पात्र भी नहीं बनना चाहती। ऐसी स्थिति में वह 'पलायन' जैसी मानसिक विकृति का शिकार हो 'आत्महत्या' के मार्ग का चयन करती है। फ्रायड ने अपने सिद्धांत में, 'आत्महत्या को मूलतः एक हत्या (Murder) के रूप में व्याख्याति किया। इस सिद्धांत के अनुसार जब व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को खो देता है जिसे वह घृणा एवं प्यार दोनों ही किया है तथा उस व्यक्ति को इंट्रोजेक्ट (introject) किया है, तो व्यक्ति में आक्रामकता (aggressiveness) स्वयं अपनी ओर निदेशित हो जाती है और यदि यह भाव काफी तीव्र हुआ तो व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है।[5] अतः इस दृष्टि से देखें तो जया का आत्महत्या करना एक मनोवैज्ञानिक तथ्य ही है।

'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने बचपन में 'चाइल्ड एब्युज' का शिकार हुई और तत्पश्चात् कुस्मृतियों से आक्रांत स्त्री मन के मनोविज्ञान को अपनी कथा नायिका रत्तिका (रत्ती) के माध्यम से प्रस्तुत किया है। बचपन में घटी इस कुत्सित घटना का रत्ती के अचेतन मन पर एक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण एक भरी-पूरी लड़की होने के बावजुद वह अपनी चढ़ती किशोरावस्था से लेकर ढलती यौवनावस्था तक खुद को एक अधुरी स्त्री समझती है। उसके मनोमस्तिष्क में ऐसी बद्धमूल मानसिक ग्रंथि है जिसमें वह स्वयं ही पूरी तरह उलझ जाती है, 'रत्ती एक जटिल मनोग्रन्थि की गिरफ्त में है'। वह तीव्र इच्छा से भर उठती है और हताश हो अपने में ही लौट आती है, अपने से टकराती है, संघर्षरत होती है, लड़ाई लड़ती है, कहीं बाहर नहीं 'बाहरी शक्ति से नहीं' अपने से नहीं 'गहरे में कहीं भीतर' अपनी ही मानसिक ग्रन्थि से जिस के कारण वह सिर्फ एक चिथड़ा है जिस से वह एक बार भी समूची औरत नहीं बन पाती।'[6] उपन्यास नायिका रत्ती अपने साथ हुई बलात्कार की घटना से इस हद तक मर्माहत होती है कि वह 'सेक्स' जैसी शरीर की स्वाभाविक आवश्यकता को अपने अचेतन में दमित करने लगती है। वह स्त्री-पुरुष के इस नैसर्गिक सम्भोग से भयभीत रहती है और यही कारण है कि वह अपने आप को अधूरेपन के भावों से घेरे रखती है– 'जिस सड़क का कोई किनारा नहीं– रत्ती वही है। वह आप ही अपनी सड़क का 'डैड-एंड' है। आखिरी छोर है।'[7] अंततः 'दिवाकर' एक ऐसे पुरुष पात्र के रूप में सामने आता

है जो रत्ती की 'हीन ग्रंथि' को समूल नष्ट कर पाने में पूर्णतः सक्षम हो जाता है।

'जिन्दगीनामा' उपन्यास में शाहनी वह प्रभामंडल है जो शाहों को उनके आतंक, अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि के कर्मों से सुरक्षा कवच प्रदान करती है। शाहनी उच्च वर्ग की महिला होने के बावजूद ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट जैसे मानसिक विकृतियों से दूर रहने वाली स्त्री चरित्र है। एक बड़े ज़मींदार की पत्नी होकर भी उसमें 'अहम्' (Ego) नहीं है। व्यक्ति जब हताश हो जाता है और चिंता, तनाव, कुंठा के कारण वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति की आशा का त्याग कर देता है तो वह धर्म का आश्रय ले अपने मन को संत्वना देने का प्रयास करता है। संतान सुख से वंचित शाहनी भी धर्म का आश्रय ग्रहण करती है। अंततः वह समय आता है जब वह शाह परिवार को संतान सुख देने की अच्छी खबर सुनाती है। मातृत्व प्रेम की प्राप्ति शाहनी को मानसिक तौर पर शांति प्रदान करती है। साथ ही इस उपन्यास की जो दूसरी प्रमुख स्त्री चरित्र है वह है, राबयाँ जो अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त तथा कला-गुणों का भंडार है। उसके इन्हीं गुणों के प्रति शाह जी भी आकर्षित होते हैं। मनोविज्ञान का मानना है कि नारी का रूप-सौंदर्य पुरुषों के आकर्षण का केंद्र होता है परन्तु हम यहां देखते हैं कि शाह जी केवल राबयाँ के सौंदर्य के कारण ही उसके प्रति आकर्षित नहीं होते बल्कि उसके गुण भी इस आकर्षण का केंद्र कहा जा सकता है। 'ऐ लड़की' उपन्यास में स्त्री में गहरी सजगता रखने वाली कृष्णा सोबती ने मृत्यु शैया पर पड़ी एक बीमार वृद्धा माँ (अम्मू) और उसकी पुत्री के परस्पर वार्तालाप द्वारा स्त्री-पुरुष संबंध, परिवार में स्त्री की स्थिति, पैतृक संपदा पर नारी का भी अधिकार, बंधन और स्वतंत्रता जैसे नारी-जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला है। मृत्यु शैया पर पड़ी होने के बावजुद अम्मू की जिजीविषा, मृत्यु की प्रतीक्षा, स्मृति और पीड़ा का जैसा मनोवैज्ञानिक चित्रण कृष्णा जी ने इस उपन्यास में किया है, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। अम्मू के व्यक्तित्व का स्त्रीकरण धर्म, समाज और परंपरा के अनुरूप हुआ है। उसकी मानसिकता भारतीय परिवार रूपी संस्था का पूर्णतः समर्थन करती है। उधर, आज आधुनिक युग में शिक्षा और नारी जागरण ने स्त्रियों में आत्मबल पैदा किया है। वह अब पुरुषों के हाथों का झुनझुना नहीं बनना चाहती बल्कि विवाह-संबंध में बराबरी का स्थान चाहती है। यह स्त्रियों का अहम् नहीं बल्कि उनके अचेतन मन में सदियों से दमित अधिकारों की माँग है। इसी मानसिकता को अपनी माँ अम्मू के समक्ष प्रस्तुत करती हुई बेटी कहती है– 'मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज देगा, मैं उसे जवाब दूँगी।[8]

'दिलोदानिश' उपन्यास में संयुक्त सामंती परिवार के कर्त्ता कृपानारायण साहब जिन दो स्त्रियों के बीच केन्द्रीय संतुलन स्थापित करते हुए अन्त तक अपना वर्चस्व, अहम्, अक्लमंदी और समझदारी को कायम रखते हैं, वे हैं– कुटुंबप्यारी और प्रेयसी महकबानो। कुटुंबप्यारी उपन्यास के आरम्भ में आदर्श भारतीय नारी, आदर्श पत्नी के समस्त संस्कारों के साथ पाठकों के समक्ष उपस्थित होती है परन्तु उसके इस सुखमय जीवन में जब 'महकबानो' रूपी तूफान का आगमन होता है तो मानो उसकी गृहस्थी बिखर सी जाती है। जहाँ आरम्भ में वह अपने पति कृपानारायण को अपना 'परमेश्वर' मानती, परन्तु अपनी सौतन 'महकबानो' के कारण उसका प्रेम, ईर्ष्या क्रोध का रूप धारण कर लेता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कुटुंबप्यारी 'मनस्ताप' (Psychoneurosis) का शिकार हो जाती है। एडलर का मानना है कि व्यक्ति मनस्ताप से तब पीड़ित हो जाता है, जब उसकी सामान्य जीवन शैली में रुकावट आती। वास्तव में यह एक सामान्य मानसिक विकार है जो जीवन की विभिन्न समस्याओं के साथ समायोजन अथवा समाधान न कर पाने के कारण उत्पन्न होता है। निरंजन देव शर्मा के अनुसार– 'कुटुंबप्यारी की स्थिति साँप के मुहँ में छछूंदर वाली है। वह न तो अपने पति की प्रेमिका को लेकर विद्रोह कर सकती है न ही अपने पति को बाँध कर रख सकती है। वह केवल अपने पति की प्रेमिका महकबानो से ईर्ष्या कर सकती है। मौके-बे-मौके कुटुंबप्यारी अपने दाँव खेलने व तेवर दिखाने से नहीं चूकती और कम से कम इस लड़ाई में सफल रहती है कि कृपानारायण अपने घर की

जिम्मेदारियों और पत्नी के हक को न भूलें।[9] दूसरी तरफ महकबानो एक ऐसी स्त्री चरित्र है जो आदि से अन्त तक उपन्यास में अपने व्यक्तित्व एवं व्यवहार की महक बिखेरती रहती है। वह कुंठा, ईर्ष्या, द्वेष जैसी मानसिक कुवृत्तियों से कोसों दूर है। यही कारण है कि वह अन्त तक अपने मातृत्व और प्रेमिका रूप से संबंधित कर्तव्यों का निर्वाह भलीभाँति करती रहती है। 'समय सरगम' उपन्यास में लेखिका ने आज के मानव-जीवन में 'वृद्धावस्था' से जुड़े कटु सत्यों पर प्रकाश डाला है। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी संतानों को कोई लाभ पहुँचाने की अवस्था में नहीं रहता इसलिए उसे अपनों की उपेक्षा का पात्र बनना पड़ता है। फलस्वरूप जीवन की इस अन्तिम अवस्था में जब शारीरिक और मानसिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण उन्हें अपनों के साथ की जरूरत होती है, उन्हें अकेलापन, संत्रास, भय, कुंठा, नैराश्य, तनाव, चिंता और असुरक्षा की भावना के साथ जीवन यापन करना पड़ता है। वृद्धावस्था के इसी सत्य का दिक्दर्शन लेखिका ने अपनी कथा-नायिका आरण्या तथा उपन्यास के अन्य स्त्री पात्रों के माध्यम से कराया है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री-जीवन को बड़ी गहनता एवं कलात्मकता के साथ जीवंत रूप में उजागर किया गया है। इनके प्रत्येक उपन्यास के स्त्री चरित्रों को यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो उनमें कुछ ऐसा खास है जो उन्हें हिन्दी साहित्य के विशिष्ट स्त्री पात्रों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। इनके स्त्री पात्र न केवल अपने आस्तित्व के प्रति पूरी तरह से सजग हैं बल्कि वे अपने भाग्य की नियंता भी स्वयं हैं जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष खड़ी होने में सक्षम हैं।

संदर्भ

1. सोबती कृष्णा, डार से बिछुड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-2018, पृ.-79। **2.** अग्रवाल डॉ. रोहिणी, स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं.- 2011, पृ. 311। **3.** सोबती कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-2019, पृ.-19। **4.** वही, पृ.-97। **5.** सिंह अरुण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं.-2021, पृ.-357। **6.** मोहन डॉ. नरेंद्र, आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1973, पृ.-130। **7.**सोबती कृष्णा, सूरजमुखी अँधेरे के, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-2008, पृ.-10। **8.** सोबती कृष्णा, ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.-2021, पृ.-49। **9.** शर्मा निरंजन देव, शब्द परस्पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.- 2015, पृ.-124।

❑❑

द्वारा- राहुल कुमार साव
326, आर. बी. सी. रोड, गौरीपुर,
पोस्ट- गरिफा
जिला- 24 परगना (नॉर्थ)
पिन- 743166
मो. 8100658262

'महत्वपूर्ण बात यह नहीं है कि हर बच्चे को पढ़ाया जाना चाहिए, बल्कि हर बच्चे को सीखने की इच्छा दी जानी चाहिए।' –जॉन लुबॉक

इंग्लैंड के प्रसिद्ध परोपकारी लोगों में से एक ने कहा, यह उन शैक्षिक उद्धरणों में से है जो विषयों को रटने के पारंपरिक सीखने के तरीकों का मुकाबला करते हैं। लुबॉक ने स्पष्ट किया है कि बच्चों को किसी विशेष विषय का अनिवार्य रूप से अध्ययन करने के बजाय, उनके सीखने के अनुभव पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए कि बच्चों को क्या और कैसे पढ़ाया जा रहा है। शिक्षकों की यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है कि वे अपने छात्रों को केवल कक्षा में सीखने तक सीमित करने के बजाय ज्ञान के लिए प्रयास को प्रज्वलित कर रहे हैं।

भरतपुर का चारबाग परिसर : कुछ रोचक ऐतिहासिक तथ्य

डॉ. गौरव दीप करौला

भरतपुर जाट रियासत सम्पूर्ण मध्य भारत में वैसे तो अपने परिचय विशेष की खास मोहताज नहीं है, क्यूंकि जब-जब उत्तर मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक इतिहास का अध्ययन किया जाता है तब-तब इस जाट रियासत के शौर्य का अध्ययन विशेष रूप से मुखर हो जाता है। इस रियासत का क्षेत्रीय भौगोलिक सीमांकन इस प्रकार है कि यह रियासत उत्तर-भारत के वृहद मैदानी भाग में पश्चिमी किनारे पर ट्रांस-यमुना का भाग है। वर्तमान में यह जिला राजस्थान के पूर्वी द्वार के नाम से भी जाना जाता है। पैराणिक इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है की यह प्रदेश प्राचीन पैराणिक महाजनपदीय युग में मत्स्य तथा शौरसेन महाजन पदों का एक महत्वपूर्ण बफर प्रदेश रहा। मध्यकाल में यह क्षेत्र या तो मुस्लिम शासकों के नियंत्रण में रहा या फिर राजपूत शासकों के नियंत्रण में उत्तर मध्यकालीन दुरूह परिस्थितियों ने इस प्रदेश की विलग ठेठ देहाती लोक-संस्कृति को राजनीतिक प्रतिनिधित्व के रूप में 'जटवाड़ा' स्वरूप प्रदान किया। इस क्षेत्रीय राजनीतिक प्रतिनिधित्व में ठेठ देहाती सामाजिक व ब्रज से रची-बसी धार्मिक व तत्कालीन राजपूती-मुगलिया वैभव की मिली जुली सुगंध मौजूद थी। जिसका कालांतर में 'भरतपूर रियासत' के रूप में अभ्युदय संभव हो सका। लम्बे संघर्ष के पश्चात भरतपुर में महाराजा सूरजमल के कुशल शासन के परिणाम स्वरूप ही जाट सत्ता व शक्ति का मुगल, मराठों, जयपुर के कछ्वाहा राजपूत शासकों की नाक के नीचे अभूतपूर्व विकास संभव हुआ। महाराजा सूरजमल का शासनकाल (1707 से 1763 ई.) उनको एक कुशल योद्धा, रणनीतिकार एवं योग्य शासक निरूपित करता है, परंतु साथ ही इस कालखंड से संबंधित कई महत्वपूर्ण संस्मरण व घटनाएं भी रही हैं जो कि भरतपुर रियासत में स्थित चारबाग परिसर में स्थित ऐतिहासिक इमारतों से संबंधित हैं जो कि भरतपुर के इतिहास का अंग होने के बावजूद इतिहास का अंग नहीं बन पाई, उनका भी ऐतिहासिक अवलोकन किया जाना चाहिए।

भरतपुर रियासत की इस ऐतिहासिक जनश्रुति का संबंध मराठा राज्य के पेशवा बाजीराव की प्रेयसी मस्तानी से है। इस संबंध में यहां की जनश्रुति एवं यहां की पुरातात्विक धरोहर 'मस्तानी की सराय' की ऐतिहासिकता का संबंध बड़ा ही रोचक है जिसका वर्तमान में यहां के क्षेत्रीय इतिहासकारों व समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने भी समय-समय पर संक्षिप्त उल्लेख भी किया है। जनश्रुति की मानें तो लगभग 281 वर्ष पूर्व तत्कालीन वैभवशाली मराठा साम्राज्य के प्रभावी सेनानायक पेशवा बाजीराव की प्रेयसी 'मस्तानी बाई'[1] ने अपने अंतिम समय के कुछ दिन भरतपुर रियासत में भी काटे थे। वस्तुतः बाजीराव एवं मस्तानी की प्रेम कहानी का अंतिम दुखांत पारिस्थितिकीय परिदृश्य की साक्षी तत्कालीन मराठा अंत:राजनीति ने भरतपुर रियासत को भी चुना था। इस ऐतिहासिक परिदृश्य के अनुसार जब पेशवा बाजीराव 'नासिर जंग' से युद्ध करने के

लिए अपने महलों से विदा हुए तब उनके पीछे से मराठा सामंतों व उनके परिवारजनों ने 'मस्तानी बाई' को बंधक बना कर अज्ञातवास हेतु भेज दिया। भरतपुर में आम जनश्रुति की मानें तो भरतपुर में मथुरा गेट पर 'मस्तानी की सराय' नाम से एक जगह है जिसे 'पक्की सराय' के नाम से भी जाना जाता है जिसका कि वर्तमान साक्ष्य रूप में अब सिर्फ बृहद दरवाजा ही मात्र शेष रह गया है।

माना जाता है कि 'मस्तानी बाई' सन 1739 ईस्वी में भरतपुर आई तथा उन्होंने इसी सराय में अपने अज्ञातवास के कुछ दिन काटे थे। पेशवा बाजीराव का कार्यकाल 1720 से 1740 ईस्वी तक रहा था। इस कालखंड के अंतर्गत 1729 ईस्वी में बाजीराव पेशवा द्वारा बुंदेलखंड के शासक राजा छत्रसाल बुंदेला द्वारा निवेदन करने पर उनके राज्य की शक्तिशाली 'नवाब मोहम्मद खान बंगश' से रक्षा करने के फलस्वरूप राजा छत्रसाल ने कृतज्ञता स्वरूप अपनी मुस्लिम पुत्री 'मस्तानी' का विवाह पेशवा बाजीराव से कर दिया। साथ ही झांसी, सागर, बांदा, कालपी के इलाके एवं बहुत सा धन भेंट स्वरूप प्रदान किया।[2]

इस रूपमती कन्या की अगाध सुंदरता व कुशल नर्तन एवं रण कौशल योग्यता ने बाजीराव पेशवा का हृदय शीघ्र ही झकझोर दिया और पेशवा बाजीराव अपना दिल मस्तानी को दे बैठे। जिसका कि खामियाजा शीघ्र ही पेशवा बाजीराव को उनके कट्टर रूढ़िवादी मराठा परिवार व समाज की तरफ से उनके व मस्तानी के विवाह के भारी विरोध व बहिष्कार के रूप में प्राप्त हुआ। लेकिन बाजीराव पेशवा पर इन सबका ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ा और इस विवाह के फलस्वरूप 1734 ईस्वी में मस्तानी से उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ। जिसका नाम पेशवा बाजीराव ने 'कृष्णा राव' रखा जिसे पेशवा के परिवारजनों व तत्कालीन मराठा सामंतों ने बदलकर मुस्लिम नाम 'शमशेर बहादुर' कर दिया। जब पेशवा अपने युद्ध अभियान को गए तब पीछे से उनके परिवार जनों ने मस्तानी को कैद कर उसे राज्य से बाहर अज्ञातवास हेतु निर्वासित कर दिया। जिसका पता चलने पर पेशवा बाजीराव को भारी मानसिक आघात पहुंचा और 1740 ईसवी को नर्मदा नदी के रावेर तट पर लगे उनके कैंप में उन्हें भीषण ज्वर ने आ घेरा। इस भारी ज्वर से पीड़ित पेशवा ने मस्तानी के विरह से व्याकुल हो करके औषधि लेना भी बंद कर दिया। उनकी इस बिगड़ती हालत को देखते हुए पेशवा की प्रथम पत्नी 'काशीबाई' ने अपने परिवार के फैसले की खिलाफत करते हुए मस्तानी को मुक्त करने का आदेश देकर उसे पेशवा से मिलने हेतु बुलवाया लेकिन पेशवा ने इससे पहले ही अपने प्राण त्याग दिए और उधर रास्ते में मस्तानी बाई ने।

1740 ईसवी में पेशवा बाजीराव एवं मस्तानी की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र शमशेर बहादुर को पेशवा की विधवा काशीबाई के संरक्षण में ही पालन पोषण एवं सैन्य प्रशिक्षण दिया गया। शमशेर बहादुर को वर्तमान उत्तर प्रदेश में बांदा और कालपी के अपने पिता के प्रभुत्व की जागीर के एक हिस्से को शासन हेतु जागीर रूप में दिया गया। 1761 ईस्वी में पानीपत के तृतीय युद्ध में पराजित एवं त्रस्त मराठा सेना को भरतपुर रियासत के शासक महाराजा सूरजमल ने हर तरह से सुविधा एवं शरण प्रदान की। इस युद्ध में शमशेर बहादुर भी काफी घायल हो गया था। वह घायल अवस्था में ही 'कुम्हेर' भरतपुर पहुंचा जहां उसका यथोचित सम्मान तथा उसके घावों का उपचार भी किया गया। बाद में उसको उपचार हेतु भरतपुर लाया गया। परंतु उसके हृदय में पानीपत की गहरी ठेस लगी थी और उसने भरतपुर में ही अपने प्राण त्याग दिए।[4] जाट नरेश महाराजा सूरजमल ने शमशेर बहादुर का राजकीय क्रिया कर्म करके उसको आधुनिक 'चारबाग' की चारदीवारी में ही दफनाया और इसी स्थान पर उसकी स्मृति में एक मजार मस्जिद और कुंए का निर्माण भी कराया। यह स्थान ठीक 'मस्तानी की सराय' के सामने स्थित है। इस प्रकार इश्क तथा धार्मिक सौहार्द के प्रतीक मस्तानी व उसके पुत्र की स्मृति में महाराजा सूरजमल ने 'मस्तानी की सराय' नामक परिसर व 'शमशेर बहादुर' का मकबरा बनवाया। इस मजार को बनवाने के पीछे महाराजा सूरजमल की मानसिक सोच संभवत पानीपत के तृतीय युद्ध में हुई मराठों की हार के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करना रहा होगा।

पानीपत का तृतीय युद्ध कहने को तो दो राजनीतिक शक्तियों के मध्य युद्ध था। परंतु यह युद्ध

हिंदू-मुस्लिम युद्ध का रंग ले चुका था। इस युद्ध में मराठों की भीषण हार हिंदुत्व की हार थी। सदाशिव राव भाउ की अकुशल रणनीति अव्यावहारिक नेतृत्व ने मराठों को भीषण हार झेलने पर विवश कर दिया जिसकी वेदना महाराजा सूरजमल को भी थी। भरतपुर नरेश महाराजा सूरजमल द्वारा शमशेर बहादुर को 'चारबाग' परिसर में दफनाना व उसकी स्मृति में एक मजार, मस्जिद व कुए का निर्माण करना 'शमशेर बहादुर' की वीरता के प्रति हृदय सुमन समर्पित करना था। साथ ही मराठों की भीषण क्षति के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करना भी था। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि मस्तानी की सराय को 'पक्की सराय' के नाम से भी जाना जाता है। सराय को लेकर एक अन्य तथ्य इतिहासकार उपेंद्रनाथ शर्मा जी ने अपनी पुस्तक[6] के अंतर्गत उल्लेखित किया है कि इस मजार (शमशेर बहादुर) के सामने इसी के समय नखास की एक पक्की सराय का निर्माण भी करवाया गया था।

'नखास' शब्द वस्तुतः अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है दासों, पशुओं विशेषकर घोड़े आदि के क्रय विक्रय का बाजार। संभवतः यह स्थान जहां पर मस्तानी की सराय है उसके बाहर राजकीय पथ पर पूर्व में बाह्य व्यापारियों हेतु पशुओं घोड़े, सामान आदि के क्रय विक्रय का एक सुलभ बाजार लगता था, जहां पर भरतपुर रियासत की आम जनता व प्रशासनिक अधिकारी अपनी अपनी जरूरतों के अनुसार सामानों का क्रय विक्रय करते थे। वैसे भी इस जगह की भौगोलिक, यातायात पृष्ठभूमि इस प्रकार है कि जहां पर दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी आदि जैसी तत्कालीन मुगलिया शहरों से आने वाले व्यापारियों के लिए भरतपुर रियासत के आगमन में यह स्थान प्रथम व सीधे सुगम ही पड़ता था जो कि भरतपुर रियासत के प्रशासनिक केंद्रीय कार्यालयों व राज भवनों से दूर था। जिससे रियासत की प्रशासनिक केंद्रीय गतिविधियों की गोपनीयता भी भंग नहीं होती थी। इस हेतु भरतपुर सियासत के क्षेत्र में सामरिक सुरक्षा हेतु एक मजबूत 'मथुरा दरवाजा' व सैनिक चौकी भी भरतपुर रियासत में स्थापित की हुई थी जो कि हर बाहर से आने-जाने वालों की गतिविधियों पर पैनी नजर रखती थी। यह मथुरा गेट व उसके समीपवर्ती चारबाग का इलाका 'फतेहगढ़ क्षेत्र' में आता था। इसी फतेहगढ़ क्षेत्र में मथुरा दरवाजे के अंदर बाहर से आने वाले यात्रियों की सुविधा हेतु रियासत ने एक पक्की सराय का भी निर्माण कराया था।[7]

इसी पक्की सराय में तत्कालीन मराठा पेशवा बाजीराव की प्रेयसी मस्तानी अपने अज्ञातवास के दौरान भरतपुर रियासत के तत्कालीन महाराजा सूरजमल के शासनकाल में कुछ समय के लिए ठहरी थी। अतः उसके जाने के पश्चात इस 'नख़ास की पक्की सराय'[8] को 'मस्तानी की सराय' के नाम से भरतपुर के आमजन द्वारा संबोधित किया जाने लगा। इस 'मस्तानी की सराय' के ठीक सामने ही मस्तानी के पुत्र 'शमशेर बहादुर' का मकबरा स्थित है। जिसे पूर्व में बांदा वाले नवाब साहब के मकबरे के नाम से भी संबोधित किया जाता था।[9] जैसा कि मराठा इतिहास से ज्ञात होता है कि शमशेर बहादुर को उसके राज्य अधिकार में बांदा और कालपी की जागीरें प्राप्त हुई थी। अतः शमशेर बहादुर के इस मकबरे को पूर्व में बांदा वाली नवाब साहब के मकबरे के रूप में संबोधित किया जाना भी सही एवं तार्किक ही है।

इसी फतेहगढ़ क्षेत्र में स्थित चारबाग परिसर में महाराजा सूरजमल द्वारा भूतपूर्व मुग़ल वजीर इमाद उल मुल्क को अपने राज्य में शरण प्रदान की थी। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि है यह वही गाजी उद्दीन इमाद उल मुल्क था जिसने थोड़े ही दिनों पहले समूचे हिंदुस्तान को महाराजा सूरजमल के विरुद्ध सशस्त्र सुसज्जित कर दिया था कि कैसे भी इस जाट नरेश सूरजमल को नष्ट किया जा सके।[10] ऐसे शत्रु को भी महाराजा सूरजमल ने उसकी तत्कालीन दयनीय परिस्थिति व दारुण पुकार के फलस्वरूप उसे व उसके परिवार को अपने राज्य में शरण प्रदान की तथा उसके निवास हेतु एक महलनुमा हवेली परिसर में सभी आमोद-प्रमोद की अमूल्य वस्तुओं से सजाकर खाली कर दिया।[11] यह हवेली वर्तमान में चारबाग परिसर में संचालित 'राजकीय जनाना अस्पताल' परिसर में व 'रामकटोरी नेत्र चिकित्सालय' के समीप एवं 'चिंताहरण

हनुमान मंदिर' के पीछे स्थित है ऐतिहासिक परिसर में नीचे बने हुए ग्राउंड परिसर में वर्तमान में 'रेड क्रास सोसाइटी' का कार्यालय संचालित है। इस ऐतिहासिक इमाद उल मुल्क हवेली परिसर में पूर्व में राजकीय चिकित्सकों का निवास हुआ करता था। वर्तमान में यह परिसर उपेक्षा व उदासीनता से ग्रसित है। इस हवेली के समीप 'नवाब गली' अभी भी मौजूद है।[12]

अब प्रश्न उठता है कि 'मस्तानी की सराय परिसर', शमशेर बहादुर का मकबरा, गाजीपुर-उद्दीन-इमाद-उल-मुल्क की हवेली यह तीनों इस्लामिक राजनीतिक किरदारों से संबंधित परिसर इस फतेहगढ़ क्षेत्र में ही और चारबाग परिसर में ही क्यों बनवाए गए। जैसा कि हम जानते हैं कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगल शासन भारतीय राजनीतिक व सांस्कृतिक पक्ष का केंद्र बिंदु रहा है। मुगलों के केंद्रीय शासन-प्रशासन व संस्कृति ने भारत के क्षेत्रीय हिंदू शासकों के प्रशासनिक, सांस्कृतिक पक्षों को भी काफी हद तक प्रभावित किया। जिसके अंतर्गत इन क्षेत्रीय हिंदू शासकों ने भी मुगलों के रहन-सहन व संस्कृति के विभिन्न पक्षों को आत्मसात किया। जिसके अंतर्गत एक पक्ष वास्तु-निर्माण कला भी आती है। अब हिंदू शासक मुगलों के शाही वैभव तौर-तरीको का समायोजन अपनी क्षेत्रीय जीवनशैली में करने लगे थे। इसी प्रकार भरतपुर नरेश महाराजा सूरजमल ने मुगल वास्तुकला से प्रभावित होकर के मुगल वास्तुकला शैली 'चारबाग' पद्धति का समायोजन अपनी नवीन राजधानी के निर्माण के अंतर्गत किया।

वैसे तो मुगल वास्तुकला के अंतर्गत 'चारबाग' पद्धति का उपयोग कला सौंदर्य से ज्यादा धार्मिक पक्ष से प्रेरित था। जिसके चलते उन्होंने अपने भवनों के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए इन उद्यानों का निर्माण कराया। उनके द्वारा बनवाए गए सभी मकबरों ,महलों में फारसी चारबाग पद्धति के चौकोर उद्यानों का सांकेतिक प्रदर्शन किया गया है। इस्लाम की पौराणिक कथाओं में हस्त-विहिस्त (आठ स्वर्ग) के रूप में स्वर्ग की कल्पना की गई है। ये उद्यान धरती पर इस कल्पित स्वर्ग के प्रतीक हैं। ऐसा संभवत उक्त स्थापत्य इमारत को दैवीय उर्जा देने का प्रयत्न होता था। इसी इस्लामिक धार्मिक वास्तु आदर्श के आधार पर मुगल काल में अधिकांश वैभव एवं लालित्य पूर्ण मकबरे महल बने जैसे शेरशाह सूरी का मकबरा, एत्माद्दौला का मकबरा, विश्व प्रसिद्ध ताजमहल जैसी सुंदर इमारत का निर्माण हुआ। इसी परिप्रेक्ष्य से प्रेरित होकर के संभवत भरतपुर नरेश महाराजा सूरजमल ने मुगल राजधानी अकबराबाद से भरतपुर आने-जाने वाले मुख्य रास्ते पर स्थित मथुरा दरवाजे के समीपस्थ 'चारबाग' का निर्माण करवाया।

भरतपुर दुर्ग व महलों के निर्माण में महाराजा सूरजमल द्वारा प्राचीन हिंदू राजपूती व मुगलिया तीनों ही संस्कृतियों की शैलियों को अपनाया गया था। उस समय शाही महलों के निर्माण में मुगलिया वैभव की शान और शौकत को अपनाया जाना अपने में एक वैभवशाली तौर-तरीके के प्रतीक के रूप में समझा जाता था। संभवत इस हेतु भरतपुर रियासत के इस फतेहगढ़ क्षेत्र में जो सूर-सामंतों के लिए आरक्षित क्षेत्र था[13] में मुगलिया पैटर्न से संबंधित वैभव से परिपूर्ण अपने लिए महाराजा सूरजमल द्वारा मुगलिया वैभव स्थापत्य से प्रेरित 'चारबाग परिसर' के सामने इमाद वाली एक पक्की रहीसी महलनुमा इमारत का निर्माण करवाया गया। जिसे बाद में इमाद व उसके परिवार को शरण प्रदान करने के रूप में महाराजा ने खाली कर दिया।[14] इस चारबाग परिसर में स्थित हवेली में इमाद तब तक रहा जब तक कि बाद में महाराजा जवाहरसिंह ने उसे जाने के लिए बाध्य न कर दिया।[15] इसी प्रकार मस्तानी बाई को भी नखास की पक्की सराय में ठहराने के पीछे भी यही कारण रहा हो सकता है कि उस समय यह सराय संपन्न प्रतिष्ठित आगंतुकों के लिए ही थी। ऊपर से उस समय यह स्थान चारबाग के बिल्कुल नजदीक ही था। वर्तमान में अब चारबाग का मात्र नाम तथा मस्तानी की सराय के साक्ष्य रूप में एक बृहद दरवाजा ही शेष रह गया हैं।

अब ना तो सुंदर चारबाग का प्राकृतिक सौंदर्य ही अब शेष रह पाया है और ना ही मुग़ल वजीर इमाद उल्ल मुल्क की ऐतिहासिक महलनुमा हवेली का रखरखाव ही किया जा पा रहा है और न ही 'मस्तानी बाई की सराय' ही अब शेष रही है। अब शेष रह गए हैं तो मात्र

जर्जर असहाय अपनी दुर्दशा पर रोते हुए ऐतिहासिक पुरासाक्ष्य जिन पर भावी समाज व सरकारे आँखें मूंदें पड़ी हुई हैं। जिन पर अभी ऐतिहासिक अनुसंधान होना बाकी है। वर्तमान में इन ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण संवर्धन की अत्यंत आवश्यकता है।

संदर्भ

1. गुप्त भगवान दास; मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज बांदा के नवाब, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2011, पृ.सं. 1-5। **2.** सरदेसाई जी. एस.; मराठों का नवीन इतिहास द्वितीय खंड, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, 1972, पृ.सं.107। **3.**मुस्लिम नाम देने का तात्पर्य शमशेर बहादुर की पेशवा गद्दी के भावी दावेदार की योग्यता को ही समाप्त कर देने से था। **4.** कानूनगो के. आर.; जाटों का इतिहास, ओरिजिनल प्रकाशन दिल्ली,2005, पृ.सं.83-84। **5.** शर्मा यू.एन.; बृजेंद्र बहादुर राजा सूरजमल जाट, मंगल प्रकाशन जयपुर, 1993 पृ.सं. 419। 6. वही। **7.**गंगी सिंह; जाट वंश भरतपुर का इतिहास भाग प्रथम, सिंध प्रकाशन भरतपुर, 1990, पृ.सं. 134। **8.** शर्मा वही, पृ.सं 419। **9.** वही। **10.** कानूनगो वही पृ.संख्या 68। **11.** शर्मा वही पृ.संख्या 370। **12.** वही पृ.संख्या 419। **13.** गंगी सिंह, वही पृ.संख्या 134। **14.** वही पृ.संख्या 244। **15.** फादर बैंडेल हिंदुस्तान में जाट सत्ता, संपादक : वीर सिंह , राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली, पृ. सं.179; गंगा सिंह वही पृ.सं. 325, गंगा सिंह वही पृ.सं.167।

❑❑

सहायक आचार्य इतिहास
राजकीय महाविद्यालय रूपवास,
भरतपुर, राजस्थान-321001
व्हाट्सएप-9414715190, मो. 6350334747
ईमेलः- GAURAVDEEP.BTP@GMAIL.COM

'वैचारिकी' पत्रिका के स्वामित्व आदि की घोषणा
(प्रपत्र 4 - नियम 8)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	भारतीय विद्या मंदिर 12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
2.	प्रकाशन की आवृत्ति	:	द्वैमासिक
3.	मुद्रक-प्रकाशक	:	नाम- शंकरलाल सोमानी, राष्ट्रीयता- भारतीय पता- सचिव, भारतीय विद्या मंदिर 12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
4.	संपादक	:	नाम- डॉ. बाबूलाल शर्मा, राष्ट्रीयता– भारतीय
5.	उन व्यक्तियों, संस्थाओं आदि के नाम जो पत्र के स्वामी और साझेदार हैं अथवा कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के अंशधारक हैं	:	भारतीय विद्या मंदिर, कोलकाता

मैं शंकरलाल सोमानी एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि ऊपर दिया गया विवरण मेरी जानकारी व विश्वास के अनुसार सही है।

ह. शंकरलाल सोमानी
सचिव- भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी,
कोलकाता-700087

31 मार्च 2024

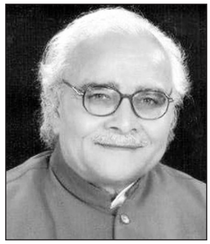

लोकमन और मिथक

डॉ. राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी

मनुष्य का जन्म जिस परिवेश में होता है, उस परिवेश का बिंब उसके मन पर अंकित हो जाता है। यह बिंब-प्रतिबिंब भाव धीरे-धीरे इतना गहरा हो जाता है कि वह परिवेश उसके मन में व्याप्त हो जाता है। हमने ब्रज में जन्म लिया है, हमारा मन ब्रज के परिवेश में व्याप्त है और ब्रज का परिवेश हमारे मन में व्याप्त है- *ऊधौ, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। हंससुता की सुंदर कगरी अरु तरुवन की छांहीं।* परिवेश बहुत व्यापक तत्व है। वह केवल प्राकृतिक या भौगोलिक ही नहीं होता, सामाजिक-परिवेश भी होता है, आर्थिक-परिवेश भी होता है, सांस्कृतिक-परिवेश और मनोवैज्ञानिक-परिवेश भी होता है, जिसके लक्षित-अलक्षित, असंख्य-सूत्र मनुष्य के मन को लपेट लेते हैं। भाषिक-परिवेश। बालक जन्म लेता है, परिवेश के शब्द को सुनता है। धीरे-धीरे शब्दमय परिवेश से उसका परिचय इतना गहरा हो जाता है कि वह भाषा उसकी चेतना में समा जाती है। उसी भाषा के माध्यम से वह सोचता है और उसी के माध्यम से वह सामाजिक-व्यवहार करता है।

जैसे भाषित परिवेश मनुष्य की चेतना में व्याप्त हो जाता है, वैसी ही बात हमें मिथक के संबंध में भी कह सकते हैं। भाषा और मिथक में बहुत-सी समानताएं हैं। भाषा का विकास भी जीवन के निरंतर-प्रवाह में हो रहा है और मिथक का विकास भी जीवन के प्रवाह में हो रहा है। भाषा भी समष्टि मानस की रचना है और मिथक भी समष्टि मानस की रचना है। फिर भी भाषा की तुलना में मिथक बहुत संश्लिष्ट और जटिल है। निश्चित ही मिथक में मनुष्य-जीवन की युग-युगीन स्मृतियां समाहित हैं किंतु मिथक, केवल धरती पर घटित घटना की ही याद नहीं है, धरती पर घटित घटना के प्रभाव और प्रतिक्रिया के परिणाम-स्वरूप जो कुछ व्यष्टि और समष्टि के मन में घटित हुआ, वह भी मिथक में समाहिम है। वे स्पप्न, वे कल्पनाएं, वे ऐषणायें, वे संकल्प, वे विश्वास, वे अनुभव जो ऐन्द्रिक हों या अतीन्द्रिय हों, मिथकों में समाहित हैं।

पुरातत्व-संग्रहालय की प्रतिमा को लक्षित करके हम तत्कालीन समाज का वर्णन कर सकते हैं। मूर्ति एक स्थिर रचना है, जबकि मिथक जीवन के साथ गतिशील है और प्रत्येक युग का रंग उस पर चढ़ जाता है। भिन्न-भिन्न देशकाल में उसके संदर्भ भी भिन्न हो जाते हैं। वैदिक साहित्य का इन्द्र वह नहीं है, जिसका सिंहासन हिल जाता है, जो विलासी है और अप्सराओं से घिरा है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, यम, वरुण और लक्ष्मी आदि कथाओं के पात्र ही नहीं हैं, वे सृष्टि और प्रलय तथा प्रकृति और जीवन की एक व्याख्या भी हैं। इन्द्र का स्वर्ग, यमराज की संयमनीपुरी और नरक तथा विष्णु का बैकुंठ कोई नगर, गांव या देश-मात्र नहीं है, उससे जीवन के कुछ गहरे सरोकार जुड़े हुए हैं। माना कि मिथक इतिहास की रचना है, उसमें इतिहास के सूत्र हैं फिर भी यह सच है कि मिथक इतिहास नहीं है। इतिहास देशकाल में आबद्ध

घटनाओं का अस्थिपंजर है जबकि मिथक भाषा की तरह जीवन में प्रवाहित हो रहा है, वह जीवन्त है। मिथक रूपक भी है और प्रतीक भी है किंतु वह कोरा रूपक या प्रतीक ही नहीं है। उसमें मनुष्य का विश्वबोध भी है। जैसे किसी भी देश का संविधान वहां के राजनैतिक जीवन की एक डिजायन या आकल्पना होता है, वैसे ही शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, परलोक-पुनर्जन्म, कर्म और कर्मफल की मिथकीय अवधारणायें हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं।

लोकमन बार-बार मिथकों को दोहराता है, भिन्न-भिन्न रूप में उनकी पुनःसर्जना करता है। किंवदंतियों, दंत-कथाओं, देव-कथाओं और गाथाओं में मिथकों को बुन देता है और मिथकों में कहानियों को बुन देता है। मिथकों के आधार पर व्यक्तियों का नामकरण करता है। किसी का नाम पृथ्वीधरण है और किसी का नाम नृसिंह प्रसाद है। पृथ्वीधरण के साथ केवल वराह की गाथा ही नहीं जुड़ी, पृथु की अवधारणा भी जुड़ी हुई है। प्रत्येक त्यौहार के साथ एक मिथक जुड़ा हुआ है। दीपावली के पर्व के साथ लक्ष्मी भी आ जाती है और शिवरात्रि आती है तो शिव-पार्वती के साथ भूतों की बरात भी आ जाती है। शरद पूर्णिमा आती है तो वृंदावन के रास को अपने साथ लेकर आती है और बड़मावस आती है तो सावित्री के सतीत्व के आगे मृत्यु के देवता की पराजय की कथा सुनी जाती है।

लोकमन ने अपनी विश्वदृष्टि को मिथकों के रूप में संजोया है। लोकमन देशकाल-परिस्थिति के अनुसार निरंतर इन्हें सजाता और संवारता है। इस प्रकार जीवन के प्रवाह में लोकमन को मिथकों ने बुना है तो मिथक भी लोकमन की संरचना है। पुराणों की गाथा और कथाएें हैं। कथावस्तु, संवाद, पात्र और चरित्र-चित्रण, उद्देश्य, वातावरण, भाषाशैली आदि कथा साहित्य के तत्व उनमें भी हैं, फिर भी वे उपन्यास और कहानी नहीं हैं। वाचिक परंपरा का प्रवाह और 'मिथकों' की व्याप्ति उन्हें कथासाहित्य से भिन्न कर देती है। उपन्यास और कहानी किताबों में लिखी हुई हैं किंतु यह यथार्थ है कि मिथक कथाएं वास्तविक-जीवन में व्याप्त हैं। लोकजीवन में व्याप्त इन कथाओं को संकलित करके पुराण-ग्रंथों का रूप प्रदान किया गया तो इसका मतलब यह नहीं है कि इनकी वाचिक-परंपरा समाप्त हो गयी। वाचिक परंपरा लोक-जीवन में आज भी विद्यमान है। मिथक-कथा जितनी बार कही-सुनी जाती है, उतनी ही बार उसका काया-कल्प होता है और पुराण युवा बना रहता है।

समय जब परिवर्तन की मांग करता है, तब इन प्राचीन मिथकों में ही नये अर्थों की सृष्टि हो जाती है। मिथक पुराने चोले को बदलकर नये गुणों को धारण कर लेते हैं। उनके चरित्र और प्रयोजन बदल जाते हैं जैसे मालवीयजी का कथा सत्याग्रह हो या गांधीजी का रामराज्य - परिनिष्ठित साहित्य भी मिथकों की व्याख्या और पुनर्व्याख्या करता है। प्रलय और मनु को लेकर जयशंकर प्रसाद ने कामायनी लिखी। रामधारी सिंह दिनकर ने उर्वशी लिखी। रांगेय राघव ने मिथक कथाओं को आधार बनाकर महायात्रागाथा की रचना की। इतने पर भी यह सच है कि व्यष्टि रचना और समष्टि रचना में अंतर होता है। लोकवार्ताशास्त्री जिसे 'फोकलोरिक प्रोसेस' कहते हैं, वह निरंतर प्रक्रिया है और उसमें कर्तृत्व चेतना नहीं होती। कामायनी जयशंकरप्रसाद ने लिखी किंतु प्रलय की अवधारणा का रचयिता कौन है? शिव के तांडव की अवधारणा किसने बनायी? ब्रह्मा ने सृष्टि को रचा, किंतु सृष्टि को रचने वाले ब्रह्मा की अवधारण किसने रची? यहां हमारा ध्यान लोकमन की ओर जाता है अर्थात अपौरुषेय।

लोकवार्ता और पुराणों के बीच गहन संबंध है। लोक-वार्ता और पुराण विद्या, लोकजीवन के अविच्छिन्न प्रवाह में गतिशील हैं। लोकवार्ता की, परंपरा भी वाचिक है तथा पुराणविद्या की परंपरा भी वाचिक है। पुराणों के रूप में जिन गाथाओं को संकलित-संपादित कर लिया गया और उन्हें लिखित पुस्तक का रूप दे दिया गया, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लोकजीवन में उनकी वाचिक परंपरा समाप्त हो गई। वे गाथा, आख्यान और कथायें कभी भी वाचिक-परंपरा में हैं और वे आज भी विकासशील हैं। संसार के अध्येता इनकी बहुपारीयता का संकलन कर रहे हैं। वास्तव में तो मिथकों का अध्ययन लोकजीवन के सांस्कृतिक-स्रोतों का ही

अध्ययन है। लोक-कथा और मिथक-कथा दोनों के कथातंतु, कथारूढ़ियां, परिवेश और पात्र एक जैसे ही हैं। दोनों की गति और दोनों का विस्तार तीनों लोकों में है। अतल, वितल, पाताल से लेकर नागलोक, स्वर्गलोक और ब्रह्मलोक तक इन गाथा और कथाओं का स्वदेश है। भीम नागलोक चला जाता है और अर्जुन स्वर्ग में जाकर इन्द्र के आधे आसन पर बैठ जाता है। दोनों में समुद्र की लहरें बोलती हैं, आंधी बोलती है, मेघ बोलते हैं। सिंह गाय से वार्तालाप कर लेता है तथा चींटी हाथी से संवाद कर लेती है। इसे लोकवार्ताशास्त्री सर्वसजीवत्ववाद कहते हैं और वे मानते हैं कि सर्वसजीवत्ववाद ही आत्मा के सिद्धांत का आदिम रूप है। दोनों की कथारूढ़ियां समान हैं। पसीने की बूंद या कान के मैल से जन्म हो जाता है, अग्निकुंड में भी जन्म हो जाता है और कुंभ से भी जन्म हो जाता है, यज्ञ का फल खाने से अथवा ऋषि के देखने मात्र से गर्भ ठहर जाता है। कुंड में स्नान करने से पुरुष स्त्री बन जाता है और वृद्ध युवा बन जाता है। मंत्र के अवाहन से देवता आ जाते हैं, आक्षय पात्र है जिसमें पकाया गया भोजन समाप्त नहीं होता। मरा हुआ जिंदा हो जाता है। शाप और वरदान हैं। परलोक, पुनर्जन्म, योनि परिवर्तन होता है। कल्पवृक्ष है जिसकी छाया में बैठकर जो भी कुछ इच्छा करो, वही पूरी हो जाती है। अगस्यमुनि आचमन करके समुद्र को पी जाता है। बैकुंठपुरी के घोड़े धरती पर नदी का पानी पीने आ आते हैं। सूरज, चंदा, धरती, गाय, शेर, नाग, हाथी, हवा, दिशा, अग्नि, नारद, इन्द्र, ब्रह्मा, यमराज, वरुण, कुबेर, लोकपाल, दिग्गज, पांचों पांडव, नारायण, श्रवणकुमार, बभ्रुवाहन, मोरध्वज, हरिश्चन्द, नल-दयमंती, राम, हनुमान, सावित्री सत्यवान आदि एक जैसे ही पात्र हैं। हालांकि लोकवार्ता में आल्हा, ढोला, मारू, भरथरी, जहरपीर, गोरखनाथ, जगदेव जैसे ऐतिहासिक पात्र भी हैं किंतु अति-मानवीयता दोनों जगह हैं।

लोकमन की सिद्ध प्रकृति है कि वह लोक से अलौकिक की ओर चलती है। उसकी गति सीमा से असीम की ओर है। वह धरती पर सोता है लेकिन आकाश को देखता है, उसका मन सितारों में भ्रमण करता है। यदि कोई इसे कल्पना समझता है तो वह गलत नहीं समझता, लेकिन इसके आगे की बात यह है कि कल्पना मनुष्य की अतुलनीय शक्ति है। कल्पना के सूत्रों से लोकमन ने मिथकों की रचना की है और उन मिथकों ने जीवन के यथार्थ की रचना की है। पुराणकथाओं का नारद जब एक लोक से दूसरे लोक में भ्रमण कर रहा था, तब इसे मिथक बतलाया जाता था किंतु आज उपग्रह मंगलयात्रा-चन्द्रयात्रा का आयोजन कर रहे हैं। कल की कल्पना आज का यथार्थ बन गयी।

बिगबैंग थ्यौरी के प्रतिपादक स्टीफन का इंटरव्यू प्रसारित हुआ। उसकी स्थापना है कि विश्व ब्रह्मांड में अन्यत्र भी मनुष्य जैसा कोई प्राणी है अवश्य, भले ही वह सभ्यता की अविकसित, अर्द्धविकसित अथवा अतिविकसित अवस्था में हो। जब उससे पूछा गया कि इस बात का कोई आधार या प्रमाण है? तो उसने कहा कि 'आधार या प्रमाण मैं नहीं बता सकता, किंतु यह मेरा विश्वास है।' कहने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य का मिथकीय मन न जाने कबसे इन ग्रहों की यात्रा कर रहा है। नारद हैं, वे पृथ्वी से इन्द्र के स्वर्ग में भी चले जाते हैं और ब्रह्मा के ब्रह्मलोक में भी चले जाते हैं, विष्णु के बैकुंठ में भी चले जाते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मिथक मनुष्य का स्वप्न है किंतु स्वप्नों को धरती पर उतारने की अदम्य क्षमता भी तो मनुष्य के पास है। मिथकीय-मानस वैज्ञानिक मानस के लिए संभावना का दरवाजा खोलता है। क्या मृत्यु को जीता जा सकता है? मिथकों में मृत्युंजय शब्द की उपस्थिति, अजर-अमर की अवधारणा या मृतसंजीवनी विद्या की परिकल्पना, भविष्य के वैज्ञानिक-मानस के लिए एक संभावना भी है और चुनौती भी है। लेकिन ऐसी ही चुनौती आज लोकवार्ताशास्त्रियों के सामने भी है कि वे मिथकों के अध्ययन-अनुसंधान की मैथोडोलॉजी या प्रणाली का विकास करें। एमीलियो वैली ने लिंक्डन पर उत्पत्ति विषयक मिथकों की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

भागवत-पुराण में प्रसंग है कि प्रलयकाल में भगवान नारायण शेषशैया पर योगनिद्रा में लीन थे, जब उनके मन में कर्म की प्रेरणा उत्पन्न हुई, तब उनकी

नाभि से कमल का उद्भव हुआ और उस कमलकोश से सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा ने अपने चारों ओर विराट को देखा तो रहस्य ही रहस्य था। उनके मन में रहस्य को समझते ही जिज्ञासा जगी और जीवन के उत्स को जानने के लिए ब्रह्मा कमलनाल के तंतु में होकर कमलमूल अर्थात विष्णुनाभि में उतर कर आये। जीवन और विराट के रहस्य के प्रति जो जिज्ञासा ब्रह्मा के मन में थी, वह जिज्ञासा मनुष्य की सनातन जिज्ञासा है। जीवन के स्रोत के अनुसंधान की दिशा में आज आधुनिक विज्ञान गोडपार्टीकल तक पहुंचा है, इसी दिशा में वैज्ञानिक स्टीफन ने बिगबैंग की अवधारणा प्रस्तुत की थी.।

थोड़े दिन पहले मायथॉलॉजी ग्रुप डिस्कशन में काल संबंधी मिथकों पर चर्चा चली। काल के संबंध में भारत के मिथकशास्त्र की भी अवधारणा हैं- युग, मन्वन्तर और कल्प, जैसे श्वेतवाराह कल्पे, वैवस्वत मन्वन्तर। इस विमर्श में भौतिकशास्त्री भी शामिल हो गये। उनका मत था कि काल की मिथकीय अवधारणा जैसा कोई भी तत्व नहीं है, हालांकि स्टीफन की बहुचर्चित पुस्तक है History of Time। भौतिक विज्ञान की तत्व परिभाषा के अंतर्गत भले ही मिथकीय काल तत्व न हो लेकिन जीवन-व्यवहार में इसकी सत्ता है।

ब्रज के कूप-वापी, कुंड-तालाब-सरोवर, वन-उपवन और गांवों की संज्ञाओं में शत-सहस्र मिथक कथाओं के सूत्र विद्यमान हैं। मदोवरी गांव का मिथक-सूत्र उस मत्स्य कन्या से जुड़ा हुआ है, जिस पर पराशर ऋषि का मन डोल गया था। परासौली गांव इन्हीं पराशर ऋषि की तपस्थली है। सतोहा में शांतनुकुंड है, वही शांतनु जिसके पुत्र देवव्रत ने मछेरे से प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजीवन कुंवारा रहूंगा। रुनकता का मिथकसूत्र परशुराम की मां रेणुका से जुड़ा है। मथुरा में यमुना के इस पार अंबरीष टीला है और यमुना के परलीपार दुर्वासा टीला है। दुर्वासा अंबरीष से अटक गये- तैने मेरा अपमान कर दिया? बिना मुझे भोजन कराये एकादशी-व्रत का पारण कर लिया? दुर्वासा क्रोध से जल उठे और अंबरीष को मारने के लिए उन्होंने कृत्या उत्पन्न कर दी। मन की इस अटक के कारण दुर्वासा ऋषि को कितना भटकना पड़ा, इसका गवाह वह चक्रतीर्थ है, जो अंबरीष टीले के ही पास है। ब्रज का लोकमन!! सूरदास कहते हैं– *मुनिमद मेटि दास-व्रत राख्यौ अंबरीष हितकारी।* इन्हीं दुर्वासा ऋषि से जुड़ी एक और मिथक-कथा है। वृन्दावन वंशीवट पर रास संपन्न हुआ तब श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा कि यमुना-पार दुर्वासा रहते हैं, उन्हें भिक्षा दे आओ। उस समय यमुना में बाढ़ आ रही थी। गोपियों ने कहा कि हम यमुना को कैसे पार करेंगी? कृष्ण ने उपाय बताया कि यमुना से जाकर प्रार्थना करना कि हे कालिन्दी, यदि कृष्ण विकार-रहित और बाल-ब्रह्मचारी हैं तो हमें मार्ग दे दीजिये। यमुना का जल उतर गया और गोपियां घुटनों-घुटनों पानी में होकर दुर्वासा के आश्रम में चली गयी उन्हें ठौर-मठरी की भिक्षा दी। वे जब वापस लौटने लगीं तब फिर से यमुना-पार का सवाल आया। दुर्वासा ने कहा, यमुना से प्रार्थना करना कि यदि दुर्वासा दूर्वा-रस व्रती है तो हमें मार्ग दे दें। यमुना ने मार्ग दे दिया परंतु गोपियां अचरज करने लगीं कि रास रचने वाला कृष्ण ब्रह्मचारी है और ठौर-मठरी को गटक जाने वाला दुर्वासा दूर्वारस-व्रती है? यह मन की अटक ही तो है परंतु रामकृष्ण परमहंस ने इस कहानी के माध्यम से अनासक्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। पद्मपत्रभिवांमसा, कमल का पत्ता जल में रहते हुए भी जल में डूबता नहीं है।

सन् 1966 में जर्मनी के पुरातत्वविदों की देख-रेख में सौंख के टीले की खुदाई हुई। वहां एक के नीचे एक सभ्यताओं की बत्तीस परतों का अन्वेषण हुआ। मिथक समष्टि-मानस भी स्मृतियों के टीले की तरह है, जिसमें युगयुगीन-स्मृतियों की विभिन्न परतें सो रही हैं। वृंदावन में एक घाट है जिसका मिथक सूत्र कालियनाग से जुड़ा है। ब्रज की मिथक कथा और गाथाओं में कालियनाग का मिथकसूत्र अकेला नहीं है। इन गाथाओं में तक्षक या तक्खे भी है, उसकी बहन नवलदे भी हैं और उसका पिता वासुकि भी है। सावन के महीने में ब्रज के गांवों में भईनी या भैदानी-नवलदे गायी जाती है। वासुकि-कन्या नवलदे और परीक्षित के बीच उस समय प्रेम का बीज उलहने लगता है, जब वह हस्तिनापुर

के अमृत कूप से जल भरने को आती है। प्यार का यह ज्वार विवाह में परिणत होता है किंतु नवलदे का भाई तक्षक इसे सहन नहीं कर पाता। वह बदला लेता है और परीक्षित का देहांत हो जाता है। जब जनमेजय नाग यज्ञ करता है तब तक्षक की पत्नी ब्राह्मणी का वेश धारण करके अपनी ननद नवलदे के पास जाकर पति के प्राणों की भीख मांगती है।

नाग पंचमी की व्रतकथा के साथ ही नागलोग, अमृतकुंड और नागों के वैभव-संबंधी विविध अभिप्राय ब्रज की लोक-कहानियों में हैं। मथुरा में नाग टीला है। कृष्ण कथा के साथ शेषनाग के अभिप्राय जुड़ता है। जब वसुदेव नवजात शिशु को सूप में रखकर नदी पार कर रहे हैं तब शेषनाग अपने फण का छत्र फैलाकर बालक की रक्षा करता है। बलराम तो शेषनाग के अवतार ही मान लिये गये। ब्रहमंडल के विभिन्न स्थलों से नाग मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। सौंख की खुदाई में प्राप्त वासुकिनाग की प्रतिमा भव्य है। ये सारे मिथकसूत्र ब्रजमंडल में नाग संस्कृति की व्याप्ति के प्रमाण हैं। वृंदावन के पास ही गरुड़ गोविन्द का मंदिर है। नागों और गरुड़ों के संघर्ष की गाथा पुराणों में प्रसिद्ध है किंतु विष्णु-गाथा में शेषनाग की शैया और वाहन गरुड़ की अंतर्भुक्ति भारत की उस सांस्कृतिक क्रांति का स्मरण कराती है, जब विराट विष्णु युग-सत्य के रूप में उभरते हैं और भारत की विभिन्न-संस्कृतियों को समाहित कर लेते हैं। कोटवन में शेषशायी मंदिर है। नागों की तरह ही ब्रजमंडल की लोक-कहानियों में यक्ष संस्कृति के सूत्र भी बिखरे हुए हैं। जाख-जखैया और भांडीर वन की कहानी, वृक्ष देवताओं के थान और पड़ोसी राज्य हरियाणा में यक्ष-सरोवर और यक्ष प्रश्न? आज हम दैत्य और दानव शब्दों को अवांछित या अनिष्ट भाव में ग्रहण करते हैं किंतु वह जमाना था, जब समाज की संरचना का आधार वंश को ही माना जाता था। मधुवन में रहने वाला मधु दैत्य ही तो था। मथुरा में राजा बलि का टीला है। बलि दैत्यवंशी है। पहले मैं भी समझता था कि होली का संबंध कृष्ण लीला से है किंतु सांसनी क्षेत्र के समामई गांव में मैंने एक गीत सुना– *राजा बलि के द्वार मची रे होली।* घरगुली की पूजा होती है यह होली की छोटी बहिन थी। ये दोनों दैत्य-कन्या ही तो हैं। इस प्रकार होली का संबंधसूत्र दैत्य संस्कृति में जुड़ता है।

मिथक का विकास जीवन की अविच्छिन्न परंपरा में होता है। जीवन की अविच्छिन्न-परंपरा ऐसी है, जैसे नदी का अविरल-प्रवाह। इतिहास के अध्येता कहते हैं कि सभ्याताओं का प्रथम उन्मेष नदियों के किनारों पर हुआ। अन्य नदियों की भांति यमुना के तट पर भी सभ्यता का उन्मेष हुआ था किंतु जैसे नदियां अपना मार्ग बदलती रहती है, वैसे ही सभ्यता और संस्कृतियां भी निरंतर बदलती रहती हैं। सभ्यता-संस्कृति बदलती हैं तो मिथक भी अपना रूप और संदर्भ बदल लेते हैं। एक व्यक्तित्व पर दूसरे व्यक्तित्व का अध्यारोपण हो जाता है। ऋग्वेद में यम-यमी जुड़वां भाई-बहिन हैं। उनका संवाद है। सूर्य उपासना का सूत्र जुड़ता है और यमुना-व यमराज सूर्य की पुत्री और पुत्र के रूप में उल्लिखित होते हैं। यमराज बड़ा महत्वपूर्ण मिथक है जो मनुष्य के पाप-पुण्य का विधान करता है। इस प्रकार यमुना में यमलोक और यमदूत के मिथक भी जुड़ जाते हैं। कलिंद की कन्या कालिन्दी यमुना में अंतयुक्त होती है किंतु जब कृष्णभक्ति का आन्दोलन उभरता है तब यमुना कृष्ण की प्रियतमा का रूप ग्रहण कर लेती है– नमः कृष्ण तुर्यप्रियाम्।

विश्व के लोकवार्ताशास्त्रियों का ध्यान आज मिथकों के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हो रहा है। इंटरनेट पर लिंक्ड इनको खोलकर आप मायथोलॉजी के ग्रुपडिस्कशन को देखिये, विकीपीडिया को देखिए कितने लोग हैं जो अरबी, आरमीनियम, कैल्टिक, क्रिश्चियन, इस्लामिक, रोमानियन, स्लैविक, पर्शियन, रोमन, ईजिप्ट, चीनी, ग्रीक, जापानी, जैविश, कोरिया और मेसोपोटामिया के मिथकों का अध्ययन कर रहे हैं। एमीलियो वैली तो यू.यन.ओ. में लगे हैं और विश्वव्यापी मिथक-चरित्रों पर उनकी दृष्टि है। लॉरी ऑको हैं, जिन्होंने मानवीकरण, प्रतीकवाद और आनुष्ठानिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। जे. हेण्डी और मेक्सवेस्ट ब्रुक की पुस्तक है- नोट्स आन की स्टडी ऑफ मिथ : टण्टीथ सेंचुरी क्रिटिसिज्म। सन् 2008 में इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में एक सेमिनार

हुई थी - अकीदत के रंग हिन्द तहजीब के संग। इसमें एक लोक-वार्ताशास्त्री जर्मनी से भी थे, वे जिहाद की मनोभूमि पर कई बरस से अनुसंधान कर रहे थे, कई बरस वे सऊदी अरब में भी अध्ययन कर चुके थे। जिहाद की मानसिकता मिथकीय मानस ही तो है। गीता में भी वीरगति एक महत्वपूर्ण मिथक है- *हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोग्यसे महीम्।*

मिथक समष्टि मन की सूक्ष्म चेतना है। वह स्थूल शरीर का अंग होता तो कोई भी डॉक्टर अवांछित मिथक का आपरेशन करके उसे शरीर से अलग कर देता, परंतु सूक्ष्म चेतना का कोई क्या करे? लाखों-लाखों लोग यमयातना से उद्धार पाने के लिए यमद्वितीया पर यमुना में स्नान करने के लिए आ रहे हैं तो यह उस मिथकीय मानस की ही तो सक्रियता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मिथक में आदिम मानस का तत्त्व होता है, वह जड़वाद, कट्टरता या अंधविश्वास का भी कारक तत्त्व बन जाता है। इन्दिरा गांधी पर गोली चलाने वाले व्यक्ति ने अमृत छका था। यह मिथकीय मानस ही तो है किंतु मिथक ऊर्जा है। आपके पास माचिस है, इससे आप देवता का दीपक भी जला सकते हैं, रसोई के लिए भी अग्नि प्रज्वलित कर सकते हैं और आप झुग्गी-झोपड़ी में आग भी लगा सकते हैं। इसीलिए मिथक की व्याख्या-पुनर्व्याख्या करते रहना नितांत आवश्यक है।

आधुनिकता का तर्क देकर आप मिथकशास्त्र की अवहेलना कर रहे हैं लेकिन क्या अवहेलना कर देने मात्र से विश्वास के सूत्र और युग-युगीन स्मृतियां मिटाई जा सकती हैं? फिर आधुनिकता कोई सांचा तो है नहीं, जिसमें आप समष्टि मानस को जड़ दें। आधुनिक मन भी तो प्रवाहशील है। साहित्य में हम भारतेन्दु युग को आधुनिकता का प्रवर्तक बतलाते हैं, किंतु क्या आज भी उसे हम आधुनिक कहेंगे? आधुनिकता उत्तरोत्तर जीवन का प्रवाह है। जीवन के प्रवाह के साथ मिथक भी बह रहे हैं, हमें उनकी पुनर्व्याख्या करनी ही होगी। कालिदास ने उस जमाने में ही कहा था -पराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

❑❑

1828, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 13-17, पानीपत, हरियाणा-132103
मो. 9996007186

आप दिव्य हैं

जीवन और जीने की कला के बारे में वेदांत एक सुव्यवस्थित और सूत्रबद्ध ज्ञान है। यह आपके वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है। आपके सही स्वभाव और संसार के साथ सम्बन्ध को समझाता है। आपको लोग चाहे जो समझें, पापी या धर्मात्मा, किन्तु वास्तव में आप दिव्य हैं। आपके व्यक्तित्व का सार दिव्यत्व है। वेदांत आपके इस दिव्य स्वरूप को प्रकट करने में सहायक है और आपके आंतरिक स्वरूप की जानकारी देने में भी। इस ज्ञान से आप अपना जीवन संपूर्ण समन्वय, शांति और आनंद से बितायेंगे।

लोक साहित्य और मिथक

(ब्रज प्रदेशीय 'ढोला' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर'

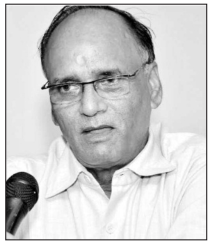

लोक अर्थात जनसामान्य सहज, निश्छल, निष्कलुष, आवरणहीन, भावप्रधान, ग्रहणशील और मूल्यपरक होता है। लोक साहित्य स्वतः स्फूर्त, सहज, आनुभूतिक, अधिकाधिक ऐन्द्रिक और सतत प्रवाही होता है। लोक साहित्य गतिशील और प्रशंसा परांमुख होता है।[1] वस्तुतः लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य, संस्कार, शास्त्रीयता, पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोकतत्व कहलाते हैं। इस लोक के द्वारा जिस साहित्य का सृजन होता है वह लोक साहित्य है।[2] सहज मानवीय संवेदनों को वाणी देने वाला साहित्य ही लोक साहित्य है। लोक कथा, लोकगीत, लोकनाट्य, कहावतें, पहेलियां आदि सब कुछ लोक साहित्य में समाहित हो जाता है। लोक न इतिहास के रुक्ष-सत्यों की चिंता करता है, न शास्त्र के ज्ञान की। लोक साहित्य में 'आंखिन देखी' कही जाती है 'पोथी लेखी' नहीं।

ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय ने लोक साहित्य को 'लोक सरस्वती' नाम दिया है। 'इस लोक सरस्वती के अंतर्गत वह सब कुछ आ जाता है जो शास्त्रीय अथवा किताबी नहीं, जो स्वतः स्फूर्त सर्जनावृत्ति का गद्य या पद्य है और जो श्रवण-परंपरा पर आधारित है मुद्रण यंत्र पर नहीं। इसके अंतर्गत यह सब कुछ आ जाता है, लोरी शिशुवेद (नर्सरी राइम) के बोल, गुल्ली डंडा, गद्दि वाना, कबड्डी आदि खेलों के बोल, कुंवारी लड़कियों की पद्यमय बोली-ठोली, छड़ा, तुकबंदी, कहावतें, बुझौवल, कटौवल, किरिया (शपथ), मुहावरे, गाली-गलौज की कुछ विदग्ध भाषितायें, गंजेड़ियों के बोल, जोगीड़ा (काशी), भड़ौआ या भडंग (बैसबाड़ा), भंड़ैती, लबाड़, कब्बाली, आल्हा, लोरकी-सलहेस, बिहुला, आदि लोक गाथायें होली, फागु, घॉटो-चैता-कजली-मलार आदि मौसमी गीत, निषिद्ध भरताल-गान, गुलगपाड़ा, ढकोसला (उदाहरणार्थ खुसरो), मुकरियां (खुसरो), जोगिया, सूफियों और फकीरों के बोल, जादू-टोने के मंत्र, देवी का पचरा, भूत-प्रेतों का पचरा, सोखाड़ की पद्यबद्ध हकड़, मातागीत, हर-परवरी गीत, संझा प्रातकाली गीत, हरदी-कंकण, अष्ट-मंगला-विवाह एवं वरुआ (यज्ञोपवीत) के गीत, पिंडिया-जीवित पुत्रिका-सूर्य-व्रत आदि की पद्यबद्ध जबानी व्रत कथायें आदि-आदि। बहुत सारी बातें जो श्रुति अर्थात श्रवण-परंपरा के आधार पर पुश्त दर पुश्त होती चली आ रही हैं अथवा जो आज मौलिक रूप से स्वयं स्फूर्त-सृजन के रूप में उद्‌बुद्ध होती हैं वे सब बातें इसी लोक सरस्वती की निधियां हैं... कहने का तात्पर्य यह कि लोक सरस्वती की परंपरागत श्रुतियों में बहुत कुछ ऐसा है जो हमारे जातीय इतिहास और नृतात्विक विकास पर पर्याप्त प्रकाश डाल सकता है। यह अक्षर पाठ आश्रित नहीं, कर्ण या श्रुति-

आश्रित विद्या है।'[3] लोक साहित्य की यह पुण्य सलिला सरस्वती शिष्ट साहित्य को प्राण रस देती है बल्कि शिष्ट साहित्य अपनी सर्जना के उत्स इसी लोक साहित्य में खोजता रहा है, फलसवरूप 'लोकगाथायें साहित्यक रूप में ढलकर प्रबंध-काव्य बनीं और लोकगीतों का साहित्यिक रूप गीतिकाव्य और प्रगीत मुक्तक में प्रकट हुआ।[4]

लोक साहित्य की तरह मिथक का संबंध भी लोक से ही है। वस्तुतः मिथक लोक और अभिजात्य के बीच की कड़ी है क्योंकि लोक की अतिरंजनापूर्ण इच्छाओं, मूल्यपरक शुभेच्छाओं, असत् पर सत की विजय की कामनाओं और उदात्त अभिलाषाओं का कथात्मक अवतरण मिथक के रूप में होता है। मिथक मानव की मूल्य-निष्ठा, परंपरा-प्रेम सौंदर्य बोध कलात्मक अभिरुचि और शिल्प कौशल को अभिव्यक्त करते हैं। ये न केवल परंपरा की गहरी समझ हैं अपितु उसकी पुनर्व्याख्या और पुनर्रचना भी हैं। ये जातीय अतीत का सबसे बड़ा खजाना होते हैं।[5] अंग्रेजी के मिथ शब्द को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मिथक के रूप में प्रचलित किया। मिथ के अर्थ हैं- पुराणकथा, पौराणिक उपाख्यान, दंतकथा गप्पे।[6] इस अंग्रेजी शब्द मिथ का मूल स्त्रोत ग्रीक भाषा का मुयोस और लैटिन का मुथास है जिसका अर्थ होता है शब्द, कहानी या कथा। साहित्यिक आलोचना के अंतर्गत इसे कथानक के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। पाश्चात्य विचारकों ने इसका प्रयोग दर्शन के क्षेत्र में भी किया है। इसका विलोम और पूरक शब्द है लोगस (तर्क) अर्थात तार्किक संलाप या विवृत्ति, इसके विपरीत मिथ आख्यानात्मक होता है, कथा होता है। व्यवस्थित दार्शनिकता के विपरीत यह भावुकता पूर्ण और अन्तःप्रज्ञा से भी सम्बद्ध होता है-सुकरात की तर्कशीलता के विपरीत, यह 'एस्कलीज' की त्रासदी होता है... जिन शब्दों को इसका विपरीतार्थक माना जाता है, ये हैं इतिहास, विज्ञान, दर्शन, ऐलीगरी या सत्य।[7]

लोक साहित्य भी भाव प्रधान और कई बार आख्यानात्मक होता है। लोकगीतों, मुहावरों-लोकोक्तियों आदि को छोड़ दें तो लोक कथायें आदि भी आख्यानात्मक होती हैं। लोकगीतों में भी कथा का झीना सूत्र रहता ही है। इसलिए मिथक के प्रयोग की संभावना लोक साहित्य में पर्यापत मात्रा में रहती है। लोक साहित्यकार मिथकों की संरचना भी करते हैं और पुनर्रचना भी। कभी-कभी सृजन और पुनर्सृजन की यह प्रक्रिया लोक साहित्य को नितान्त नये आयाम दे देती है। इस तथ्य का सर्वोत्तम उदाहरण ब्रज-प्रदेशीय ढोला है। 'ढोला मारु रा दूहा' राजस्थानी शृंगार-साहित्य का शृंगार है। राजस्थानी के इस गौरव ग्रंथ का, शृंगार की ललित रचनाओं में बड़ा ही आदरणीय स्थान रहा है। इस कालजयी रचना में लोक-हृदय को युगों से आकर्षित करने की अद्‌भुत शक्ति रही है और आज के इस बौद्धिक युग में भी इसकी मनोहारिता किंचित मात्र कम नहीं कही जा सकती। ...वह आज भी अपनी मर्मस्पर्शिता के कारण हृदय को रसामृत से परिप्लुत करने में सक्षम है।'[8]

राजस्थान में ढोला-मारु की कथा विशुद्ध प्रेम कथा है जिसमें शृंगार के दोनों पक्षों, संयोग एवं वियोग के अत्यंत मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्र मिलते हैं। यही कथा एक विचित्र संयोग के साथ राजस्थान से ब्रज प्रदेश में आयी। ब्रज प्रदेश के ढोला गायकों ने अपनी अद्‌भुत कल्पना शक्ति उर्वराकारयित्री प्रतिभा से इसमें कई मिथकों का सृजन और पुनर्सृजन करके इसे लोक-महाकाव्य में परिवर्तित कर दिया। ब्रज-प्रदेशीय ढोला गायकों ने इस प्रेम कथा में निम्नलिखित बड़े परिवर्तन किये– 1. रास्थानी 'ढोला' प्रेम काव्य है। ब्रज प्रदेशीय ढोला गायकों ने इसे वीर काव्य में परिवर्तित कर दिया। शृंगार भी है परंतु वह वीर का अनुवर्ती भर है। 2. राजस्थानी ढोला में नायक नरवर के राजा नल का पुत्र साल्ह कुमार या ढोला है परंतु ब्रज प्रदेशीय ढोला में नल स्वयं नायक है जिसकी माता मंझा को उसकी गर्भावस्था में पिता वनवास दे देता है। वहां वन में नल का जन्म होता है जो देवताओं के तेज के अंश से अवतरित है। 3. राजस्थानी ढोला में नल एक सच्चरित्र राजा और ढोला का पिता है। वह अकाल पड़ने पर अपने राज्य में आश्रय लेने वाले

पूगल के राजा को आश्रय ही नहीं देता उसे सम्मान भी देता है परंतु ब्रज प्रदेशीय ढोला में नल का जन्म ही तमाम दैत्यों के वध के लिए होता है और वह अपने पराक्रम से भूमासुर, तुर्रम, ताड़िम आदि दैत्यों को समाप्त करता है। 4. ब्रज-प्रदेशीय ढोला का नल देवी-भक्त है। उसे दुर्गा का इष्ट है और विपत्ति के समय देवी दुर्गा उसकी सहायता को सशरीर उपस्थित हो जाती है। उसका घोड़ा जलदरयाई है जो उड़ भी सकता है। उसके दो परम मित्र हैं 1. गूजर राजा मानसिंह या मनसुख मैना और 2.नागराज वासुकि जो नल के आवाहन पर अपने 12 हजार सर्पों के साथ उसकी सहायता को उपस्थित हो जाता है।

ढोला की कथा के बीजांकुर वाल्मीकीय रामायण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, लिंग पुराण, क्षेमेन्द्रकृत वृहत्कथा मंजरी, कथा सरित्सागर आदि ग्रंथों में उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ बृहत्कथा मंजरी में नल-दमयंती की कथा केवल 14 श्लोकों में कही गयी है और वाल्कीकीय रामायण में केवल नल और दमयन्ती का नाम मात्र आया है। दमयन्ती को श्रेष्ठतम पतिव्रता बताया गया है। लंका में अशोक वन में जब रावण के निर्देश पर राक्षसियां सीता को रावण को अपनाने के लिए समझाती हैं तो सीता उनसे कहती है– मेरे पति दीन हों, अथवा राज्यहीन-वे ही मेरे स्वामी हैं, वे ही मेरे गुरु हैं, मैं सदा उन्हीं में अनुरक्त हूं और रहूंगी। जैसे सुवर्चला सूर्य में अनुरक्त रहती हैं। जैसे महाभागा शची इन्द्र में हैं, जैसे देवी अरुन्धती महर्षि वसिष्ठ में, रोहिणी चन्द्रमा में, लोपामुद्रा अगस्त्य में, सुकन्या च्यवन में, सावित्री सत्यवान में, श्रीमती कपिल में, मदयन्ती सौदास में, केशिनी सगर में तथा भीमकुमारी दमयन्ती अपने पति निषध नरेश नल में अनुराग रखती हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने पति इक्ष्वाकु वंश-शिरोमणि भगवान श्रीराम में अनुरक्त हूं।[9]

स्पष्ट है कि रामायण काल में भी निषध नरेश नल और दमयन्ती की कथा मिथक ही थी। इस मिथक का परिपूर्ण विकास महाभारत में दिखाई पड़ता है। जुए में अपना राज्य हारकर जब पाण्डव वनवास भोग रहे होते हैं तब एक दिन वहां उनसे मिलने महर्षि वृहदश्व आते हैं। युधिष्ठिर उनसे दुखी होकर अपनी व्यथा कहते हुए अपने को संसार का सबसे बड़ा दुर्भाग्यशाली राजा बताते हैं तब वृहदाश्व उन्हें नलोपाख्यान सुनाते हैं। उनके अनुसार नल निषध-नरेश वीर सेन का पुत्र तथा प्रतापी एवं गुणवान राजा था। उसी समय विदर्भ-देश में राजा भीमक राज्य करते थे, जिनके तीन पुत्र दम, दांत और दमन तथा एक अपूर्व सुन्दरी कन्या दमयन्ती थी। एक दूसरे के गुणगान सुनते-सुनते नल और दमयन्ती में परस्पर प्रेम अंकुरित हो गया। एक दिन नल ने उद्यान में कुछ हंसों को देखा, उन्होंने एक हंस को पकड़ लिया। उसने राजा से प्रार्थना की कि यदि राजा उसे छोड़ दे तो वह दमयनती से राजा के रूपगुण की प्रशंसा करेगा ताकि वह उसका वरण कर ले, राजा ने उसे छोड़ दिया। हंस विदर्भ जाकर दमयनती से नल की प्रशंसा करता है। फिर दमयन्ती का स्वयंवर हुआ जिसमें इन्द्र, वरुण, यम और अग्नि ये चार देवता भी सम्मिलित हुए। देवताओं ने स्वयंवर में जाते हुए नल को अपना दूत बनने को राजी कर लिया। नल ने ईमानदारी से दूतकर्म करते हुए दमयन्ती से देवताओं का वरण करने को कहा परंतु दमयन्ती ने उसी का वरण करने का अपना निश्चय उसे सुना दिया। बाद में देवताओं की कृपा से ही दमयन्ती ने नल का वरण किया और दोनों पति-पत्नी बने। कलियुग के प्रभाव से नल ने जुआ खेला। फिर दोनों पति-पत्नी वनवासी हुए और अनेक आपत्तियों को भोगते हुए दोनों का पर्नमिलन हुआ।[10]

महाभारत के इस मिथकीय आख्यान को ब्रजप्रदेशीय ढोला गायकों ने कुछ परिवर्तन के साथ अपना लिया है। यहां निषध के स्थान पर नल नखर का राजा और दमयन्ती विदर्भ के स्थान पर समुद्र-शिखर की राजकुमारी है। इस मिथक में उन्होंने इतना अधिका जोड़ा है कि वह मिथक के पुनर्सृजन की प्रक्रिया बन गया है।। सबसे पहले तो नल का वंश-वृक्ष उन्होंने तैयार किया है, तदनुसार–

'मेरी कहत पुरानी सही
तीस साखि हरिचन्द के लगभग राजा भयो जैसिंघ मही
छिति पै कियो बानें राज घनेरो।

अजुध्या दीनी छांड़ि वसायो एक नरवर खेरो
जैसिंघ के अज, अज के तुज,
तुज के बुध, बुध के दुज सरदार
सब जानत हैं जग दुनियां में
दुज के जनमों प्रथम राजकुमार।"[11]

अर्थात मेरी पुराण सही-सही वर्णन कर रही है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र से तीस पीढ़ी पूर्व पृथ्वी पर जयसिंह नामक राजा हुआ। जयसिंह ने पृथ्वी पर काफी समय राज्य किया उसने अयोध्या को छोड़ दिया और नरवर को वसाकर उसे राजधानी बनाया। जयसिंह का पुत्र अज, अज का पुत्र तुज, तुज का पुत्र बुध और बुध का पुत्र दुजसिंह हुआ। इन्हीं दुजसिंह का पुत्र प्रथम हुआ जो प्रतापी नल का पिता था। इस वंशवृक्ष और इसके कालखण्ड का समर्थन न तो पुराणों से होता है और न इतिहास ग्रंथों से। यह ब्रजप्रदेशीय ढोला गायकों की अपनी कल्पना है।

महाभारत का नल अश्वविद्या में प्रवीण था और इसके बल पर वह दुर्बल से दुर्बल घोड़ों को भी रथ में जोतकर उन्हें वायुयान की गति से उड़ा सकता था ढोला गायकों का नल इस विद्या (जिसे उन्होंने बीज मंत्र कहा है) में तो पारंगत है ही, इसके अतिरिक्त वह द्यूत क्रीड़ा के पासों को अपनी इच्छानुसार चलाने की कला में भी प्रवीण है, वह दीपक राग जानता है जिसके गाने पर संपूर्ण नगर के दीपक जल जाते हैं। वहीं उसे वासुकि नाग से दो पुष्प भी प्राप्त होते हैं जिनमें से एक को सूंघकर व्यक्ति वृद्ध बन जाता है और दूसरे को सूंघकर पुनः युवा हो जाता है। उसके पास अभेद्य कवच भी है और वासुकि नाग उसे अमृत भी पिलाता है जिससे वह अक्षय तन-वाला बन जाता है। उसके शरीर पर न तीर का घाव लगता है और न तलवार का। वह एक विशेष मंत्र जानता है जिसका जाप कर लेने पर वह अभेद्य वृत्त से आवृत्त हो जाता है और उस वृत्त में शत्रु के अस्त्र उस तक नहीं पहुंच सकते, हां वह शत्रुओं पर प्रहार कर सकता है। देवी दुर्गा और उनका अनुवर्ती लोकदेव लांगुर हर क्षण, हर आपत्ति में उसकी सहायता को तत्पर रहते हैं। वह सशरीर स्र्वगारोहण भी कर सकता है। महाभारत में वह कलियुग के प्रभाव से जुआ खेलकर विपत्ति में फंसता है परंतु 'ढोला' में वह शनि के प्रभाव से विपत्तिग्रस्त होता है। महाभारत में वह एक पत्नीव्रत है परंतु ढोला में पहले उसका विवाह घूमासुर दानव की कन्या मोतिनी से होता है जो देवकन्या थी परंतु दैत्यों का विनाश करवाने के लिए दानवपुत्री के रूप में अवतरित हुई थी। परिस्थितिवश नल जब छिपकर दमयन्ती से विवाह का निर्णय लेता है तो मोतिनी स्वेच्छया मृत्यु का वरण कर लेती है।

ब्रज-प्रदेशीय ढोला में लगभग 40 उपकथायें अनुस्यूत हैं जिन्हें 'मैदान' कहा जाता है। हर मैदान में अतिरंजना, अलौकिकता, जादू-टोना और असंभव घटनाओं की भरमार है जो उसके मिथकीय चरित्र का प्रमाण हैं। यहां देवता अपने अंश से ही नल का निर्माण करते हैं, वे ही वन में उसकी माता के प्रसव के समय उपस्थित होकर प्रसव में सहायता करते हैं। यहां कंपिलागढ़ का राजा फूलसिंह पंजाबी है जिसने जादू के प्रभाव से अपने राज्य की सीमाओं को अमेद्य बना लिया था। कोई भी अस्त्र-शस्त्रधारी उसके राज्य में प्रविष्ट नहीं हो सकता था। चन्दनवन के मानव-भक्षी दैत्य हैं जिन्हें परास्त कर नल पिता की चिता के लिए चंदन लाता है। हंस, घोड़ा, ऊंट, तोता आदि मानवेतर जीव हैं जो मानवीय भाषा बोलते हैं और मानवीय भावनाओं से संपन्न हैं। विशालकाय चिंगुलपक्षी है जो मनुष्यों को पंजे में उठाकर आकाश में उड़ सकता है और पंचफूला राजकुमारी है सिजका भार मात्र पांचफूलों के भार के बराबर है।

वस्तुतः ब्रजप्रदेशीय ढोला एक लोक-महाकाव्य है जिसका मूलाधार महाभारत के नलोपाख्यान तथा राजस्थानी गाथा ढोला-मारु से निर्मित होता है परंतु इसमें ब्रजप्रदेशीय ढोला गायकों ने तमाम ग्रंथों में प्राप्त मिथकों का समावेश किया है। इसमें उनकी मिथकीय सृजन और पुनर्सृजन की प्रक्रिया चलती रही है जिसके बल पर उन्होंने ढोला को विशाल लोक-महाकाव्य में बदल दिया है। लोक साहित्य में सर्जक मिथकों का प्रयोग अपने ढंग से करता है। वह मिथक में लोक तत्वों का समावेश करता चलता है जिससे मिथक

नितांत अभिनव स्वरूप ग्रहण कर लेता है, वह न मिथक की प्राचीन परंपरा को यथावत रहने देता है और न ऐतिहासिक सत्य की चिंता करता है। अस्तु, लोक साहित्य और मिथकों का संबंध अटूट है। लोक साहित्यकार केवल मिथकीय कथाओं का ही नहीं, मिथकीय चरित्रों का भी अपने ढंग से प्रयोग करता है और उनके द्वारा अपनी रचना को लोकप्रिय, ग्राह्य, आकर्षक और संवेदनात्मक बनाता है।

अंत में नल-संबंधी एक विचित्र कथा का वर्णन करके हम समाप्ति की ओर बढ़ते हैं। जुए में अपने परिवारी भाई सुल्तानसिंह (महाभारत में मंत्री पुष्कर) के हाथों राज्य हारकर जब नल नरवर से सपत्नीक निर्वासित होता है तो उसके किले के तीन कंगूरे झुककर उसे प्रणाम करते हैं। तथ्य है कि नरवर के किले के ये तीन कंगूरे आज भी झुके हुए हैं। इसका उल्लेख 'मृगनयनी' उपन्यास में वृन्दावनलाल वर्मा ने भी किया है। नल का वंशज राजसिंह कछवाहा अपनी प्रेयसी कला को गढ़ दिखाते हुए कहता है 'देखो इस फाटक के पास के कंगूरे, नीचे झुके हुए हैं। जब राजा नल ने इस स्थान को छोड़ा तब शोक के मारे ये कंगूरे झुक गये थे।'[12] ढोला गायक इस तथ्य को यथावत स्वीकार करते हैं। सुल्तान का बेटा किशनलाल नल का भक्त है, वह ढोला अर्थात नल के ब्याह का समाचार सुनकर पिंगुल जाने की तैयारी करता हे। पिता उसे रोकता है तब किशनलाल अपने पिता की भर्त्सना करता है-

'वा नल ने देवनि के मारि दये मान
पत्थर सरीखे नभिगये राजा नल कूं भैया तू न नभौ रे सुल्तान।'[13]

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश भाग-1, संपादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि, पृ. 591 ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी, तृतीय संस्करण-1985। **2.** वही पृ. 591। **3.** निषाद-बांसुरी-कुबेरनाथ राम-पृ. 4-5, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन द्वितीय संस्करण-1982। **4.** आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास-डा. आशाकिशोर पृ.4 विश्वविद्यालय प्रकाशन विशालाक्षी चौक, वाराणसी-1971। **5.** संस्कृति और साहित्य : संबंधों के अंतः सूत्र- डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर', पृ.91, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली- 2009। **6.** बृहत अंग्रेजी हिंदी कोश भाग-2, संपादक डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.-1193, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी- तृतीय संस्करण-1969। **7.** साहित्य-सिद्धांत-रेने वेलेकः आस्टिन वारेन की पुस्तक-थ्योरी ऑफ लिटरेचर का हिंदी अनुवाद-अनुवादक-वी.एस. पालीवाल, पृ.-248, लोकभारती प्रकाशन-19ए, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद-1। 8. ढोला मारू रा दूहा में काव्य सौष्ठव, संस्कृति एवं इतिहास - डॉ. भगवती लाल शर्मा, पृ.1, अर्चना प्रकाशन अजमेर, प्रथम संस्करण-1970। **9.** वाल्मीकीय रामायण (सुन्दरकाण्ड) सर्ग-24 श्लोक-9 12.50। **10.**संक्षिप्त महाभारत, प्रथम संस्करण, सम्पादक एवं संशोधक-जयदयाल गोयनका (वन पर्व) पृ. 209-227 गीताप्रेस गोरखपुर-तीसरा संस्करण संवत्-2035। 11. पं. गयाप्रसाद शर्मा स्मृतिग्रंथ (नलपुराण) संपादक- डॉ. रामसेनेहीलाल शर्मा एवं डॉ. श्यामसनेहीलाल शर्मा- पृ.147, पं. गयाप्रसाद शर्मा स्मृतिगंथ प्रकाशन समिति, फिरोजाबाद-2004।**12**. मृगनयनी-वृन्दावनलाल वर्मा-पृ.475-मयूर प्रकाशन, झांसी। **13.** पं. गयाप्रसाद शर्मा स्मृतिगंथ (ढोला का ब्याह) पृ.275-276।

❐❐

86, तिलक नगर,
बाईपास रोड,
फिरोजाबाद (यूपी) 283203
मो. 9917796897

नौटंकी : एक लोक नाट्य विधा

डॉ. वन्दना चौबे

उत्तर प्रदेश का लोक नृत्य अपनी सांस्कृतिक लोक कलाओं में समृद्ध रहा है। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण आदि चरित्रों पर आधारित नृत्य तथा नाट्य हमारी संस्कृति की झलक प्रस्तुत करते हैं। उत्तर पदेश के प्रसिद्ध लोक नृत्य तथा नाट्य हैं-रामलीला, रासलीला, ख्याल, नोटंकी, स्वांग और चरकुला नृत्य। प्रस्तुत शोध पत्र में हम उत्तर प्रदेश के लोक नाट्य विधा की एक नौटंकी पर प्रकाश डालेंगे। नौटंकी जो कि एक लोक नाट्य विधा है अतः सर्वप्रथम लोक और नाट्य के संबंध में चर्चा करना तर्क संगत होगा -

लोक– लोक शब्द का अर्थ दो आधारों पर मिलता है।[1] (क) सामान्य रूप से - स्वर्ग लोक, भूलोक तथा पाताल लोक आदि। (ख) विशेष रूप से- जन सामान्य अथवा साधारण लोग। ऋग्वेद में लोक (समाज) की एक विराट कामना की गई है।[2] लोक शब्द का संस्कृत मूलक अर्थ 'देखने वाला' है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महाभारत में लोक शब्द का प्रयोग साधारण जनता के अर्थ में हुआ है।[3] आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, नाटक, संगीत और साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जनमानस जिसमें पूर्व संचित परंपरायें, भावनायें, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें साहित्यगत सामग्री नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है। यहां लोक के अर्थ में परंपरागत प्राचीनता तथा साधारण जनमानस का अर्थ व्यक्त होता है।

नाट्य– नाट्य संस्कृत पुरुषवाचक शब्द है। यह शब्द नट् नर्तने धातु से 'ष्यय' प्रत्यय करने पर बनता है, जिसका अर्थ है-नर्तन, अभिनय कला, अभिनेता की वेश-भूषा, भौड़, स्वांग तथा अनुकरणात्मक अभिनय। भरतमुनि ने नाट्य को इस प्रकार परिभाषित किया है- 'लोक सिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्य लोकात्मक त्विदम्'।[4] अर्थात् लोक की प्रवृत्तियां जिसमें ओतप्रोत है, अथवा लोकात्मक जो अभिनेये वस्तु है, वह नाट्य है।

लोकनाट्य– लोक नाट्य शब्द का स्पष्ट अर्थ एवं तात्पर्य उस विधा से है जो विधा लोक रंगमंच पर कथोपकथन, अभिनय, नृत्य एवं संगीत के साथ प्रस्तुत की जाती है। इसलिए यहां यह कहना उचित लगता है कि सभ्यता की चकाचौंध, बाह्याडम्बर एवं औपचारिकता से रहित, जन-साधारण की वह कृति जो कथोपककथन, नृत्य, संगीत, अभिनय आदि के माध्यम से उपस्थित की जाती है, वह लोक नाट्य है। नाट्य का प्रभाव बनाये रखने के लिए कभी नृत्य, संगीत का सहारा लिया जाता है तो कभी अभिनय, वार्ता का नाट्य तत्व के इन विभिन्न रूपों के आधार पर डॉ. सत्येन्द्र[5] ने नाट्य को चार रूपों में विभक्त किया है। 1. नृत्य प्रधान नाट्य - नृत्य प्रधान नाट्य आजकल रास के रूप में मिलता है। 2. हास्य प्रधान नाट्य- इसमें हास्य

व्यंग्य की प्रधानता रहती है। 3.संगीत प्रधान नाट्य– इन नाटकों में प्रधानता संगीतबद्ध संवाद की होती है। ये कथाबद्ध होते हैं। नौटंकी, भगत, माच इस प्रकार के लोकनाट्य हैं। 4. नाट्यवार्ता प्रधान - इसमें अभिनय और समान्य रूप में वार्ता की प्रधानता रहती है। इस वर्गीकरण में संगीत प्रधान नाट्य के अंतर्गत नौटंकी को स्थान दिया गया है। एक समय में उत्तर प्रदेश में नौटंकी एक प्रतिष्ठित नाट्य विधा थी।

नौटंकी : 19वीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी अंचल से कतिपय लोकनाट्य रूपों का उदय हुआ, जिन्हें सामान्य रूप से 'सांगीत' कहा जाता था। इस सांगीत शैली के अंतर्गत मथुरा-वृन्दावन व आगरा में प्रचलित 'भगत', हाथरस का 'स्वांग', कानपुर की 'नौटंकी' तथा हरियाणा व मेरठ का 'सांग', अवध के 'रहस' व 'सपेड़ा', राजस्थान के 'ख्याल' व मालवा के 'माच' भी इसी 'सांगीत' परंपरा की ही कड़ी हैं। सांगीत के पूर्वोक्त समस्त रूपों में सबसे अर्वाचीन 'नौटंकी' ही है किंतु यह इतनी लोकप्रिय हुई कि अन्य समस्त रूपों को भी मोटे तौर से नौटंकी कहकर ही पुकारा जाने लगा।[6] नौटंकी शब्द की अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं। बलवंत गार्गी का कथन है कि पंजाब में नौटंकी नाम की एक नर्तकी थी उसी के नाम पर इस विधा का नाम नौटंकी पड़ गया।[7] डॉ. मिश्र का मत है कि नौटंकी परंपरा का प्रारंभ रंगमच की प्राचीन निष्णात महिला कलाकार पाटकीया से हुआ है।[8] इस संबंध में लोक साहित्य के मर्मज्ञ रामनारायण अग्रवाल का मत है कि नौटंकी शब्द का प्रचलन इस क्षेत्र में बहुत प्राचीन नहीं है, उनका कथन है- 'नौटंकी' सांगीत परंपरा की सबसे अधिक अर्वाचीन कड़ी है। इसके नाम से कोई प्राचीनता ढूंढना व्यर्थ है क्योंकि 'नौटंकी' शब्द किसी शब्दकोश तक में उपलब्ध नहीं होता है। यह शब्द एकदम नया है।[9]

वस्तुतः कानपुर में 'सांगीत' के लिए मात्र नौटंकी शब्द ही प्रचलित है। वहां की जनता न 'स्वांग' को जानती है और न 'भगत' को। डॉ. उषा किरण का इस संबंध में यह कथन है - 'नौटंकी शब्द कानपुर में ही नहीं कानपुर से पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हुए पूरे बिहार प्रांत में प्रचलित है।'[10] सिनेमा के आने से पहले नौटंकी ही लोगों के मनोरंजन का साधन था। बड़े-बड़े मेलों में नौटंकी पार्टियां जाती थी और टिकट से नियमित शो करती थी। दर्शक भी नौटंकी को बड़े चाव से देखते थे।

कानपुर में नौटंकी का प्रारंभ 1910 ई. के आस-पास माना जाता है। इसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि उस समय हाथरस के नत्थाराम शर्मा गौड़ अपनी मंडली लेकर प्रति वर्ष श्रावण मास में कानपुर जाया करते थे और अपने नये स्वांग का प्रदर्शन उद्योग प्रधान नगरी कानपुर में लगभग एक माह तक करते थे। वहां से लौटकर वह उस स्वांग को बलदेव छठ के मेले में हाथरस में आकर करते थे।[11] उन दिनों हाथरस की नत्था मंडली की बड़ी धूम थी। एक बार हाथरस के नत्थाराम शर्मा ने अपने प्रदर्शन के दौरान कानपुर वालों को कुछ फटके सुनाये कि किसी में दम हो तो ऐसा खेल करके दिखाये। कानपुर के प्रसिद्ध ख्याल गायक बंदी खलीफा को हाथरस वालों की यह चुनौती बहुत बुरी लगी। उन्होंने वहीं खड़े होकर एक महीने का समय मांगा। इस प्रकार नत्थाराम की चुनौती से कानपुर में नौटंकी की तैयारी प्रारंभ हुई। बन्दी खलीफा, मुल्लाराम और मैकू उस्ताद ने एक स्वांग तैयार किया। स्वांग की तारीख की घोषणा कर दी गई। उस दिन बेशुमार जनता एकत्रित हुई। अपार भीड़ में नौटंकी प्रारंभ की गई। बीच में बड़ा नक्कारा और उसके चारों ओर बारह झीलें रख दी गयी। खेल के प्रारंभ में लहरा बजा और मैकू उस्ताद घूम-घूमकर बारह झीलों को बजाते और सम पर नक्कारे पर चोब मारते। इस मंडली में लछमन नाम का एक ऐसा कलाकार था जो एक ही चीज को सत्रह प्रकार से गाता था। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह नौटंकी इतनी सफल हुई कि कानपुर में एक स्थायी मंडली बनाने का निश्चय किया गया।

इसी परंपरा में कानपुर में श्रीकृष्ण पहलवान ने कुछ कलाकार हाथरस और उसके आस-पास से बुलाये और कुछ कानपुर क्षेत्र से लेकर, पहली पेशेवर नौटंकी पार्टी बनाई। इनकी नौटंकी बहुत मशहुर हुई। श्रीकृष्ण पहलवान ने अपनी कंपनी का नाम 'श्रीकृष्ण सांगीत

कम्पनी' रखा। कुछ दिनों में ही यह कंपनी कानपुर की शोभा बन गई। 'श्रीकृष्ण सांगीत कंपनी' अपने समय में इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके अंतर्गत एक ही समय में चार-चार टीम काम करती थी और इसके मुकाबले में कई पारसी थियेट्रीकल कंपनियां फेल हो गई।

कानपुर की नौटंकी को विकसित करने वालों में दूसरा महत्वपूर्ण नाम त्रिमोहन लाल का है। इन्होंने नौटंकी को दृश्यों में विभाजित किया और साथ ही नौटंकी में स्त्री पात्रों की भूमिका के लिए वेश्याओं को मंच पर ले आये। गुलाबजान और कृष्णाबाई इनकी प्रमुख कलाकार थी, जिन्होंने बाद में इस मंच पर बड़ी ख्याति अर्जित की। त्रिमोहन लाल ने इस परंपरा को कई मोड़ दिये। उन्होंने इसमें 'पारसी नाटक शैली' का स्टेज जोड़ दिया। नौटंकी अब खुले स्थान के बजाय परदों से सजे स्टेज पर होने लगी। सन् 1933-34 के लगभग त्रिमोहन द्वारा नौटंकी मंच पर उतारी गई थी। उन्होंने कई नये कथानक स्टेज के अनुसार लिखे, जिनमें दृश्य विभाजन होता था। उनका 'पुकार' नामक सांगीत 5 दृश्यों में विभाजित किया गया था। इसमें जहांगीर का न्याय दिखाया गया था। बाद में इसी आधार पर 'पुकार' फिल्म भी बनी। महिला कलाकारों के आ जाने से नौटंकी की चमक-दमक और बढ़ गयी तथा बाद में अन्य नौटंकी वाले ही नहीं, हाथरस के नत्थाराम को भी स्त्री कलाकार रखने पड़े। कानपुर की देखा-देखी लखनऊ में नौटंकी मंडलियां गठित की गयी और उत्तर प्रदेश के अन्य नगरों में भी मंडलियां गठित होने लगी। सांगीत को पारसी मंच के चौखटे में बांधने तथा वेश्याओं को इसमें प्रधानता देने के कारण यह स्वांग से उत्पन्न होते हुए भी स्वांग न रहकर नौटंकी बन गई। वैसे भी समाज में नौटंकी शब्द सामान्य प्रयोग किसी बनी-ठनी नखरे दिखाने वाली स्त्री तथा दिखावे के लिए होता है।

कानपुर की नौटंकी कंपनियों में व्यवसाय की दृष्टि से सबसे अधिक सशक्त कंपनी लालमन नम्बरदार की रही। सन् 1935 में इसकी नायिका को दो हजार रुपये मासिक वेतन दिया जाता था। कंपनी वर्ष भर भारत के बड़े नगरों में भ्रमण करती थी। इसमें गुलाबजान, श्यामबाई, अन्नोबाई, विद्याबाई आदि बड़ी नौटंकी कलाकारों ने नौकरी की। गुलाबजान अपने समय में नौटंकी की मलिका कही जाती थी। वे अपनी गायकी के लिए प्रसिद्ध थी। उनकी गायकी के ढंग से प्रभावित होकर आज से वर्षों पूर्व एच.एम.बी. कंपनी ने कानपुर आकर उनके गीतों का रिकार्डिंग किया, उन रिकार्डों में 'नदी नाले न जाओ, श्याम पइया परूं' रिकार्ड आज तक अमर है। उनकी विशेषता थी कि वे अपनी आवाज को भावों के साथ बदल लेती थी। नौटंकी 'हरिश्चन्द्र तारामती' में जब 'रोहिताश्व' की मृत्यु पर वह तारामती के रूप में गाती– अरी मैंने बड़े जतन से पालौ तापे डस गयौ विषधर कालौ, बेटा बोल तो सही- तो उनकी आवाज का जादू सारे दर्शकों को आंसू बहाने पर मजबूर कर देता था। गुलाबजान को उनकी कलात्मक प्रतिभा के लिए उत्तर प्रदेश 'संगीत नाटक अकादमी' द्वारा सम्मानित किया गया था। इसी प्रकार विद्याबाई अपने नृत्य के लिये इतनी प्रसिद्ध रही कि लोग सौ-सौ मील दूर से इनका नृत्य देखने के लिए आते थे। इनता नृत्य दर्शकों को पागल बना देता था। कानपुर की नौटंकी कंपनियों में शताधिक महिला कलाकार काम करती थी, जो नाचने गाने और अभिनव में बेजोड़ थी। गाते-गाते नाचने लगना नौटंकी का प्रमुख तत्व था। छिद्दन नामक भांड हास्य अभिनेता के रूप में दर्शकों का लाडला था। हारमोनियम पर मास्टर महबूब एक हाथ से एक राग बजाते तो दूसरे हाथ से दूसरा। रशीद नक्कारावाज नक्कारे पर तीनताल के साथ आड़ा चार ताल तथा धमार आदि बजाते थे तो सत्यनारायण की ढोलक सुनने लोग दूर-दूर से आते थे।

नौटंकी 20वीं शताब्दी में अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंच चुकी थी। इस दौरान नौटंकी मंडलियों को अखाड़ा कहा जाने लगा जिससे इनके रुतबे और गायन-वादन-नृत्य की चुनौतीपूर्ण दमखमपूर्ण कलाकारों की अभिव्यक्ति होती थी। नौटंकी के अभिनेता की आवाज बहुत दमदार तथा मधुर होती, क्योंकि उसे बिना ध्वनि विस्तारक यंत्र (माईक) के अपने खेल हजारों दर्शकों के बीच में करने होते थे। गोकुलदासजी बरसाना गांव के चौबोला गायकी के अद्वितीय कलाकार थे। इनकी आवाज में इतनी दमदारी तथा कशिश थी कि रात्रि में

बिना माईक के ही इनकी आवाज पांच-छः मील तक स्पष्ट सुनायी देती थी। इनकी वाणी के आकर्षण से खिंचकर श्रोता नींद छोड़कर दूर-दूर के गांवों से इन्हें सुनने चल देते थे। नत्थाराम बहुत अच्छे गायक होने के साथ-साथ एक कुशल अभिनेता भी थे, वे अक्सर नौटंकी में हरिश्चन्द्र का अभिनय करते थे जिसे वे बड़ी ही तल्लीनता के साथ निभाते थे कि दर्शकों के आंसुओं की धारा बहने लगी और हिचकी मंच तक सुनायी देने लग जाती थी। नौटंकी के अभिनेताओं में विदूषक अर्थात हास्य अभिनेता का भी बहुत महत्व होता है। नौटंकी प्रदर्शन का यह प्राण होता है। यह अपने कला कौशल तथा वाणी के चातुर्य से दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करता है। नौटंकी के कुछ प्रमुख कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं - मनोहरलाल शर्मा, गिरिराज प्रसादजी, पूरनचन्द शर्मा, चुन्नीलाल, रामस्वरूप शर्मा, छिद्दन मियां, कक्कूजी, श्यामाबाई, अन्नोबाई, मैनाबाई, राधारानी इत्यादि।

नौटंकी का प्रारंभ लहरे के साथ नक्कारा वादन से होता है जिससे नौटंकी का मूड बनता है। नगाड़े पर अधिकतर कहरवा ताल बजाई जाती है, जो कि तिहाई लेकर समाप्त होती है। इसके बाद सभी पात्र मंच पर आकर कोरस गान करते हैं।

तब खेल प्रारंभ होता है। परंपरागत नौटंकी देर रात को लगभग 10 बजे शुरू की जाती थी और पूरी रात चलती थी यानि लगभग 8-10 घंटे की होती थी। नौटंकी में कथा-क्रम में विराम नहीं होते थे पर बीच-बीच में गाने, नृत्य व हास्य व्यंग्य का प्रयोग किया जाता था जिससे दर्शकों का मनोरंजन भी हो जाता था तथा नौटंकी में विराम भी आ जाता था। परंपरागत नौटंकी में प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र तीनों प्रकार के कथानक देखने को मिलते हैं-सत्यवादी हरिश्चन्द्र, राजा गोपीचन्द, भक्त पूरनमल, राम की कथा, कृष्णावतार, शुकरम्भा, चीरहरण, अर्जुन अभिमन्यु आदि प्रख्यात कथानक हैं। अमरसिंह राठौर को आज की भाषा में ऐतिहासिक कथानक कहा जाता है। गुलबकावली, इन्दल-हरण, इश्क का शैदाई, गुलशन का ख्वाब उत्पाद्य कथानक हैं, जिनकी रचना नौटंकी-लेखक अपनी काल्पनिक शक्ति से करता है। उस कथा को रोचक बनाने के लिए उसमें अनेक काल्पनिक घटनायें और पात्र जोड़ता है। प्रख्यात (पौराणिक) और काल्पनिक दोनों को मिश्रित करके जो कथानक बनाया जाता है वह मिश्र कहलाता है।[12]

राष्ट्रीय व समाज सुधार की भावना को लेकर भी कुछ नौटंकियां रची गई। 20वीं शती के शुरूआती दौर में आम व्यक्तियों की भावनायें जो अंग्रेज शासन और जमींदारों के खिलाफ थी उन्हें नौटंकियों सुल्तान डाकू, जालियांवाला बाग और अमर सिंह राठौर के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता था। मंडली के गुरु को 'रंगा' कहते हैं। यह सूत्रधार, निर्माता व मंच संचालक सभी कुछ होता है जो सारे खेल की चाल व सुर को बांधता है, पात्रों के प्रवेश व प्रस्थान की सूचना देता है और बीच-बीच में गाकर तथा व्याख्या करके कहानी के सूत्रों को जोड़ता है। प्रत्येक नौटंकी में एक विदूषक भी अवश्य होता है जो अपनी ऊल-जलूल हरकतों के द्वारा दर्शकों से छेड़छाड़ करता है और बड़ों-बड़ों की टांग खींच लेता है। नौटंकी में गीत संगीत की प्रधानता होती है। संवाद भी पद्यमय ही होते हैं। इनके शब्द बहुत साधारण होते हैं तथा आम इंसानों के हृदय पर इनका सीधा प्रभाव पड़ता है। नौटंकी में मुख्यतः विविध छंदों का प्रयोग किया जाता है, यथा- दोहा, चौबोला, दौड़, बहरतबील।

नौटंकी का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है और मंगलाचरण का प्रारंभ दोहे से जैसे– दोहा- सुमिर सरस्वती मात को, श्रीगणपति कर याद। राज गोपीचंद का, रचूं रूचिर संवाद।।[13] मंगलाचरण के अतिरिक्त कथानक के बीच-बीच में भी छंद का प्रयोग होता है यथा -'हाडी रानी' में अमरसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर उसकी पत्नी अधीर हो उठती है। उसका भतीजा रामसिंह उसे समझाता है तब वह कहती है, दोहा– *बतला तू ही ऐ कुमर, किस विधि बांधु धीर। समरस्थल देवर मरे, फूट गई तकदीर।। किश्तिये उम्मीद चक्कर में फंसी तूफान के। अब नहीं साथी कोई मेरा सिवा भगवान के।।*[14] नौटंकी में चौबोला का प्रभूत रूप से प्रयोग किया जाता है। रंगा द्वारा वर्णन करने के लिए

तथा किसी वस्तु का विवरण प्रस्तुत करने के लिए और पात्र द्वारा अपने मनोभाव व्यक्त करने के लिए यह छंद बहुत उपयुक्त है। नौटंकी में यह छंद प्रायः अपने ऊपर दोहे की 2 पंक्तियां भी लगता है यथा– दोहा– *हरीबाबू को हो गया, बात का जब विश्वास। आफ्तजां से हो विदा, चले पिता के पास। चौबोला-चले पिता के पास, अजब ढंग जाकर वहां निहारा। पलंग के ऊपर पड़े हैं, बेसुध शिथिल अंग है सारा। हिला के शाना कई दफा, उनको है बहुत पुकारा। वह बोले किस तरह से मित्रो, हुआ जो जग से न्यारा।।*[15] *दोहा- चल हट कायर बुजदिल, पाजी नुत्फ हराम। बेटा होकर शेर का, किया स्यार का काम।। चौबोला - किया स्यार का काम, राम सिंह मरने से दहलाया। सुनकर मेरी बुराई तू जिन्दा नौमहले आया।। राजपूती का असर न आया, मां का दूध लजाया। राठौरों की सात पुश्त को, बट्टा तैने लगाया।।*[16]

नौटंकी का तीसरा छंद दौड़ है। यह चौबोला के बाद गाया जाता है। एक प्रकार से यह चौबोला का तोड़ करता है। नौटंकी में यह छंद इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि दोहा और चौबोला तक नक्कारे वाले को गायक के साथ मात्र संगत करनी होती है। वह इन छंदों के गायन के समय स्वतंत्र रूप से नक्कारा नहीं बजा सकता। दौड़ ही नौटंकी में ऐसा छंद है जो सम की भांति काम करता है अर्थात कथानक के प्रसंग को विराम देता है और नौटंकी समाप्त होते ही नक्कारा वादक अपने नक्कारे पर अपनी बाज शुरू कर देता है। हाथरस शैली की दौड़– *तू रह प्यारी बेखटके। मैं जाऊं अभी महल आराम करो तुम। सोच फिक्र सशंपंजरंज, गम दूर तमाम करो तुम।।* कानपुर शैली की दौड़– *दौड़ पिशर हूं मैं पठान का। न डर है मुझे नहीं भोला भाला हूं। मत छोड़ो तुम मुझे पौनिया, असल नाग काला हूं।।*

नौटंकी में जब दो पात्रों का कथोपकथन दिखाना होता है तब **बहरतबील** छंद का प्रयोग किया जाता है। इसलिए यह छंद वर्णों की दृष्टि से बहुत लंबा है– *'जबकि मकतब से पढ़करके आती हो तुम, तेरी चाहत का दिलवार बयां करूं। याद आती रहे शक्ल भोली तेरी, और पुकारा मैं लैला ही लैला करूं।।'* कानपुर शैली की बहरतबील– *'अब तो देनी ही होगी इजाजत मुझे। वर्ना उर मार खंजर मैं मर जाऊंगा।।'* प्रस्तुत बहरतबील 'आंख का जादू' नौटंकी में सुशीला अपने पति को वेश्या के चक्कर में फंसा देखकर पति वियोग से विलाप करती हुई कहती है– *'इस तरह से मैं समझा चुकी पेश्तर, दिल में भायी न उनके नसीहत बिरन। मूलधन हाथ से मेरे जाता रहा, क्या बयां मैं करूं फूटी किस्मत बिरन।'*[17]

'गोपीचन्द' **नौटंकी** में उपरोक्त सभी छंदों का उदाहरण एक साथ प्रस्तुत है। गोपीचन्द के जोग लेने के पश्चात उसकी छोटी रानी पति वियोग में झुलस रही है। उसका भावोद्‍गार यहां प्रस्तुत है- दोहा– *प्रियतम तुम माला लई जपन लगे श्रीराम। ऋतु ऋतु पर हमको पिया, आन सतावे काम।। चौबोला - आन सतावै काम सहूं किस तरह चोट जोबन की। किस पर करूं सिंगार प्राणपति कहूं कौन से मनकी।। हैं हम दासी चरणकमल की हमें है तमै ना धन की। कहॉ बिसारे जाऊं कंत हम हैं उर्द्धंगी तन की।।* दौड़– *प्राणपति प्राण पियारे। आपने बादर फारे।। अभी है बारी वैसे। बिना तुम्हारे दरस महल में हम जीवेंगी कैसे।।*[18]

उपरोक्त के अतिरिक्त नौटंकी में कुछ अन्य छंदों का भी प्रयोग होता है यथा– **लावनी, प्रिया, रागनी।** नौटंकी में लावनी का प्रयोग ख्यालबाजों की देन है। प्रसंग के अनुसार कवि छंद लिखता है और प्रसंग के अनुकूल ही राग में उसकी बंदिश बनायी जाती है। सामान्य रूप से प्रचलित लावनी का स्वरूप इस प्रकार होता है- **लावनी-** *मैं आई तेरे पास न देर लगाओ। मेरे छौना को आग जरा दिलवाओ।।*[19] नौटंकी में प्रिया छंद का प्रयोग कभी कभी सीधा-सीधा और कभी इसके अगले चरण में मात्रायें बढ़ाकर किया जाता है। इसी छंद को बहुत से लोग गजल का रूप देकर गजल कहते हैं। इसमें भी गायकी को ध्यान में रखकर छंद रचना की जाती है। कानपुर शैली की नौटंकी में इसका प्रयोग बहुत होता है– **गजल–** *'हुई रन में बिजयी है तलवार किसकी। पिसर सच बता दे हुई हार किसकी।। मैं कुरबान जाऊं सुनादे जबां से। जमी धाक है शाही दरबार*

किसकी।।[20] नौटंकी में गजल की बंदिश अनेक प्रकार से होती है। कभी-कभी सवालिया गजल लिखनी होती है, कभी उसे गीत के अंदाज पर लिखा जाता है, जैसे- - *'सैर हुस्ने चमन की करा दो मुझे। दस्त नाजुक से सागर पिला दो मुझे।। शक्ल तेरी देखकर ये दिल मेरा घायल हुआ। हो जिनू पैदा मुझे जो वस्ल न हासिल हुआ।। गुले आरिज का बोसा दिला दो मुझे। दस्त नाजुक से सागर पिला दो मुझे।।'*[21] रोहतक और मेरठ में एक छंद चलता है जिसे वहां के लोग रागनी कहते हैं। यह आर्या जाति का छोटा छंद है जिसकी बंदिश गति की भांति आवश्यकतानुसार कर ली जाती है और इसे रागिनी में गाया जाता है। यथा– *'मैं तेरे दर पे आया हूं। तलबदीदार लाया हूं।।* xxx *बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी। दुख हरो द्वारकानाथ सरन मैं तेरी।।'* इसी प्रकार गीत शैली में विभिन्न मात्राओं के वर्णों के अनुसार **रागनी** बना ली जाती है। हाथरस शैली तथा कानपुर शैली में इसे 'गाना' कहा जाता है।

नौटंकी का संबंध जन सामान्य से रहा है। हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्गों ने मिलकर इसे आगे बढ़ाया है। ऐसी कला में चाहे जब कुछ नया जुड़ता जाता है। सारी बात का एकमात्र अधिकारी उस्ताद होता है। वह जिस शैली से प्रभावित हो जाए अपनी रचना में उसे जोड़ देता है। इस विकास के कारण नौटंकी में कुछ प्रभाव 'पारसी नाटक शैली' का जुड़ गया। नौटंकी और पारसी थियेटर प्रायः साथ-साथ विकसित हुए हैं। इनमें जहां परस्पर प्रतिद्वंद्विता रही है वहीं एक दूसरे के संस्कार भी लिए हैं। पहले नौटंकी के मंच पर पीछे की ओर कनात होती थी तथा वह तीन ओर से खुला रहता था किंतु थियेटर के प्रभाव से इसमें तीन ओर से बंद मंच का प्रयोग होने लगा तथा दृश्य सज्जा भी होने लगी। दृश्यों में नाच गान की परंपरा पारसी शैली से आयी। कुछ गजल, कब्बाली तथा मसनवी शैली की धुनें भी इसमें आकर मिल गई। नौटंकी के पात्रों के अभिनय एवं रूपांकन पर भी पारसी थियेटरों का गहरा प्रभाव दिखता है।

नौटंकी में मुख्य सज्जा करने की विधि परंपरागत है। इसकी मुख सज्जा में भारतीय वनस्पतियों और खनिजों का प्रयोग होता है। सबसे पहले मुख पर एक लेप लगाया जाता है। पत्थर की चकली पर मुर्दाशंक चंदन की भांति घिसकर उसमें थोड़ा सिंदरफ मिलाकर वह लेप मुंह पर मला जाता है। संदरफ से ही गालों पर हल्की लाली और होठ लाल कर लिए जाते हैं। आंखों में काजल लगाया जाता है। अरहर के कोयले को पत्थर पर पानी में घिसकर उसकी कालिमा से भौंह तथा मूंछें आदि बना ली जाती है। पारसी नाटक कंपनियों के प्रभाव स्वरूप अब कुछ लोग मुख के लेप के लिए मुर्दाशंख के स्थान पर सफेद जिंक पाउडर का इस्तेमाल करने लगे। इसे पानी तथा ग्लेसरीन दोनों में मिलाकर इस्तेमाल किया जा सकता है। कुछ लोग जिंक में अनुपात के हिसाब से लाली मिलाकर उसमें घी या ग्लेसरिन मिलकार उसका पेस्ट तैयार करके रख लेते हैं। तैयार लेप होने से उन्हें मुख सज्जा करने में सुविधा रहती है। इसी प्रकार अब अरहर के कोयले के स्थान पर काली 'आई ब्रो पेंसिल' चल गई है जिससे भौहें काली करते हैं, लिपिस्टिक से होठ सजाते हैं। नौटंकी के दल पारसी शैली के बने सलमा-सितारे जड़े मखमल के कोट, ड्रेस आदि का प्रयोग करने लगे हैं। देवी-देवता तथा राजा-रानी बनने वाले पात्र मुकुट आदि लगाते हैं।

नौटंकी अपने 50-60 वर्षो के जीवन में लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर तक चढ़ी और उसी तेजी से उसका पतन भी हुआ। इसका कारण नौटंकी की प्रस्तुति बहुत साधारण से मंच पर कहीं भी हो जाती थी। इसकी कलात्मक शक्ति का केंद्र इसके प्रतिभा संपन्न कलाकार होते थे। उनकी कला की समझ में रंगमंच अथवा रंग मंचीय उपकरणों का कोई महत्व नहीं था। कालान्तर में इसमें रंगमंच की साज-सज्जा जुड़ने लगी, अनेक प्रकार के दृश्य-परिधान आदि जोड़कर कानपुर की पेशेवर नौटंकी कंपनियों ने इसको जटिल एवं व्यावसायिक बना दिया। नौटंकी में वेश्याओं के प्रवेश के बाद स्थिति और बिगड़ गयी। ये वेश्याएं मुजरा गाने वाली होती थी, जो दर्शकों को आकर्षित करके उनसे ईनाम पाने के लालच से अश्लील और घटिया किस्म का नाच-गाना पेश करती थी। अतः नैतिक पक्ष धीरे-

धीरे गिरने लगा और विलासिता और भोग की वृत्ति इस क्षेत्र में विकसित होने लगी। इसके कारण कानपुर की नौटंकी बदनाम हो गयी और संभ्रांत लोगों ने इसे देखना बंद कर दिया। इसके अतिरिक्त अन्य लोक कलाओं की तरह नौटंकी पर भी राजनैतिक एवं पाश्चात्य संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सामान्य जन का आधुनिक नाटक, टी.वी., फिल्म की ओर बढ़ते हुए रुझान की वजह से नौटंकी अपनी लोकप्रियता और पहचान खोती जा रही है, परंतु फिर भी कुछ कलाकार इसे जीवंत रखने के लिए निरंतर संघर्षरत हैं।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश, मु.स. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.-61। **2.** ऋग्वेद, 20/19। **3.** महाभारत, आ.प. 1/84। **4.** नाट्यशास्त्र 25-123, पृ.-416। **5.** सत्येन्द्र-लोक साहित्य विज्ञान, पृ.431। **6.** कथक नृत्य शिक्षा (द्वितीय भाग) डॉ. पुरू दाधीच, पृ.-61। **7.** रंगमंच, बलवन्त गार्गी, पृ.158। **8.** हिंदी नाटकों में अभिनय तत्व-डॉ. ब्रज वल्लभ मिश्र, पृ.72। **9.** सांगीत एक लोकनाट्य परंपरा-रामनारायण अग्रवाल, पृ.125। **10.** नाट्यशास्त्र की परंपरा और हिंदी रंगमंच- उषाकिरण शर्मा, पृ.326। **11.** ब्रज की संगीत परंपरा-डॉ. वन्दना सिंह, पृ.-158। **12.** नाट्यशास्त्र अध्याय 19, श्लोक 9। **13.** सा. गोपीचन्द्र उर्फ जोग का उपदेश- पं. नत्थाराम शर्मा गौड़-हाथरस। **14.** सा. हाडी रानी, पृ.31। **15.** सा. आंख का जादू-श्री कृष्ण पहलवान, पृ.-17। **16.** सा. अमर सिंह, पं. नत्थाराम शर्मा, पृ.13। **17.** सा. आंख का जादू-श्रीकृष्ण पहलवान, पृ.25। **18.** सा. गोपीचन्द, पृ.28।**19.** सा. सत्य हरिश्चन्द्र-श्री कृष्ण पहलवान, कानपुर, पृ.39। **20.** कत्ले शोहर- पं. नत्थाराम शर्मा, पृ.17। **21.** सा. आंख का जादू-श्रीकृष्ण पहलवान, पृ.45।

❑❑

एसोसिएट प्रोफेसर, कत्थक नृत्य
-वनस्थली विद्यापीठ (राज.) 304022
मो. 9887562951

संसारवृक्ष

संसार-वृक्ष के दो बीज हैं- पाप और पुण्य। इन्हीं से यह वृक्ष उगता है। किये जाने वाले वासनायुक्त कर्म और ऐसे कर्मों की परंपरा ही इस वृक्ष को पुष्ट करती हैं। सत, रज, तम तीन गुण इस वृक्ष के तीन तने हैं और वात, पित्त, कफ तीन दोष ही इस वृक्ष के तने की तीन प्रकार की छालें हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये पांच तत्व इस वृक्ष की मोटी शाखाएं हैं तथा पांच कर्मेंद्रियां- हाथ, मुंह, पैर, गुदा, मूत्रेन्द्रिय एवं पांच ज्ञानेंद्रियां- आंख, जिह्वा, कान, त्वचा, नाक (मन राजा है)। ज्ञानेंद्रियों के पांच विषय- रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श कुल मिलाकर ये सोलह इसकी पतली शाखाएं हैं। जीव और ईश्वर इस वृक्ष पर निवास करने वाले दो पक्षी हैं। सुख-दुःख इस वृक्ष के फल हैं। विषय, रस और इच्छाओं में फंसे जीव गिद्ध हैं और वे दुःख रूप फल भोगते हैं तथा जन्म-मरण के इस चक्र में पड़े रहते हैं।

विषयों से अनासक्त जीव हंस है। यह वृक्ष सूर्यमंडल तक फैला हुआ है। मुक्त पुरुष (वासनामुक्त पुरुष) सूर्यमंडल का भेदन करके उससे ऊपर जाते हैं, जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ते।

छत्तीसगढ़ की जनजातियों में गोदना

शिव कुमार सिंघल

छत्तीसगढ़ राज्य में जनजातीय महिलाओं एवं पुरुषों में गोदना प्राचीन समय से प्रचलित है। गोदना को पछेना या अंकन भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे टैटु कहते हैं जो शरीर पर बनी कलाकृतियां होती हैं। जनजातीय महिलाओं में प्रचलित गोदना में अंकित होने वाले चित्र इनकी मनोभावना का परिचायक होते हैं व आजीवन व्यक्तित्व के साथ जुड़ जाते हैं। गोदना शब्द का शाब्दिक अर्थ चुभाना है। शरीर में सुई चुभोकर उसमें काले या नीले रंग का लेप लगाकर गोदना कलाकृति बनाई जाती है। गोदना प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। श्रीकृष्ण गोदनहारिन का रूप धारण कर राधा के गोदना गोदने गये थे। यह बताना कठिन है कि इसकी शुरुआत कैसे और कब हुई होगी। लगता है कि इस प्रथा की शुरुआत अपने कुनबे की पहचान के लिए हुई होगी। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में लगभग सभी जातियों में गोदना प्रथा का प्रचलन है। अपने हाथों में नाम लिखवाना या फिर कोई धार्मिक शब्द लिखवाना इस प्रथा को बल देता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गोदना को एक्यूपंचर का रूप मान सकते हैं। चीन में शरीर में सुई चुभाकर अनेक बीमारियों को ठीक किया जाता है। भारत में एक्यूपंचर पद्धति 1959 में आई। इस पद्धति से शरीर के न्यूरो हार्मोनल सिस्टम को क्रियाशील कर देते हैं। सरगुजा अंचल के लोग इस तथ्य को मानते हुए स्वीकार करते हैं कि गोदना से सुंदरता के साथ-साथ वात रोग-चोट का दर्द या फिर अन्य किसी प्रकार के दर्द से राहत मिलती है। छत्तीसगढ़ के सरगुजा क्षेत्र में गोदना बनाने का कार्य बादी समुदाय के लोग करते हैं। अंबिकापुर से रामानुजगंज जाने वाले मुख्य सड़क-मार्ग पर सूरजपुर के पास बोबगागांव में अनेक बादी जातियां रहती हैं। कुसमी क्षेत्र के डीपाडीह के पास एक छोटे पहाड़ी टीले पर स्थित बादागांव में तो समूची आबादी बादी जाति के लोगों की है। यहां लगभग बीस-पच्चीस बादी परिवार रहते हैं। इनकी स्त्रियां गांव-गांव घूमकर गोदना करती हैं। इस क्षेत्र में जमड़ी और मानपुर गांवों में भी बादी रहते हैं। लोकसपुर और बगाड़ीगांव में भी बादी जातियां रहती हैं।

सरगुजा जिले की बादी जातियां बताती हैं कि- नगेसिया और पहाड़ी कोरबा आदिवासी गोदना नहीं कराते। इनके अतिरिक्त सभी आदिवासी गोदना कराते हैं। भिन्न-भिन्न आदिवासी समुदायों की पसंद भी अलग-अलग होती है। कंवर आदिवासी हाथी का रूपांकन अधिक बनवाते हैं। बड़ीला कंवर बुंदकिया गोदना और पोथी रूपांकन बनवाते हैं। रजवार जाति की महिलाएं जट रूपांकन बनवाना पसंद करती हैं। इस क्षेत्र में लवंगफूल, करेला, हाथी, चिरई, फूल, मछली, भैंसा सींघ, मछली कांटा जैसे रूपांकन लोकप्रिय हैं।

बादी जातियां अपने आप को मूलतः गोंड मानते हैं। गोदना का काम करने के कारण गोंड इन्हें निम्न मानने लगे हैं, वे इनका बनाया खाना नहीं खाते, इनका छुआ पानी भी नहीं

पीते। सामान्य धारणा यह है कि आदिवासी समाज में ऊंच-नीच की भावना नहीं होती, परंतु उनमें भी यह भावना काफी हद तक कार्य करती है। गोंड आदिवासियों में यह भावना अन्य आदिवासियों की अपेक्षा अधिक है। बादी जातियां कहती हैं सींकरी देव हमारा सबसे बड़ा देव है, इसके साथ हम बूढ़ी माई और बूढ़ा देव की पूजा भी करते हैं, इनका वास साजा पेड़ में मानते हैं। साजा पेड़ के नीचे देवल बनाते हैं जिसे सरना कहते हैं। सींकरी देव की वार्षिक जात्रा भादों माह की एकादशी को होती है। इस दिन काली मुर्गी की बलि चढ़ाई जाती है। घर में अंदर इनका स्थान रसोई में माना जाता है। गोदना के काम में स्त्रियों के मासिक धर्म का बहुत ध्यान रखते हैं, उस समय कोई स्त्री गोदना नहीं करती। यदि उसने ऐसा किया तो गोदना के जख्म पक जाते हैं। यदि कोई बादी जाति की स्त्री मासिक धर्म के दौरान धोके से भी गोदना करने के सामान को हाथ लगाए तो वह सामान अपवित्र माना जाता है। इसे पुनः पवित्र करने के लिए सिंकरी देव की पूजा करनी पड़ती है।बस्तर में गोदना का काम ओझा जाति के लोग करते हैं इन्हें नाग भी कहा जाता है। बस्तर संभाग के कोंडागांव क्षेत्र के सोनबाल के पास स्थित कनेरा गांव में कुछ ओझा परिवार रहते हैं। यहां रहने वाले चंदन नाग की पत्नी लक्खमी नाग गोदना करने के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध है।

लाला जगदलपुरी के अनुसार -'गोदना में लोक जीवन के अनेक धारणाएं जुड़ी है यह एक ऐसा अलंकरण होता है जो शरीर के साथ जाता है। गोदना को कोई चुरा नहीं सकता, छीन नहीं सकता, मांग नहीं सकता, उतार नहीं सकता जबकि तांबा, कांसा, सोना, चांदी के आभूषण के साथ ऐसा हो सकता है। भूत-प्रेत, टोने-टाटके से बचाव के लिए गोदना जनजातियों की रक्षा के कवच की भांति है, इतने सस्ते में स्थाई आभूषण संसार में कोई दूसरा नहीं हो सकता।' शकुन्तला वर्मा के अनुसार- 'जनजाति महिलाओं में गोदना करवाना आवश्यक होता है, यदि बिना गोदना करवाए कन्या का विवाह हो जाता है तो कन्या के पिता से अर्थदण्ड के रूप में लड़की का ससुर पैसे लेता है। ऐसा भी माना जाता है बिना गुदवाए अगर मृत्यु होती है तो महापुरुष उन्हें दण्डित करते हैं।' श्रीचन्द्र जैन के अनुसार- 'जिस तरह जल में शीतलता, आग में ऊष्णता व दूध में नवनीत समाहित है उसी तरह जनजाति के लोक जीवन में यह परिपाटी व्याप्त है।'

मुटियारी (स्त्री) का मुख्य आभूषण गुदना ही होता है। जनजातियों में जब महिला का गोदना होता है तब वह महिला अपने दर्द को कम करने हेतु एक गीत गाती है जिसका हिंदी अर्थ है–ओ रास्ते चलते हुए मेरे प्रेमी क्या तुझे मेरा दर्द दिखाई नहीं देता? देखो गुदने से मेरी आंखें सलोनी हो गई हैं, क्या अब भी तुझे तेरा यह रूप नहीं भाता। गुदना को अभिव्यक्त करता एक और गीत गुदना करवाते समय गाया जाता है-अरजी विनती मां हमार। *उई दिनों वचन तुम्हार।। सूरजी का झारा उतार देऊ। उ, ऊ, इ, ई मां ऽऽऽ उतार।।*

जनजातीय महिला-पुरुषों में गुदना गुदवाने के पीछे अनेक मान्यताएं, परंपरा व विश्वास भी हैं। गोदना मधुर संबंधों के प्रतीक स्मृति चिह्न के रूप में भी गुदवाया जाता है, जो जनजातीय महिलाएं लंबे समय तक गुदना नहीं करवाती उन्हें समाज में अपने से बड़ी व बूढ़ी महिलाओं के बीच लज्जित होना पड़ता है। किसी कारण वश यदि युवती का गोदना नहीं हो पाता तो मां-पिता को प्रायश्चित करने हेतु 'सगा' (खाना) खिलाने का दण्ड दिया जाता है। गुदना को स्थाई आभूषण की तरह माना जाता है जो मृत्यु होने पर भी शरीर के साथ रहता है, गुदना जनजातियों के लिए आत्मा का आभूषण होता है जो परमात्मा के पास जाने तक साथ रहेगा, साथ ही इनकी मान्यता है कि गुदवाने से प्रेमी युवक अपनी प्रेमिका से मधुर संबंध बनाए रखता है। पीड़ा के पश्चात भी प्रिय के प्रेम का अहसास इन जनजातीय महिलाओं को होता है, जिसकी अभिव्यक्ति करता एक गीत है– *इली ओझिल गोदलि बांहा। इज्जत गेली मरजद गेली।। घांडी दे महां रे।।* इस गीत का तात्पर्य है कि गोदना करवाने वाले तू मेरी बांह में मेरे प्रेमी का नाम लिख दे। नाम लिखने पर मेरी हंसी सखियां व सगे-संबंधी उड़ाएंगे पर मेरा प्रिय मुझसे कभी अलग नहीं हो पाएगा।

बस्तर संभाग में तीस से अधिक जनजातियां निवास करती हैं व प्रत्येक जनजाति समुदाय के बीच गोदना प्रिय व परंपरा का हिस्सा है। दक्षिण बस्तर क्षेत्र में मष्तक के बीच भाग में टीका, टीके के दोनों ओर सात खड़ी रेखाएं, तीन-तीन, चार-चार बिंदियां, बांह में, कलाइयों पर, हथेलियों के ऊपरी भाग पर बिंदियां बनाकर शृंगार किया जाता है जो गोदने के रूप में होता है। मुड़िया युवतियों के माथे, ठोडी, बांह व पैरों की पिंडलियों को गोदा जाता है जिसमें त्रिभुज, चतुर्भुज, विषमकोण आकार की आकृतियों के रूप में गोदना कराया जाता है। उत्तर बस्तर में छतीसगढ़ी संस्कृति का प्रभाव गुदना कलाकृतियों पर हुआ है इस कारण कांकेर एवं निकटवर्ती क्षेत्रों में पोअंडी (पायल), खाडू (पग वलय), माछी (मक्खी), बांहा-चेघा (बांहटा), सिइता (हंसुली) आदि नामों के गोदना प्रचलित हैं। गुदना में अंकित किए जाने वाली आकृतियों में - पटली, मोर, बिछियां, संकल, पौधा, सर्प, फूल, लाल चीटें, मछली, पत्तियां, हाथी, कण्ठहार, सीकरी, कम्हड़ा, भौंरा, चरूगा आदि शरीर के विभिन्न हिस्सों जैसे-बांह, कलाई, छाती, हथेली का पृष्ठ भाग, पैरों की ऊंगलियों, घुटने के ऊपर, हाथ, पैर, पिंडलियों आदि जगहों पर गुदवाए जाते हैं।

बस्तर क्षेत्र में गोदना कला की उत्पत्ति के बारे में माना जा सकता है कि आदि मनुष्य ने रंग, चुभन, राख, आग व चित्रांकन के अंत:संबंध को समझा होगा व उसने अपनी कल्पनाशीलता को शरीर रूपी चित्रफलक पर उतारना प्रारंभ किया होगा। वेरियर एल्विन ने गोदना से संबंधित दो कथा बताई हैं इनके अनुसार-ओझा औरतें लम्बे समय से बस्तर क्षेत्र में गोदना का कार्य करती आ रही हैं इन ओझा औरतों को 'गुदनारी' भी कहा जाता है। गोदना एवं ओझा औरत की कहानी बस्तर क्षेत्र के नारायणपुर से संबंधित है जहां यह माना जाता है कि पहले जनजातीय समाज जातियों में बंटा हुआ नहीं था तब इनके महापूरवज (देव) ने जातियों को उपहार देकर इन्हें अलग-अगल जातियों में बांटा। जिस व्यक्ति को जाल दिया गया वह मछुवारा, जिसे हल मिला वह गोंड बना और सब वस्तुओं के वितरण के उपरांत केवल ढोल बचा जो रास्ते पर जा रहे लोगों में से एक के गले में लटका दिया व उसे ओझा नाम दे दिया गया। ओझा गांव-गांव घूमकर गाना गाता व भीख मांगकर अपना व अपने परिवार का गुजारा करता, एक शाम जब ओझा पुरुष अपने घर आया तो पाया कि भोजन नहीं बना हुआ है। इस बात पर ओझा पुरुष अपनी पत्नी से बहुत नाराज हुआ। पत्नी भी बिफर गयी और कहने लगी कि मैं तालाब जाकर पानी लाती हूं, जंगल से लकड़ी एकत्रित करती हूं, घर की सफाई, खाना बनाना सभी कार्यों में दिनभर लगी रहती हूं, और कितनी उम्मीद मुझ से रखते हो? तब उस ओझा की पत्नी ने निर्णय लिया, वह खुद कमाकर खुद खाएगी। आठ दिनों तक उसने कुछ नहीं खाया, अचानक बूढ़ी माता (देवी) की मूर्ति हिलने लगी व प्रसन्न होकर बूढ़ी माता ने ओझा की पत्नी से कहा कि मैं तूझे विशेष कार्य सौंपूंगी पर इसके लिए तूझे मेरी पूजा करनी होगी। देवी प्रकट होकर ओझा की पत्नी को लेकर जंगल में सरई वृक्ष के पास पहुंची। पेड़ से गोंद निकाला, मिट्टी के टुकड़ों के बीच गोंद होने के कारण टुकड़े आपस में चिपक गए थे, अब इन चिपके मिट्टी के टुकड़ों पर गोबर लगाकर पुनः आग में सेका गया फिर जब मिट्टी के दो टुकड़ों को अलग किया गया तो बीच वाले स्थान जहां गोंद था वह काले रंग के पदार्थ के रूप में बदल चुका था। इस पदार्थ को मिट्टी की सहायता से खुरेचकर बूढ़ी माता ने इस पदार्थ को टुटे हुए नारियल के टुकड़े पर रखा व पानी मिलाकर कुछ देर चलाया, अब तीन सुईयां बांस की गांठ में बांध उस ओझा स्त्री को लेटाकर उस पर पहला गोदना बूढ़ी माता ने ही किया था। गोदना करने के पश्चात उस स्थान पर गोबर से लीप, हल्दी व तेल लगा दिया। अब बूढ़ी माता ने कहा तुम अब इसी तरह गोदना का कार्य करोगी व गोदना करने के पश्चात उस स्थान को गोबर से लीपकर हल्दी, तेल लगाकर मेरे नाम से चावल बिखेर देना। कुछ सुईयां, दाल एवं हल्दी के दाने तुम एक हाथ में लेना व बायें हाथ से गोदी गई स्त्री की ऊंगलियां पकड़ कर अपनी दाईं वाली मुट्ठी को तीन बार उसके शरीर के चारों ओर घुमाना, इसके

बाद हल्दी, दाल उसकी साड़ी पर छोड़ देना व हाथ छोड़ देना है, इस उपाय के द्वारा गोदना कराए गए स्थानों पर दर्द, जलन कम हो जाएगा।

वर्तमान समय में भी बस्तर क्षेत्र के जनजातीय गोंवों में गोदना का कार्य गांव की सियान, ओझा, कंजर, बादी, बंजारा और देवार जनजातियों की स्त्रियों द्वारा ही कराया जाता है। गोदने वाली सुई को संक्रमित रहित करने हेतु इसे गोबर के जल से धोकर उबाला जाता है इसके पश्चात् कोयले एवं सेमीरंग का उपयोग करते हुए गोदने वाली तीन या पांच सुइयों को एक साथ गोदने के कार्य में लाया जाता है। भतरी-हल्बी व छत्तीसगढ़ी में प्रथम बार सुई के चालन को मूंडी, दूसरी बार को टुसडा और तीसरे बार को छडिया कहते हैं, जनजातीय महिलाओं में गोदना करवाने की परंपरा की ललक, इच्छा आज कम होती देखी जा सकती है। छत्तीसगढ़ के जशपुर जिले की जनजातियां इन कलाओं को कपड़ों, चित्रफलक पर ऊतार कर ख्याति प्राप्त कर रही हैं परंतु बस्तर क्षेत्र में ऐसा देखने को नहीं आता। गोदना जनजातीय संस्कारों, कला की अभिव्यक्ति है इसका संरक्षण आवश्यक है। जिनके द्वारा गोदना का कार्य करवाया जाता है, गोदने की प्रक्रिया पूण होने के पश्चात् कार्य दाम के रूप में धान, चावल, पारिश्रमिक पैसा इन्हें दिया जाता है जो गोदने वाले के जीविकोपार्जन का एक हिस्सा है। गोदना एक बार करवाने के पश्चात जीवन पर्यन्त मिटता नहीं है।

गोदना जनजातियों में धार्मिक आस्था व आभूषण भी है। जनजातियों में ऐसा माना जाता है कि गोदना करवाने के पश्चात् मृत्यु के बाद इन्हें स्वर्ग में स्थान मिलेगा। कुछ जनजातीय महिलाओं का मानना है कि गोदना सुन्दर दिखने के लिए नहीं अपितु सुंदरता छिपाने के लिए गुदवाए जाते हैं क्योंकि बस्तर क्षेत्र की जनजातीय महिलाओं का शोषण यहां आने वाले राजाओं, शिकारियों, अतिथियों, ठेकेदारों एवं अधिकारियों द्वारा होता आया है। जनजातीय क्षेत्रों में गोदना जनजातियों में पारंपरिक शृंगार के रूप में जड़ें जमा चुका है व इनकी संस्कृति का एक अहम अंग भी है, कुछ धार्मिक विश्वास के चलते, कुछ सुंदर दिखने के लिए, कुछ सुन्दरता छिपाने के लिए, कुछ संस्कृति बनाए रखने हेतु गोदना करवाते हैं। छत्तीसगढ़ में 1950 से 1990 तक ऐसा भी दौर आया जब आदिवासियों को प्रेरित किया गया कि वे गोदना न कराएं क्योंकि यह पिछड़ेपन और अशिक्षित होने की निशानी है। आदिवासी दुविधा में भी रहे, पर अंततः यह परंपरा अपना अस्तित्व बचा पाने में सफल रही।

गोदना गुदवाने की विधि- आवश्यक औजार, सामग्री जैसे - सुई, गोबर, काजल, जाड़ा का तेल, आग, हल्दी, चावल का दाना, दाल का दाना, भेलवा रस (विशेष प्रकार के वृक्षों का रस) आदि। सर्वप्रथम शरीर के जिस भाग पर गोदना करवाना है उस भाग में जाड़ा के तेल से लेप किया जाता है। सुई को संक्रमित रहित करने हेतु इसे गोबर के जल से धोकर उबाला जाता है। तीन से चार सुइयों का प्रयोग गोदना करवाने के कार्य में किया जाता है। इसके पश्चात भेलवा रस, काजल या गोंद को आग में तपा कर बनाया गया काले पदार्थ में सुई को डुबोकर शरीर में वांछित स्थान पर चुभा-चुभाकर आकृति बनाई जाती है। गोदना किए गए भाग पर गोबर का लेप 24 घंटों के लिए लगाया जाता है। गोबर एन्टीसेप्टिक का कार्य करता है। गोबर के लेप के पश्चात् हल्दी व तेल का लेप किया जाता है जिससे दर्द/जलन में आराम मिलता है। प्रायः जनजातीय महिलाओं द्वारा गोदना हाथ, पैर, पिंडली, कुहनी, छाती, माथे, बांह आदि अंगों पर कराया जाता है। गोदना गुदवाने के पश्चात् मान्यता अनुसार चावल के दाने, दाल के दाने, हल्दी लेकर गोदना करवाने वाली महिला/पुरुष के शरीर के चारों ओर घुमाकर हल्दी, दाल व चावल के दाने को गोदना करवा चुकी महिला की साड़ी में छोड़ दिया जाता है। ऐसी मान्यता है ऐसा करने से गोदना गुदवाए भाग पर देवी की कृपा के कारण दर्द में आराम मिलता है।

बस्तर में मरार, गौंड, मुरिया, गांडा, कलार, लोहार, तेली और हल्बा जाति/जनजातियां गोदना करती हैं। स्त्रियां अधिक और पुरुष थोड़ी मात्रा में। यहां छत्तीसगढ़ के मैदानी इलाके से अलग बुंदकिया (बिंदुओं के समूह से बने पैटर्न) गोदना अधिक लोकप्रिय है।

यहां पहुंची (बांह में पहनने का आभूषण), बिच्छू, पुतरा (गले में पहनने का आभूषण), तिकोनिआ (विभिन्न आकारों-आयामों के चित्र), हथौड़ी एवं चूढ़ा जैसे पैटर्न अधिक प्रचलन में हैं।

सहायक स्रोत

1. शर्मा, ब्रह्मदेव (1980) आदिवासी विकास एक सैद्धांतिक विवेचन, भोपाल, मध्यप्रदेश, हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.-110। **2.** शुक्ल, हीरालाल (1978) प्राचीन बस्तर, नागपुर, विश्वभारती प्रकाशन, पृ. 36। **3.** साव, मदनलाल (1983) बस्तर का इतिहास, इलाहाबाद, शक्ति प्रकाशन मंदिर, प्रथम संस्करण, पृ.-21। 4. साहू, छबिराम (2012) जनजातीय हस्तकलाएं, एक ऐतिहासिक अध्ययन बस्तर संभाग के विशेष संदर्भ में, पीएच.डी. शोध प्रबंध, इतिहास अध्ययनशाला, प. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर छ.ग.। **5.** एन. ए. आर. (2002) जनजातीय संस्कृति, भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी पृ.-36। **6.** बेहार, राजकुमार (1974) बस्तर आरण्यक, जगदलपुर, धर्मार पब्लिकेशन, पृ.-178। **7.** बरनार्ड, निकोलस (1993) भारतीय कला और शिल्प, लंदन कॉनरन ऑक्टोपस लिमिटेड, पृ.-182,183। **8.** बेहार, राजकुमार (2003) छात्तीसगढ़ी विभूतियां एवं संस्कृति, रायपुर, छत्तीसगढ़ शोध संस्थान, पृ.-15।

❐❐

द्वारा- श्री सुभाष सिंघल
मकान न. 203, वार्ड न. 11, डी.एन.के. कॉलोनी
डी.पी. स्कूल के पास काण्डागांव
जिला-कोण्डागांव, छत्तीसगढ़-494226
मो. न. 8839268887
ईमेल-shiv4singhal72@gmail.com

तीन प्रकार के मनुष्य

संसार में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। पहली श्रेणी के श्रेष्ठ पुरुष वे होते हैं जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजलि देकर निरंतर प्राणिमात्र के कल्याण में लगे रहते हैं अर्थात् अपने स्वार्थ को दूसरों के स्वार्थ के साथ मिला देते हैं। दूसरी श्रेणी के पुरुष वे होते हैं, जो अपनी व्यक्तिगत पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने के साथ-साथ समाज कल्याण के परोपकारी कार्यों में लगे रहते हैं। तीसरी श्रेणी के नीच पुरुष वे होते हैं, जो अपने स्वार्थों के लिए दूसरों का गला घोंटते हैं और झूठ, छल, कपट, बेईमानी, घूस आदि घृणित कार्यों को अपनाने में संकोच नहीं करते व दूसरों के हानि-लाभ पर कोई ध्यान नहीं देते। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए वह नीच से नीच कार्य करने पर उतारु हो सकते हैं। विवेक बुद्धि को भट्टी में झोंक कर सांसारिक उन्नति करना उनका जीवन-लक्ष्य होता है। ऐसे मनुष्य पशु श्रेणी में गिने जाते हैं। मनुष्य तो वह है जो प्राणिमात्र के लिए जीता है। जो केवल अपने लिए जीता है, अपने लिए सोचता है, केवल अपने लिए पकाता है, वह पशु है, चोर है, मनुष्य कहलाने योग्य नहीं। पशुता से मनुष्यता व देवत्व की ओर बढ़ने की पहचान यही है कि उसने कहां तक अपने स्वार्थों को समाज के स्वार्थों के साथ मिला दिया है। मनुष्य जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ दूसरों की उन्नति के लिए जीवन भर प्रयत्न करता रहे।

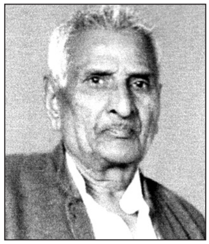

हरियाणवी ऐतिहासिक लोक गाथाएं

रामशरण युयुत्सु

लोक साहित्य की अनेक अन्य विधाओं की भांति लोक गाथाओं की परंपरा भी वेद विहित-सी लगती है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में 'गाथा' शब्द का प्रयोग पद्य या गीत के अर्थ में हुआ है, जब कि गाने वाले को 'गाथिन' की संज्ञा से अभिहित किया गया। *क. प्रकृतान्यृजीषणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया। मदेसोमस्य वोचत।। (ऋग्वेद 8.32.1), ख. अग्निमीलिष्वावसे गाथाभिः शीर शोचिषम्। अग्नि राये पुरुमील्ह श्रुतं नरोऽग्न सुदीतयेधर्दिः ।।4।। (ऋग्वेद 8.71.14), ग. तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत। उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रती।। (ऋग्वेद 9.99.4), घ. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिंद्रमर्केभिरर्किणः।। इन्द्रं वाणीरनूपत।।* (ऋग्वेद 1.7.1)। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में भी गाथाओं का उल्लेख हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हें कहीं महागाथा तो कहीं गाथा कहा गया है : *तदेषाडभि यज्ञगाथागीयते। तां गाथां दर्शयति।।* (ऐ. ब्रा.39/7)। यास्क के निरुक्त में भी 'गाथा' की चर्चा हुई है, जिसकी व्याख्या दुर्गाचार्य ने इस प्रकार की है- 'वैदिक सूक्तों में कहीं-कहीं जो इतिहास मिलता है, वह कहीं ऋचाओं एवं कहीं गाथाओं में अनुस्यूत है।[1] श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध में भी इनकी कमी नहीं है। महाभारत में दुष्यंत-पुत्र भरत की महिमा संबंधी अनेक गाथाओं का आकलन है।[2] गृह्यसूत्रों में भी गाथाओं की परंपरा अक्षुण्ण रूप में उपलब्ध है।[3]

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी हमीरपुर (हि. प्र.) में प्रवास के अवसर पर श्रद्धेय ठाकुर राम सिंहजी ने अपनी लम्बी वार्ता में बताया कि- 'इतिहास लेखन बिन्दुओं में प्रकृति का इतिहास और पृथ्वीवासी मानव का इतिहास प्रसिद्ध है। साहित्य के अंतर्गत शिष्ट व लोक साहित्य का समावेश है'। लोक में प्रचलित गाथा और कथा में अंतर होता है। कथा में तो मुख्यपात्र का वर्णन होता है, परंतु किसी एक की कथा से दूसरे की कथा कहने लगे तो वह गाथा होती है। लोक गाथाओं को इतिहास लेखन का महत्वपूर्ण स्रोत माना जाना समुचित है। इतिहास के कुछेक अनछुए पक्ष इन लोक गाथाओं में निबद्ध हैं। भारतीय इतिहास के स्परूप, उद्देश्य एवं कालक्रम के पक्षों का विवरण लोकगाथाओं में भी उपलब्ध होता है।

हरियाणा के रण-बांकुरे जवानों की गौरवगाथाओं की तरह ही यहां की लोक गाथाएं भी लोक मानस को आह्लादित एवं आन्दोलित करने में पूरी तरह सक्षम हैं। इनकी परंपरा बड़ी पुष्ट एवं प्राचीन है। सर आर. सी. टेम्पल ने इन किस्सों या गाथाओं को अपनी पुस्तक 'दि लीजेंड्स ऑफ दि पंजाब' में 'लीजेंड्स' के नाम से संकलित किया है। डॉ. सत्येन्द्र ने इन गाथाओं को 'अवदान' की संज्ञा दी है। लोक गाथाओं के अनन्य अन्वेषक सर आर.सी. टेम्पल ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में हरियाणा (संयुक्त पंजाब) की लोक गाथाओं को क्रमशः छः चक्रों में इस प्रकार संजोया है– **1. रसालूचक्र 2. पाण्डव चक्र 3. गूगा चक्र 4. पूरन भक्त या धन्ना भक्त चक्र 5. सखी सरवर चक्र तथा 6. स्थानीय प्रवीर चक्र** (जिसमें किस्सा राव किशन गोपाल तथा हरफूल जूलाणी का

आदि आते हैं)।[4] हरियाणा की वीर गाथाओं में किसी वीरनायक के उत्साहपूर्वक एवं शौर्य संपन्न कार्यों का उल्लेख रहता है। कभी वह वीर-पुरुष अपनी संस्कृति के त्राणार्थ प्राणों की बाजी लगाता है, कभी अपने शत्रुओं से बदला लेता है। कभी किसी अबला के सतीत्व रक्षार्थ अपनी तलवार से प्रशस्ति लेख लिखता है। इन गाथाओं में ऐसे अवसर भी कम नहीं हैं, जहां अलौकिक वीरता का वर्णन ही गायक को अपेक्षित रहा है।

हरियाणा में बड़े-बड़े गीतों को 'राग' या 'किस्सा' नाम भी दिया जाता है, जो लोकगाथा ही हैं। हम भी इन शब्दों का प्रयोग इस आलेख में 'लोक-गाथा' के रूप में करेंगे। ये राग अथवा किस्से तीन कोटियों में मिलते हैं। प्रथम कोटि के राग (लोक-गाथा) वे हैं, जो भाट, चारण तथा डूमों (डोमों) द्वारा गाये जाते हैं, जिनमें स्थानीय राजाओं अथवा रईसों का वर्णन होता है। इनमें जातीय तत्व के साथ सामरिक शौर्य के बखान भी रहते हैं। दूसरे प्रकार के राग वे हैं, जिनको स्वांग के रूप में गाया जाता रहा है। इन स्वांगों में गीत और वार्ता दोनों अंश होते हैं। तीसरे प्रकार के वे राग हैं, जिन्हें भक्त अथवा पंडे गाते हैं। इन कोटियों से मिलती-जुलती दो श्रेणियां और भी हैं, इन्हें मिरासी या डूम अपनी मिरासन या डूमनी के साथ गाते फिरते हैं। ये लोग आनन्दोत्सव (पुत्र-जन्म विवाहादि) के अवसरों पर गाते हुए देखे जाते हैं। अन्य कोटि के गायकों में बेरूपिया या बहुरूपिया तथा भण्डेला हैं, जो छोटी जातियों के उत्सवों पर 'मंडली' बना कर गाते हैं। हरियाणा में जोगी लोग गोपीचन्द भरथरी, पूरन भगत, जसवंत तथा राव किशन गोपाल आदि के राग (किस्से, लोक गाथा) सारंगी बजाकर गाते हैं। कुछ गीत वाद्य-यन्त्र के बिना गाये जाने से अच्छे नहीं लगते हैं। होली के अवसर पर गायक-मंडली ढोल, ढप्प, नगाड़ा, झांज, घड़ियाल आदि बजाकर और नाचकर गाते हैं। कभी-कभी ग्रामीण लोग वाद्य-यन्त्र के अभाव में मूसल (या मोटा डंडा) आदि में घूंघरू बांधकर उसे जमीन पर खटका कर संगीत ध्वनि उत्पन्न करते हैं। कई बार चिमटा या हाथ की चुटकी से भी काम लिया जाता है।

हरियाणा में प्रचलित लोक-गाथाएं इस प्रदेश के इतिहास का शरीर और प्राण दोनों हैं। इनको यहां के लोक-साहित्य तथा इतिहास से अलग कर देने पर इतिहास तो बहुत ही रूखा-सुखा और निर्जीव-सा लगता है। हरियाणा की लोक-गाथाओं की बड़ी विशेषता है कि ये हमारे सामने जातीय संस्कृति का अनूठा एलबम खोलकर रख देती हैं। इनके द्वारा किसी युग विशेष की समस्त परंपराएं अपने स्वाभाविक क्रिया-कलाप में मुखरित हो उठती हैं। इनमें घटनाओं का सहज एवं गतिशील चित्रण तो होता ही है, इसके साथ ही यथार्थ जीवन भी रूपायित हो उठता है। इन्हीं लोक-गाथाओं के कारण यहां का इतिहास सजीव और गरिमामय अवस्था में अपना मस्तक उठाकर पाठकों के समक्ष उपस्थित रहता है।

हरियाणा को वीर-भूमि होने का गौरव प्राप्त है। कुरुक्षेत्र, पानीपत एवं तरावड़ी के रणक्षेत्र वीर सूरमाओं की गाथाओं का स्वर्णिम इतिहास सहेजे हुए हैं। आल्हा-उदल, भूरा-बादल, अमर सिंह राठौर, जयमल-पत्ता, हरफूल जाट जुलाणी का, वीर जवाहर, नाहर सिंह, राव किशन गोपाल तथा भाऊ की लूट आदि प्रमुख वीर गाथाएं इसकी पुष्टि करती हैं। वर्षाकाल की कुनकुनी रातों में आल्हा के बोल वैसे तो पूरे उत्तरी भारत में गूंजते हैं, किंतु हरियाणवी-आल्हा की अपनी शैली है। आल्हा के ओजस्वी स्वर हरियाणा के लोक-मानस को भाव-विभोर कर देते हैं। अल्हैत आल्हा-गायक व ढ़ोलक बजाकर ही आल्हा गाता है। गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है, ढोलक बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है। राग के बोलों के चरम शिखर पर पहुंचते ही ढोलक भी उसी प्रकार तीव्रता पर पहुंच जाती है। आल्हा के युद्ध वर्णन की एक बानगी देखें– *सन सन सन सन गोला छूट्टै धूम्मा आसमान छया जाय/ जिस योद्धा के गोला लाग्गै उसका पता भी चालै नाय/ दन दन दन दन गोली छूटै जोद्धा खूब भरै हुंकार/ भगदड़ माच्ची बैरी कै दल छपक छपक चालै तलवार/ खट खट खट खट खांडा करता तेग्गा मनन मनन मन्नाय/चलैं सरोही सर सर करती भाला सनन सनन सन्नाय।* हरियाणा में **किस्सा (लोक-गाथा) राव किशन गोपाल** एक ऐतिहासिक लोक राग है। ऐतिहासिक कहने का सीधा-सा यह तात्पर्य है कि इस लोक-राग में इतिहास की एक वास्तविक घटना का वर्णन हुआ है। यह घटना इतिहास के उस युग की बात है, जिसकी स्मृतियां अभी तक जनता के

हृदय पटल पर अंकित है और जिसके प्रमाण के लिए इतिहास के दस्तावेजों की आवश्यकता नहीं है। राव किशन गोपाल भारत माता के मस्तक पर लगे परतंत्रता के कलंक को मिटाने वाला हरियाणा का सर्वाग्रणी अहीर वीर था, उसके नेतृत्व में मेरठ में 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की रणभेरी बजी थी। अपने दल के 85 वीरों के प्रति किए गए अपमान एवं दण्ड विधान से राव किशन गोपाल की चिरगुप्त विद्रोह भावना को विस्फोट का अवसर मिला और वे प्रतिहिंसा के लिए समद्धत हो गए। उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि के द्वारा मेरठ की जनता और भारतीय सैनिकों को संगठित किया और 10 मई सन् 1857 को कई अंग्रेज अफसरों का वध कर डाला। एक उच्च सैनिक पदाधिकारी अंग्रेज बाटकिन घटनास्थल पर ही मार दिया गया और टिमले साहब जो एक नेत्र से हीन और साधारणतया 'काणा साहब' के नाम से प्रसिद्ध था छुपकर बच निकला। इस प्रकार मेरठ में भड़की स्वतंत्रता की वह चिंगारी दिल्ली पहुंची और फिर इसके स्फुलिंग समस्त भारत में विकीर्ण हो गये।[5] दिल्ली में स्वातंत्र्य का ज्योतिस्तम्भ स्थापित करके राव किशन गोपाल अपनी जन्म भूमि रिवाड़ी की ओर बढ़ा और मेवात के मोर्चे पर कर्नल फोर्ड को हराया। रिवाड़ी पहुंच कर वह अपने भाई रावराजा तुलाराम से मिला और भविष्य के लिए युद्ध की योजनाएं बनाई। तत्पश्चात उनका संघर्ष जनरल टिमले के साथ नारनौल के निकट नसीबपुर में हुआ। घोर युद्ध हुआ, जिसमें राव किशन गोपाल ने अपनी तलवार के प्रहार से उसके हाथी को काट डाला और फिर जनरल टिमले को भी मार दिया।[6]

उक्त लघुकाय लोक-राग में भारतीय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का सजीव चित्रण हुआ है। जिसे यहां की जनता लोक-गाथा के रूप में झूम-झूम कर गाती है– मेरठ में 22 रजवाड़े एकत्रित थे। वाटकिन साहब और टिमले साहब आदि बहत्तर बड़े-बड़े ऑफिसर बैठे थे। धर्म में अंग्रेजों का हस्तक्षेप देखकर नवाब हांसी (हरियाणा का एक क्षेत्र) ने प्रतिरोध किया, फलस्वरूप उसे प्राण दण्ड मिला।[7] *सूमरूँ साहब आपणा हरमाया तेरी। मेरठ का दबार में भरपूर कचैरी।। बाईस जवाड़ां का रजीदंड जड़ बैट्ठा केहरी। मुल्की जंगलाट ने बिच टोपी गेरी।। सुणियो, हिन्दू मुसलमान एक अर्जी मेरी। मालक तै उतस्या एकदीन क्यूं दोय बगेरी।। हिन्दू गंगा न्हावै करै दान है अकल अंधेरी। मुसलमान मक्का चलै मालक का बैरी।। थम दो दीनां का करो एक मैं इकरंग फेरी। हिन्दू तोड़ो गऊ का कारतूस है अरजी मेरी। मुस्ल तोड़ां सूर का कारतूस बिच टोपी गेरी।। जहाँ हिन्दू बैट्ठा मुस्लमान काया पड़गी बहरी। जुल्म करया अंगरेज नै क्या एक रंग फेरी।। मस्तक ले कलमा का मेट्टणिया नाहीं। हांसी के नवाब ने धर गल्ल सुणाई।। तु सुणिये हिन्द के बादसाह अंगरेज इलाही। आकै हिन्दुस्थान में बदी बुरी उठाई।। तेरा सिर काट्टै दल जोड़ कै कोई भूप सिपाही। सुण कै जिब अंगरेज कै अगनी लगे जाई।। यो गदबद गदबद करै कौन दो सूली लाई। मियां पकल्लिया जल्लाद नै कोई बोल्ला नाहीं।।*

इस पर राव किशन गोपाल को रोष आया। उसने अंग्रेज-नीति की निंदा की। उसके विद्रोह का ज्वालामुखी भभक उठा। रोष में प्रकम्पित होकर राव किशन गोपाल ने कहा– *कहता किशन गोपाल राव धर गल्ल सुणाई। सुणिये हिन्द के बादसाह अंगरेज इलाई।। तै आकै हिन्दुस्तान बदी बुरी उठाई। घंटा तोड़ी नखलऊ नवाबी ढाई।। भरतखंड में भरत पर मार कर दिया रिआई। कल दिल्ली का पकड्या बादसाह जहं का बेरा नाई।। आज तेरा झण्डा फरकै दीन पै बड़ा सुथरा स्याई। चमड़ा भर जमी लई थी कलकत्ता मांई। चमड़ा भर जमी लै के लिये किला रचाई। ना कोए मिलै तेरा दीन में राम दुहाई।। सैयद काले खां ने बीच बिचाव किया और विचार के लिए कुछ समय की मांग की- काले खां सय्यद खड़ा रहा अकल लड़ाई। सुणिये हिन्द के बादसाह अंगरेज इलाई।। योः बेटा जीवाराम का है बोदो नाहीं। थै का रेवाड़ी राज है बैठक ठकुराई। कहिए भतीजा तुलाराम रेवाडी मांही। अलोर दिल्ली नारनौल हीरवाल बसाई।। छत एक बसै सै मुलक एक कुछ बोदो नाहीं। हम नै आठ दिनां छुट्टी मिल जावां घर ताई। हम दिनां आठ में आ मिलां मेरठ के मांही। यारी एक बिल्लायत बसवायदां दिल्ली के मांही। हम मुखतैं तोड़ा कारतूस द्यां दीन बधाई।।*

आठ दिन का अवकाश दे दिया गया। भारतीय सरदारों ने संगठन की योजना बनाई और दरबार किया- *राव नै ठाय नमक की कांकरी लोटा में डारी। जै मैं थमने पीठ दयूं बीच किशन मुरारी।। समंद का उट्ठा पठान दिदारी।*

हाथ धरा कुराण पै बिच मक्का डारी।। रावजी जै मैं थम नै देगा दूयूं दोजग निजधारी। जंग बहादुर झाजरी बनगे करारी। एका हुया हिन्दू मुस्लमान का मेरठ दरबारी।। अब संगठित होकर, विद्रोह आरंभ किया और स्थानीय अंग्रेज अधिकारियों को असिधार पर उतार दिया– *हाथ जोड़ भटकन कहैं जवाब करारा। तू रेवाड़ी का राव जी धन म्हारा प्यारा।। राव जी इब कै हेले बक्स दे जीव हमारा। हम ना तुड़वावे कारतूस कहण हमारा। चौथाई दिल्ली करो राज, बण भाई म्हारा।। उन बी किशन गोपाल नै सूंत्या दुधारा। मारै मटकण लाट कै धड़ तैं सिर न्यारा।। बाजण लागी मिसरी तरवार कटारा। उल्टा हट हट कटै साहब सांग्यौं का मारा।। रंग बिरंग धरथरी कस्कों की बाड़ा। जिनका धड़ परतै सिर नूं पड़ै झड़ पड़ै अनारा।। कोठी में मारा साहब लोग इखत्तर सारा। एक काणा गया भाग दे निजर इसारा।। गंगा की नाली बड़ गया दे कै फटकारा। गंगा की धरै ध्यान रस जीव हमारा।।*

राव किशन गोपाल मेरठ से दिल्ली आया और फिर झज्जर के नवाब से भेंट लेकर रेवाड़ी पहुंचा। वहां युद्ध की तैयारी की और नसीबपुर का इतिहास-प्रसिद्ध मोर्चा जीता। इस मोर्चे पर फिर भगोड़ा जनरल टिमले मिला और उसकी अच्छी खबर ली :- *कहता किसन गोपाल राव धर गल्ल सुनाई। चाल्लो ढोसी न्हाण नै सोमोती आई।। या ढोसी का न्हाण सै कतल लड़ाई। जहं नै प्यारा घर लगै घर अपणै जाई।। जहं नै प्यारा किशन गोपाल राव लो तेग उठाई। मरदां खातर जंग बण्या ना लड़ैं लुगाई।। खप जाओगे रण खेत में है इचरज नाहीं। करो चढ़ाई जंग जनमी बार बार जन्मेगी नाहीं।। करनैले साहब झरनैल नै धर बिगल बजाई। बिगल दई थी कतल ल्हस्कर के मांही।। मेरी रामपरा की बणी सांग छड़ बणी कलाई। साढ़े सात सेर की मिसरी रख नै संगवाई।। होदा पै करनैल धर सुन्मुख पाई। सीस टूट नीचे पड़्या धड़ हौदा मांही। हात्थी घोड़ा साहब लोग नै दल पाट्टे न्यारा।। उनबी किशन गोपाल नै दिये बाग इसारा। हात्थी के सौई घोड़ा दे दिया दे कै किलकारा।। इब कित जागा लानंत का मारा। साढे सात सेर की मिसरी झोक्या दुधारा।। हात्थी के गैरे सूंड पै, सूंड तड़पे न्यारा। जैसे बोटा स्याल का कारीगर पाड्या।। हात्थी खड्या चिंघाड़े दल में ना चाल्लै चारा। दूजा गेरै साहब लोग पै धड़ तै सिर न्यारा।।*

ऐसे घोर युद्ध में स्वतंत्रता के दीवानों ने वह शौर्य दिखाया कि अंगरेज सेना का धैर्य ध्वस्त हो गया, स्वयं टिमले साहब भाग खड़े हुए और नसीबपुर के जोहड़ में दुर्योधन सदृश शरण ली, परंतु राव किशन गोपाल के प्रलयंकर प्रहार से वहां भी उस दुष्ट का बचाव न हो सका:- *टोपी साहब लोग की दे गई दिखाई। राव नै गैल हीं घोड़ा दे दिया नसीपर ताई।। कारण मड्या जंग तै चल्या भाग कुल लादी स्याई। बिण मार्यां छोडूं नहीं मन्ने राम दुहाई।। साहब मिटले उल्टा फिरकै देखता हूंणी चल आई। धर कै ठेका मारता जोहड़ा कै माही।। राव नै गैल हीं घोड़ा दे दिया जोहड़ के माहीं। साहब गोता खा कै देखता दिया सीस उड़ाई।।* टिमले साहब को यम का अतिथि बनाकर राव वापिस रण क्षेत्र में पहुंचा और अपने साथियों को युद्ध धर्म का उपदेश दियाः- *बोला किशन गोपाल राव भाई रामलाल। बौदा नै मत मरियो है जीव जंजाल।। बोदा लड़ै चून कै कारनै करैं निमक हलाल। तकलो टोपीवान नै जिन बैठे लाल।। मेरा जन मारा पातक कटै, कटै जीव जंजाल। रौवें विलायत मेम लोग मांचै कौलाट।।* राव अपने सैनिकों को युद्ध के लिए कैसे प्रेरित करते थे, राव किशन गोपाल की हुंकार का एक नमूना देखिए, जो अब लोक गीत में परिवर्तित हो चुकी हैः- *कदी दुनिया में रणधीर डर्‌या नहीं करदे। जिन नै सै नहीं मरणा आन्दा। उन नैं हर कोई डर दिखलान्दा। हरियाणा के वीर कदी डर्‌या नहीं करदे। मौत तैं डर्‌या करैं वे पापी। जिननै पाप करें हों काफी। माफी की याचना वीर कर्‌या नहीं करदे।* अंत में राव ने अपने पक्ष के वीरों को प्रोत्साहन दियाः- *तुम सिर की सांग बना लो छाती की ढाल। हिया करलो बज्जर का देह करो दिवाल। आज झगड़ा मंडग्या दीन पै चौदा की साल।।*

कृष्ण जन्माष्टमी से अगले दिन नवमी को 'गूगा नवमी' (गूगा नौमी) का उत्सव हरियाने में मनाया जाता है। **गूगा 'जाहरपीर'** के नाम से भी प्रसिद्ध है। गूगा का इतिवृत्त अंधकार में है। गूगा हिन्दू व मुसलमान दोनों जातियों द्वारा समान रूप से पूजा जाता है। हिन्दू गूगाबीर, गूगावीर अथवा गुरु गुग्गा कह कर इसकी पूजा करते हैं। मुसलमान इसे गूगापीर (संत गूगा अथवा जाहिर पीर) कह

कर पूजते हैं। वास्तव में गूगा राजपूत वंश विभूषण है, परंतु यह एक आश्चर्य है कि किस प्रकार चौहान वंशीय गूगा की वीर कथा पर मुसलमानी रंग का पैबन्द लग गया है। एक मत जो अधिक प्रचलित है, के अनुसार गोरखनाथजी ने रानी बादल को गूगल देकर पुत्र-जन्म का आशीर्वाद दिया और कहा कि- यह अवतारी पुत्र घर-घर पूजा जायेगा। इसी 'गूगल' से उत्पन्न होने के कारण पुत्र का नाम गूगा पड़ा। ऐसे विश्वासों एवं मान्यताओं के आधार पर आज भी नाम रखे जाते हैं। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का सुझाव है कि मध्यकाल में जो गायों (गौ) की रक्षा के लिए प्राण तक देते थे, वे गोगा कहलाते थे, और इस प्रकार वे गोग्रह (गौरक्षक) शब्द से (गौग्रह, गौग्गह, गागअ, गोग्गा, गोगा) इसका संबंध स्थापित करते हैं।[8] इस स्थापना में गूगा के चारित्रिक गुणों को मान्यता दी गई है। गूगा ने फिरोजशाह (द्वितीय) से असंख्य गौओं की रक्षा की थी, यह इतिहास प्रसिद्ध है। परंतु इस प्रकार का नाम गूगा का प्रारंभिक नाम नहीं हो सकता, वह तो पश्चात मिला प्रतीत होता है।

संत सिपाही गूगा के चारित्रिक आख्यानों के बिना हरियाने के लोग-राग अवश्य ही अधूरे रह जायेंगे। गूगा की पूजा हरियाने की सभी जातियों में मिलती है। गूगा की समस्त कथा में एक संदिग्ध सम्मिश्रण मिलता है। गूगा विषयक कथाओं का जो रूप उपलब्ध है, वह एक सम्प्रदाय (पंथ) के रूप में है। विशुद्ध धार्मिक भावना उसमें नहीं है। गूगा के उपासक उपास्य की न तो आध्यात्मिक अभिप्राय से पूजा करते हैं और न वे मुक्ति तथा निर्वाण की याचना करते हैं और न वे भगवत दर्शन की अभिलाषा से उसके दरबार में जाते हैं। उसकी समस्त मान्यता 'परचै' या याचना तक है। भक्तों को विश्वास है कि गूगा के प्रसाद से संतान एवं धन-धान्य में वृद्धि होती है। गूगा को 'जाहिर पीर' भी कहा जाता है, जिसका अभिप्राय यह होता है कि वह पीर जो अपनी कला व करामात प्रकट (जाहिर) दिखा दे और भक्तों को तत्काल 'परचा' (परिचय) दे दे उसे जाहर -पीर कहते हैं। कई विद्वान इसे जहरपीर कहते हैं अर्थात जहर (विष) का देवता। विश्वास है कि गूगा का सर्पों पर विशेष अधिकार है और उसके भक्त सर्पदंश से कभी पीड़ित नहीं होते हैं। एक मत में जाहर का संबंध, लड़ाकू योद्धा से जोड़कर योद्धावीर अर्थ किया जाता है। हरियाणा में किसी हठी एवं उदण्डी बालक को माताएं- 'अरे गूग्गा रहण दे' कहकर निषेध करती हैं। गूगा के चरित्र में भी अर्जुन की भांति 'न दैन्य न पलायन' दो विशेषताएं थी। परंतु यह भी रूपकात्मक चारित्रिक व्याख्या ही है, जो उसे सहसा नहीं मिली होगी। अतः 'गूगा' शब्द का इतिहास अभी अनुसंधेय ही बना है। गूगा की समस्त कथा एक संदिग्ध आवरण में छिपी है। इसमें ऐतिहासिक तथा धार्मिक तत्वों का अनोखा सम्मिश्रण मिलता है। वास्तव में गूगा चौहान राजपूत वंश विभूषण है। यह प्रसिद्ध है कि बीकानेर राज्य के अंतर्गत ददरेवा स्थान पर गूगा ने भू-समाधि ली थी। कथा है कि उसने अपने मौसेरे भाई अरजन और सुरजन द्वारा उसके वध के षड़यंत्र को असफल कर दिया था और दंड रूप उन दोनों को मार डाला था। इस अपकृत्य पर माता बाछल ने गूगा की भर्त्सना की और आदेश दिया कि वह मुख न दिखावे। इस से क्षुब्ध हो गूगा ने भू-माता से अपने में लीन कर लेने के लिए प्रार्थना की, पृथ्वी से प्रत्युत्तर मिला कि हिन्दू होने के कारण उसे भूगर्भवास नहीं मिलेगा, यदि ऐसी इच्छा है तो पहले इस्लाम में दीक्षित होना चाहिए। तदुपरांत गूगा ने अजमेर जाकर 'रतन हाजी' से कलमा सीखा और इस्लाम में दीक्षा ली। फिर 'मैड़ी' (गूगा मैड़ी) में आकर भू-लीन हो गया। मैड़ी बीकानेर राज्य के परगना नौहर का एक गांव है। यही मैड़ी गूगा का तीर्थ स्थान है।[9]

गूगा की पूजा के लिए मंदिर नहीं बनाए जाते, केवल मढ़ियां हैं, जिनमें कोई प्रतिमा नहीं होती। मन्डोर (जोधपुर) में एक मंदिर में अवश्य उनकी पाषाण-मूर्ति मिली है, जिसमें गूगा अपने लीले (घोड़े) के ऊपर सवार है और हाथ में भाला लिए है।[10] हरियाणा में गूगा मैड़ी जाल वृक्ष के नीचे बनाई जाती है। हरियाणा में प्रचलित एक गीत में आया है कि गूगा अपनी धर्मपत्नी सरियल की मर्यादा-रक्षा के लिए अपने मौसेरे भाइयों का वध करता हैः- *गूगो रै सुत्तो जाल तलै तमोट्टी ताण, वारी मेरा गोगा भल रहयो। सरयल निकली पाणी नूं, लेगी दोघड़ वाली मांट। अरजन सुत्तो जाल तले, वारी मेरा गूगा भल रहियो। सरजन सरवरिये की पाल, अरजन पकड्यो गूंगटो, सरजन छल्ले वाली नाथ। थम लागो मेरे देवर जेठ, राखो रे बहू की*

ल्हाज। सरियल गई गूगा के पास। थम सुत्या गोगा नींदडल्यां। लूट्टी ले री छल्ले वाली नार। वीर गूगा इस अमर्यादित दुष्कृत्य पर क्षुब्ध हो उठता है और उन दोनों भाइयों का वध कर देता है। अरजन नै मारया जाल तलै। सरजन नै सरवरिये की पाल। माता बाछल को जब इस घटना का पता चलता है, तो वह विह्वल हो जाती है :- *जुलम करया रे मेरा लाडेला, मारयो रे मौस्सी का पूत। मोद्दा पड़या बिलोवणा, छाछ बारी फिर फिर जा। परंतु सरियल को इस शौर्यपूर्ण घटना पर गर्व है, उसके अपमान का प्रतिकार हो गया है:- सुद्दा पड़या बिलोवणा, छाछवारी भर भर जा। वारी मेरा सायर भल रहियो।*

माता की भर्त्सना पर गूगा आत्म-बलिदान देता है और भूगर्भ में समाधि लेता है। माता को पुत्र के इस गंभीर निश्चय पर आत्मग्लानि होती है, पश्चाताप होता है और वह पुत्र से कम से कम एक बार वापिस लौटने की इच्छा व्यक्त करती है। वह प्रतिवर्ष भाद्रपद कृष्ण नवमी को आता है। हरियाणा में कृष्ण जन्माष्टमी से अगले दिन नवमी को 'गूगा नवमी' का उत्सव मनाया जाता है। इस वृत्त को लेकर एक गीत हरियाणा के भक्तों का कंठा भरण बना हुआ है :- *लीला सा घोड़ा गोरा गाबरू धरती में गया समाय, जा राणां एक बर घर आ। धरती माता लेखा मांगे के हिन्दु के मुस्लमान, जा राणां एक बर घर आ। आज लग तो मेरा हिन्दु जनम था,आज हुआ मस्लमान, जा राणां एक बर घर आ। परसां में तेरा बाबल जिखै कित गया बैठनहार,जा राणां एक बर घर आ। तो मत जिखै बाबल मेरा मैं आऊंगा बैठनहार, जा राणां एक बर घर आ। रसोई में तेरी माता जिखै कित गया जीमनहार, जा राणां एक बर घर आ। तू मत जिखै मायड़ मेरी मैं आऊंगा जीमनहार, जा राणां एक बर घर आ। सासरिये तेरी बाहण जिखै देख जिठानी का बीर, तूं मत जिखै बाहण मेरी आउँगा तेरो लेनीहार, जा राणां एक बर घर आ। पीहरिये तेरी गोरी जिखै देख बाहण का रावय, जा राणां एक बर घर आ। तूं मत जिखै गोरी मेरी मैं आउँगा तेरा लैनीहार, जा राणां एक बर घर आ। साढ़ न आऊं, सामण न आऊं, भादवे मास। सातम ना आऊं आठ्यम ना आऊं आऊंगा नोमी की रात।*

गूगा हरियाणा अथवा बागड़ का सर्वप्रिय नेता रहा है। उसकी यह प्रसिद्धि एक स्थान पर इस प्रकार व्यक्त की गई है :- *'गूगा मरग्गा सतम गुजरग्या बागड़ पड़ग्या सोग।'* एक अन्य गीत में नाटकीय दुःखांत परिस्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है। गूगा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नित्यशः लौटता है। सरियल को उसकी उपस्थिति का विशेष सुख है, परंतु दुर्दैव विपाक से श्रावण की हरियाली तीज उसके लिए वज्र तीज बनकर आई है। उस दिन विवश होकर वह सास को रहस्योद्घाटन करती है और सदैव के लिए विरह वियुक्ता बन कर रह जाती है– *आम की डाली पड़ी ए पंजाली झूलन आवैं रनवास मियां। सासू तो झूलै री वाकी बहूएं लखावैं लोग करैं चरचा मियां। उठ उठ मूंगा बांदी महलां में जइये सिरयल हाल बुलाय मियां। बागां तैं उठ के बांदी महलां में आई, उठो उठो रानी बागां में चालियों बाछल रहीए बुलाय मियां। कहो तो बांदी मेरी सबरंग पहरूं पचरंग पहरूं कहो तो चालूं मैले भेस मियां। हम के जाणौ रानी पंचरंग पहरो सबरंग पहरो हम के जाणे मैले भेस मियां। बाल बाल ते मूंगा मोती पिरौवे माथै में बिन्दी नैनों में स्याही मुखड़े में बिड़ला लाय मियां। हरी हरी चुड़ियां अनबट बिछुआ भर लिया सोलह सिंगार मिंया। महलां से चली रानी बागां में आई पछवा तै परवा सारा पवन चलै ही मुख तैं तो उड़ो है रुमाल मियां। वा रनवासे में चरचा चली है यो कैसो रांडा का भेस मियां। बागां में जाओ बांदी संट्टी ल्याओ मार उधेड़ या की खाल मियां। चढ़ती पंजाली सास कुछ मत कहिए में लीजै समझाय मियां। वहां की तो चली रानी महलां में आई, खुंट्टी धरो तो रानी चाबूक उतारो मार उधेड़ी तन की खाल मियां। तेरे तो लेखै सासू मरबी गये हैं, चले बी गये हैं मेरे तो आवैं नित राज मियां। अब कै तो आवै बहू हमे री बताओ कोई तनक सूरत दिखाय मियां। आधी सी रात अर झुकी है अंधेरी कोई बाहर आये हैं मठार मियां। और दिनां तो दिवला बले हे आज कैसे घोर अंधेर मिंयां। और दिनां तो रानी हंसी बी खुसी ही न्हाई धोई आज कैसो मैलो भेस मियां। अम्मा तुम्हारी रे सास हमारी मार उधेड़ी तन की खाल मियां। दिन निकला जब चिड़िया चौकी कोई जाहर हुए घोड़ै अस्वार मियां। सोवे कै जागे री मेरी बैरन सासू महलां के चोर भागे जाय मियां। खड़ा तो रहिए रै मेरे दूधां तै पाले गोद खिलाये कोई तनक सुरत दिखाय मियां। पीछे तो फिर कै देख मेरी माता महलां में लग रही*

आग मियां। महलां की आग बैठा जलसूं बुझैगी मायड़ की लोभन आग मियां। सासू देखन लागी कोई घोड़े सेत्ती गये हैं समाय मियां। हम सू बी खोया सासू! आप सू बी खोया चले गये हैं हाय मियां।

गूगा की पूजा पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दूर-दूर तक प्रचलित है। हरियाणा में उसके विषय में जो कथाएं मिलती हैं, उसका निष्कर्ष इस प्रकार है :- 1.गूगा चौहान राजपूत थे। उसका गोत्र चौहान था। 2.उसके पिता का नाम जेवर सिंह था।[11] 3.इनकी माता का नाम बाछलदे था।[12] 4.गढ़ ददरेवा (ददेरा) उनका जन्म-स्थान था, जो बीकानेर राजन्तर्गत है और सिरसा (हरियाणा) से 50 मील दूर है। बीकानेर राज्य को आगड़ कहा जाता है। बागड़ शब्द गुजराती भाषा के 'बगड़ा' से मिलता हुआ है, जिसका अर्थ जंगल है। 5.मेड़ी गांव में जो गूगा मैड़ी के नाम से विख्यात है, उन्होंने यहीं भूमि समाधि ली थी। मैड़ी में जाल वृक्ष की महत्ता होती है। कथन प्रचलित है 'गूगा सूत्या जाल तलै'। 6.इनके दो मौसेरे भाई थे, जिनके नाम है अर्जन-सर्जन। उनकी माता का नाम काछल था।[13] 7.सम्पत्ति के लिए झगड़ा हुआ। ये दोनों दिल्ली के बादशाह से जाकर मिले और उसे बागड़ पर चढ़ा लाये। युद्ध हुआ, अर्जन-सर्जन मारे गए। 8. मौसेरे भाईयों की मृत्यु से माता बाछल रुष्ट हो गई। अर्जन-सर्जन की माता काछल, बाछल की बहिन थी। 9.माता के धिक्कारने से गूगा ने भू-समाधि ली। 10.लीला घोड़ा जो गूगा के साथ जन्मा था। दोनों ने एक ही दिन समाधि ली। 11.गूगा अर्ध रात्रि के समय घोड़ पर चढ़कर अपनी पत्नी सरियल से मिलने आता था। 12.गूगा में सर्पदंश को अच्छा करने की अद्भुत शक्ति है। 13.गूगा को हिन्दू-मुसलमान दोनों पूजते हैं। 14.भाद्र पद कृष्ण नौमी इसकी पूजा का विशेष दिन है। 15.गूगा के पांच साथी हैं- लीला (लीला घोड़ा), नरसिंह पांडे, भज्जु चमार, रतन सिंह भंगी और वह स्वयं, ये सब पंचपीर कहलाते हैं। किंवदन्ती है कि गूगल से ही इन पांचों का जन्म हुआ था।[14]

उपरोक्त संक्षिप्त परिचय सहित गूगा कथा की जो रूपरेखा है, उसके आधार पर गूगा के जीवन में दो घटनाऐं सभी का विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं। एक गूगा के विवाह की तथा दूसरी अरजन-सरजन और दिल्ली बादशाह के साथ युद्ध की। इन घटनाओं को आधार मानकर गूगा विषयक प्रचलित रागों के साहित्यिक एवं आनुष्ठानिक दोनों रूप मिलते हैं। सर आर.सी. टेम्पल ने इस राग का साहित्यिक रूप अपने संग्रह 'दि लीजेन्ड्स ऑफ दि पंजाब' के प्रथम अध्याय में पृष्ठ-121 पर दिया है। इसका रूप स्वांग का है। गूगा ने अपने जीवन में अनेक दिव्यतापूर्ण कार्य किये थे। इन्हीं अलौकिक कृत्यों के कारण उसकी 'धोक' (पूजा) चली और 'जात लगने लगी' और 'पीर' की उपाधि भी गूगा को ऐसे ही कारणों से मिली है। एक नौश्लोकी गुटका में, जिसमें गूगा की कथा संक्षेप में वर्णित है, अंतिम चरण इस प्रकार आता है, *'जाहर-पीर मरद अवतारी जगजीत पीरी पाई।'* वास्तव में दुष्ट संहारने से गूगा को पीरी प्राप्त हुई है। गूगा के 'साके' में भी 'पीर' शब्द अवतार अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गूगा को जब 'शाही हमले' की सूचना मिलती है, तो वह त्रिलोकीनाथ के यहां अरज करता है और पूर्व-युगों की भांति 'वीरत्व' मांगता है। पहले पैरे बण्या पीर मैं, परत पाल नां पाया। दूजे पैरे वण्या पीर मैं परसराम कुह्वाया। तीजे पैरे बण्या पीर मैं जलमेधा कै भंवर जहार जलम ले आया। चारूं जुग में सम्बत कर दे सरण तुम्हारी आया। वीरत्व के कारण ही गूगा ने इतिहास में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया। इतिहास साक्षी है कि गूगा ने मध्य युग में आततायी यवनों से लोहा लिया और बागड़ देश को उनके भीषण आक्रमण से बचाया। 'दि लीजेंड्स ऑफ दि पंजाब' में सर आर.सी. टेम्पल ने लिखा है कि 'गूगा एक हिन्दू है और यह चौहान राजपूतों का नेता है, जिसने 1000 ईस्वी में महमूद गजनी को रोका था।' इसका घर बीकानेर राज्य था।[15] सिरसा से प्राप्त एक वर्णन में आता है कि गूगा की ख्याति मुगल सम्राट औरंगजेब के समय 1659-1707 ई. में व्याप्त थी।[16] एक अन्य मत के अनुसार गूगा हरियाणा के चौहान राजपूत थे। सन् 1353 में दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह द्वितीय के सेनापति अबूबकर से युद्ध करके वीरगति को प्राप्त हुए। वीर पुंगव संत योद्धा 'गूगावीर' के पराक्रमपूर्ण उदात्त चरित्र का जो मान हरियाणा की जनता के हृदय में है, वह कथन की वस्तु नहीं है। इस वीर-पुरुष ने हरियाणा की लोक-गाथा को सदैव गरिमा प्रदान की है।

भूरा बादल की लोक-गाथा भी वीर रस से ओत-

प्रोत है। जब राणा रत्नसेन (चित्तौड़) को धोखे से अलाउद्दीन खिलजी बंदी बना लेता है, महारानी पद्मावत सहायता के लिए अपने देवर भूरा-बादल की हवेली पर जाकर गुहार करती है। किंतु पारिवारिक द्वेष के कारण भूरा उसे टका-सा जवाब दे देता है। यह सुनकर भूरे की रानी का खून खौल उठता है, वह अपने पति को खूब फटकारती-धिक्कारती है:- *भूरे-बादल की कामनी बोली पटराणी, राजा तेरी मां रांड नै आण के लंच अमल कमाई। किसे गलिहारे के बीच मैं जा ठोकर खाई। तू बिन्द नहीं राजपूतनी का कितै लादी स्याही। सिर की पगड़ी तार दे दे हड़ खाई। मैं लड़ूंगी फौज में हट्टण की नाहीं। मारूं गौरी बादशाह छोड़ण की नाहीं। जिनकी बीर लड़ैगी फौज में उनका जीतव नाहीं।* तभी भूरे की वीर माता भी उसे इस तरह लताड़ती है :- *भूरे की माता बोलती सुण भूरा मेरा/ ये सोलह सौ पद्मनी तेरे खड़ी चौफेरा/ तनै देवर-देवर कह रहीं क्यों मुखड़ा फेरा/ रे राणी आंसु गेरै मोर ज्यों हिया लरजै मेरा/ तोड़ बगा दे कांगणा पकड़ो समसेरा/ गौरी शाह के दलां मैं रे ब्याह होज्या तेरा/ सांग्यां होज्या आरता तलवार्‌यां फेरा/ बैरी था तै के हुआ भाई था तेरा/ सेर गढ़ां के पकड़िए तूं रहा भगेरा/ तूं औढे नौ चून्दड़ी मन्ने दे दे चीरा/ मैं पडूं दलां मैं टूट के मार ठादूं ढेरा।* पत्नी और माता की डांट-फटकार से भूरे बादल का वीरत्व जागृत हो जाता है। युद्ध की योजना बनती है और धोखेबाज खिलजी को पाठ पढ़ाने के लिए धोखे का जाल रचा जाता है। सोलह सौ पालकियों में सजे वीर राजपूत पून्नादे (पूना माली) के गोफिया बजाते ही शत्रु सेना पर भूखे बाजों की तरह टूट पड़ते हैं :- *डोल्यां तैं कूदे सूरमे माईयां के लाल/ लोहा बाजै कड़ाकड़ तलवार कटार/ मारै कटारे तनां मैं उठै गरगाप/ को मार्‌या को मर गया खा-खा पछाड़/ सरफू काजी लिया मार, तम्बू कै बाहर/ कालर में सुर्खी न्यूं चलै सामण के खाल/ जैसे, दूध बिलौवे गूजरी मथुरा दरम्यान/ होली खेलैं कामनी रंग की छूटैं फुहार।*

हरियाणा का जातीय वीराख्यान **'हरफूल जाट जुलाणी वाला'** का हरफूल एक विशेष स्थान का अधिकारी है। इस वीर युवक ने गोमाता की रक्षा करते विधर्मियों की क्या-क्या खबर ली, यह उन श्रोताओं पर भली भांति व्यक्त है जिन्होंने 'हरफूल' गाते हुए जोगियों को सुना है। हरफूल सिंह का जन्म 1892-93 के लगभग गांव जुलाणी जिला-जीन्द (उस समय एक रियासत) में चौधरी रतना सहारण के घर हुआ। आज भी इस गांव की पहचान हरफूल जाट के नाम से है। हरफूल जाट के किस्से हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में घर-घर गाये जाते हैं। हरफूल ने टोहाना, गोहारना में चल रहे गऊओं की हत्या करने वाले हत्थे को तोड़ा था। हरफूल के बारे में यह प्रचलित है कि वह गरीबों का हमदर्द था। गऊ की हत्या के वह सख्त खिलाफ था। उसके चरित्र का उज्ज्वल पहलू यह था कि वह औरतों की अत्यधिक इज्जत करता था। सतायी गई महिलाओं की उसे बहुत रक्षा की। हरफूल ने मात्र 40 वर्ष की आयु में ही अपना नाम हरियाणा से बाहर राजस्थान व उत्तर प्रदेश तक में पहुंचा दिया था। पुलिस उसे कभी नहीं पकड़ पाई। उसके बन्दूक के निशाने के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह आवाज पर ही निशाना लगा देता था। वह सेना का एक बहादुर पूर्व वीर सैनिक था। सिवानामाल गांव में अपने घनिष्ट मित्र कांसू रांघड को खागड़ (बैल-सांड) को मारने पर उसकी हत्या करने का किस्सा अब भी प्रचलित है। हरफूल जाट इतना प्रसिद्ध हुआ है कि उसके जीवन पर कई वर्ष पहले एक सफल फिल्म बनी थी। आल्हा-साहित्य में उसकी जीवनी प्रकाशित हुई है। उसके किस्से गांव-गांव में आज भी गाए जाते हैं :- *नगर सुवाणा जीन्द रियासत मरदो सुनो लगाकर कान। केसू चन्दगी दो रांघड थे उनको हुआ बहुत अभिमान। एक बिजार बहुत सुन्दर जिसको देख भूख भग जाय। जब मुंह खेत में उनके मारा दोनो भाई गए रिसाय। दया न आई उन दुष्टों को उस बिजार को डाला मार।* जब यह समाचार गांव के जाट जमींदारों को मिला तो वह चन्दगी व केसू से मिले। परंतु रांघड़ भाईयों ने गांव की पंचायत को भी धमका दिया। निकटवर्ती कस्बा गोहाना में मीटिंग करके हरफूल जाट के पास संदेश भिजवाया गया :- *खबर सुनी हरफूल सिंह ने गुस्सा गया बदन में जाय। छोड़ बणी को चल पड़ा खूनी मन में वीर सोचता जाय। जहां खेत में हल जोते था चन्दगी रांघड़ बेपरवाय। रोटी लेकर केसू आ गया दोनों भाई मिले हर्षाय। सुमर कालका कलकत्ते की उसने दी पिस्तौल दबाय। मार कै गोली अब छाती फोड़ी केसू पड़ा जमीं पर जाय। देख तड़फते केसू को चन्दगी गया क्रोध में छाय। उठा कुल्हाड़ा चन्दगी दौड़ा*

उस नाहर पर दिया झुकाय। करा झड़ाका उस नाहर ने उस पर गोली दई दगा। पड़ जमीं पर चन्दगी तड़फे यहां से खूनी चला सिधार।[17]

आल्हा और ऊदल दो-भाईयों ने किस प्रकार चौहान पिथौरा से अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लोहा लिया, यह उत्तर भारत के लोग (आबाल-वृद्ध) सब आल्हा गायन के माध्यम से जानते हैं। आल्हा हरियाने की प्रमुख गाथा है। **'जयमल-फत्ता'** (चित्तौड़) दो भाइयों का शौर्य हरियाने के किस युवक का मस्तक गर्वोन्नत नहीं कर देता? वास्तव में हरियानी जनता का उत्साह अपनी सीमा तोड़ देता है, जब वे इन वीर बांकुड़ों की दर्पोचित उक्तियों को सुनते हैं। **'भाई का साका'** में भी वीर रस का रोंगटे खड़े कर देने वाला वर्णन हुआ है। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मूछैल मर्द भाऊ और अहमदशाह अब्दाली की कांटे की टक्कर गाथा-गायक के स्वरों में सजीव-सी हो उठती है। हरियाणा रागों की रंगभूमि है। यहां पर बड़े उत्तम-उत्तम राग जनता के कंठाभरण बने हुए हैं। **'निहालदे'** या 'निहाल देवी' उनमें से एक बड़ा रोचक एवं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक राग है। इसे इस प्रदेश का महाकाव्य कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। परंतु यह साहित्यिक महाकाव्यों की भांति लिखित नहीं है। यह तो अलिखित लोक-गाथा के रूप में लोक जिह्वा पर विराजता है। इसे रागी जोड़े के साथ सारंगी पर गाते हैं। प्रस्तुत आलेख के विस्तार के भय से यहां इसकी घटनाओं के विवरण को प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस लोकराग (लोक-गाथा) में लोक महाकाव्योपयोगी सभी तत्वों का बड़ी कुशलता से निर्वाह हुआ है।

इन शौर्यपूर्ण लोकगाथाओं का इस वीर प्रसवाभूमि में उतना ही प्रचार-प्रसार है, जितना तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का। इस प्रकार के अनेक वीर-रागों (लोक-गाथाओं) को ढोलक की थाप पर लोक-गायक तथा सारंगी की सरल तान के साथ हरियाणा के जोगी गाते आये हैं। परंतु अब खेदसहित कहना पड़ता है कि आधुनिकता के प्रभाव से यह अमूल्य निधि समाप्त होती जा रही है। जहां पहले सारंगी जैसे यंत्रों की मधुर मादक तान थी, वहां अब फिल्मी भौंडे गीतों का आकर्षण बढ़ता जा रहा है। ऐसे रागों, किस्सों, लोक-गाथाओं का भविष्य अंधकारमय है। अतः संस्थानों, अकादमियों, साहित्यकारों, लोक-गायकों का दायित्व बनता है, इस अमूल्य निधि को संरक्षण प्रदान करें। समय रहते इसका संरक्षण कर लेना आवश्यक है।

संदर्भ

1. निरुक्त 4-6 की व्याख्या। **2.**शर्मा डॉ. पूर्णचन्द, हरियाणवी साहित्य और संस्कृति, हरियाणा साहित्य अकादमी, चन्डीगढ़, पृष्ठ-74। **3.** परररस्कर गृह्य सूत्र काण्ड-1, कण्डिका 7 तथा आश्वलायन गृह्यसूत्र 1-15। **4.** सर आर.सी.टेम्पल, दि लीजेंड्स ऑव दि पंजाब, प्रथम भाग, पृष्ठ-12 भूमिका। **5.** यादव डॉ. शंकरलाल, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ-310। **6.** यादव डॉ. शंकरलाल, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ-310। **7.** यादव डॉ. शंकरलाल, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ-310। **8.** भारतीय साहित्य, अंक अप्रिल, 1956, पृष्ठ-32। **9.** यादव डॉ. शंकरलाल, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ-298। **10.** 'लीले घोड़े के असवार गूगा' की चित्रलिपि कर्नल टॉड द्वारा रचित पुस्तक 'राजस्थान' के पृष्ठ-448 पर दी हुई है। **11.** कर्नल टॉड ने इनके पिता का नाम बछराज दिया है। महाकवि सूर्यमल ने इनके पिता का नाम राजा भीम दिया है, परंतु हरियाणा की समस्त कहानियों में गूगा के पिता का नाम जेवरसिंह चौहान ही आया है। **12.** महाकवि सूर्यमल ने गूगा की माता का नाम 'मति' दिया है। संदर्भ - 'भारतीय साहित्य' पृष्ठ-62। **13.** बाछल गोरखनाथ जी की सेवा किया करती थी। फल देने के समय उसकी बहन काछल जाकर धोखे से फल ले आई। जब गोरखनाथ को इस प्रवंचना का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने श्राप दे दिया कि पुत्र होते ही काछल मर जायेगी और उसके पुत्र केवल 12 वर्ष तक जीवित रहेंगे। **14.** यादव डॉ. शंकरलाल, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृष्ठ-297। **15.** सर आर. सी. टेम्पल, दि लीजेंड्स ऑव दि पंजाब, प्रथम खण्ड, पृष्ठ-121।**16.** ग्लौसरी ऑव दि पंजाब एण्ड एन. डब्ल्यू. एफ. पी. ट्राईब्स, प्रथम भाग, पृष्ठ-178। **17.** बणजारा मिट्ठन लाल, हरफूल सिंह जाट जुलाणी का, अग्रवाल बुक डिपो, दिल्ली, पृष्ठ 35-38।

❑❑

श्री अंगिरा शोध संस्थान, 419/3, शान्ति नगर, पटियाला चौक, जीन्द-126102 (हरि.), मो. 09416387432

[आचार्य चतुरसेन ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'सोमनाथ महालय' में गूगा या गोगा को 'घोघा बापा' लिखकर एक पूरा परिच्छेद लिखा है जिसमें घोघा बापा द्वारा, सोमनाथ मंदिर (गुजरात) को लूटने जा रहे महमूद गजनवी से लोहा लेकर आत्मोत्सर्ग का हृदयस्पर्शी वर्णन है। **-सम्पादक**]

लोकोक्ति : रचना और अभिव्यक्ति

डॉ. नीतू परिहार

लोकसाहित्य लोक अर्थात समाज की सृष्टि है। लोगों की जुबान पर रचा गया, लोगों की जुबान से प्रचारित।[1] लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना या अहंकार से शून्य है और जो परंपरा-प्रवाह में जीवित रहता है।[2] भारतीय समाज के जन-जीवन को जानने-समझने के लिए लोकसाहित्य अर्थात लोकगाथा, लोकगीत, लोकोक्ति आदि महत्वपूर्ण उपादान हैं। लोक-साहित्य के अंतर्गत लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा के अतिरिक्त कहावतें और मुहावरों का समावेश भी किया जाता है। डॉ. कन्हैयालाल सहल ने राजस्थानी लोकोक्तियों और मुहावरों पर शोध-प्रबंध लिखा था। लोकोक्तियों और मुहावरों में लोकतत्व काम करते हैं। लोकसाहित्य के अध्ययन के लिए लोक तत्त्वों का संधान आवश्यक है। बिना लोकतत्वों को आधार बनाये लोकसाहित्य पर लिखना संगत नहीं लगता। हिंदी में डॉ. सत्येन्द्र ने लोकसाहित्य के अध्ययन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए लोकसाहित्य पर ग्रंथ का प्रणयन किया। इस ग्रंथ में आत्मशीलता, टोना विचारणा, आनुष्ठानिक विचारणा आदि को लोकतत्व के अंतर्गत परिगणित किया गया है। मोटिफ (डवजर्पा) भी लोकसाहित्य के निर्माण का महत्वपूर्ण अंग है। यहां हम लोकसाहित्य की एक विधा 'लोकोक्ति' को लेकर चर्चा करेंगे।

लोकोक्तियां, जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है लोक की उक्तियां हैं। लोक जो अनुभव करता है वह अनुभव उसकी अनुभूति की आंच में पक कर उक्ति के रूप में व्यक्त होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि लोकोक्ति वास्तविक घटना पर आधारित होती है। कालांतर में इसका व्यक्ति पक्ष तिरोहित हो जाता है और मूल तत्व सामान्य सत्य बन कर लोकोक्ति का रूप धारण कर लेता है। अगर हम अभिनव गुप्त के शब्दों में कहें तो लोकोक्ति में शब्द और अर्थ का भावकत्व होता है। लोकोक्तियां मानवी ज्ञान का सार हैं। ये मर्म को स्पष्ट करती हैं और थोड़े में ही बहुत कह देने की सूत्र प्रणाली को साधारण लोक में बनाए हुए हैं।[3] अतएव लोकोक्तियों का अध्ययन लोक साहित्य की एक विधा के रूप में उसकी सामाजिकता के आधार पर किया जाना चाहिए। इन दोनों ही पक्षों की दृष्टि से कतिपय लोकोक्तियों का विवेचन इस आलेख में प्रस्तुत किया जा रहा है। इनसे सिद्ध हो जाता है कि लोकोक्तियां एक ओर लोक-मानस की अभिव्यक्ति हैं और दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ की साक्षी। इस दृष्टि से कुछ राजस्थानी लोकोक्तियों का विवेचन प्रस्तुत है।

ठाकर गुडाळ्यां ई चालै, पगां ई चालै।[4] (ठाकुर घुटनों के बल भी चलते हैं, पांवों पर भी चलते हैं) : इस लोकोक्ति की पृष्ठभूमि में एक लम्बा प्रसंग है–किसी गांव के ठाकुर की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई तो बाजरी की खड़ी फसल से सिट्टे, ककड़ियां और मतीरे रात के समय चुरा लाता था। तिस पर शराब के नशे में उसे अपनी मर्यादा का कोई ख्याल नहीं रहता था। खेत के मालिक चौधरी (जाट) को पता चलने पर वह ठाकुर को हाथों-हाथ विनम्रता-पूर्वक उलाहना

देना चाहता था कि आप तो हमारे रक्षक हैं, यदि आप ही भक्षक बन जायें तो हम कहां फरियाद करें! परंतु वह उसे रंगे हाथों पकड़ना चाहता था। एक दिन चांदनी रात को उसकी मनचीती हुई। ठाकुर घुटनों के बल चलता हुआ खेत में ककड़ियां और मतीरे तोड़ रहा था, कभी पांवों पर चलते-चलते सिट्टे भी तोड़ लेता। जब ठाकुर घुटनों के बल चल रहा था तो चौधरी ने जोर से ललकारा--कौन है, जरा सामने तो आ? ठाकुर झिझककर खड़ा हुआ। पांवों पर चलता हुआ रुआब से बोला, 'यह तो मैं ठाकुर हूं, मतीरे की मन में आ गई तो चला अया।' चौधरी ने अनजान बनते कहा, 'मैं तो घुटनों के बल चलने वाला बच्चा ही समझ रहा था, आप तो पांवों पर चल रहे हैं। हमारे मालिक हैं, मुझे ही आदेश भिजवा देते, टोकरी भरकर हाजिर कर देता, मैंने होश खो दिया होता और घुटनों के बल चलता बच्चा समझ पत्थर मार बैठता, मेरा तो मरण हो जाता'।

ठाकुर का नशा काफी उड़ गया था। झेंपते हुए बात को संवारना चाहा, 'अरे हम तो लीला रच रहे थे, हम कृष्ण-भगवान के ही तो वंशज हैं, वे माखन चोर थे तो हम ककड़ी चोर हैं, सिट्टे-चोर हैं, पर यह चोरी नहीं लीला है, समझा?' चौधरी बोला, 'समझ गया मालिक, मैं तो फकत खेती करना जानता हूं, लीला-फीला नहीं जानता, आप बड़े आदमियों की बातें ही अलग हैं, जब चाहें घुटनों के बल चलने लगते हैं जब चाहें पैरों पर चलने लगते हैं और जब इच्छा हो दौड़ने लग जाते हैं, अब जरा गढ़ के परकोटे तक दौड़कर बताएं तो जानूं कि आप सचमुच लीला कर रहे हैं।' ठाकुर बच्चे की नाईं मुट्ठियों में में थूककर चौधरी के खेत से सरपट दौड़ पड़ा, पीछे मुड़कर तक नहीं देखा। शास्त्र में जिसे साधारणीकरण कहते हैं उसका श्रेष्ठ प्रतिमान इस लोकोक्ति में उपलब्ध होता है। यहां जो कथा दी गयी है, उसको गहराई से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ठाकुर, ठाकुर नहीं रहता, ककड़ियां मतीरे और सिट्टे भी वैसे कुछ नहीं रहते बल्कि पूरे परिवेश का साधारणीकरण होकर इसका अर्थ हो जाता है कि कोई बड़ा आदमी अपने अनुचित कामों का भी औचित्य सिद्ध कर देता है, चाहे वह हास्यास्पद हो जाये, तब इस लोकोक्ति का प्रयोग किया जाता है। तब यह घटना विशेष से जुड़कर नहीं, व्यक्ति विशेष से जुड़ी रहकर ही नहीं लोक की संपत्ति हो जाती है और लोक साहित्य की वक्रोक्ति हो जाती है।

दुनियां में आधै पांणी न्याव हुवै[5] (दुनिया में आधे पानी न्याय होता है) : एक दूध बेचने वाली गोसिन पास की बड़ी बस्ती में दूध बेचकर वापस अपने गांव लौटते समय तालाब के ऐन किनारे बैठती और दूध का बर्तन मांजकर साफ करती। एक दिन पैसों की थैली बाजू में रखकर बर्तन साफ करने में मग्न थी कि जामुन के पेड़ से उतरकर एक शरारती बंदर उसकी थैली उठाकर ऊंची डाल पर बैठ गया। निगाह उसकी गोसिन की ओर ही लगी थी। गोसिन बर्तन साफ करके उठने लगी तो थैली नजर नहीं आई। बंदर के पद-चिह्न देखकर तुरंत पहचान गई कि हो-न-हो कोई बंदर ही थैली उठाकर ले गया है। गौर से ऊपर देखा तो शरारती बंदर के हाथ में थैली लटक रही थी। वह थैली का मुंह खोलकर कभी-कभार उस में झांक भी लेता। गोसिन ने हाथ जोड़कर डबडबाई आंखों से चिरौरी की तो बंदर का दिल पसीज गया। उसने थैली में हाथ डालकर एक पैसा गोसिन के पास फेंका और दूसरा तालाब के पानी में, काफी दूर। इस तरह उसने आधे पैसे पानी में फेक दिये और आधे गोसिन को लौटा दिये। गोसिन आश्चर्यचकित होकर बंदर की ओर एकटक देखती रही। वह दूध पानी मिलाकर बेचती थी, बंदर ने आधे पानी न्याय किया। पानी के पैसे पानी में और दूध के पैसे गोसिन के हवाले।

यह वस्तुतः लोकमानसिकता को व्यक्त करने वाली लोकोक्ति है। लोक साहित्य के अध्येता प्रो. कृष्ण कुमार शर्मा ने अपने शोध प्रबंध में कहा है कि 'लोकमानस मूलतः आदर्श प्रिय होता है।' यह लोकोक्तिउसी सत्य का प्रमाण है। बेईमानी कभी फलती नहीं है। ईमानदासी से जितना कर्म किया जाएगा फल भी उतना ही मिलेगा। यदि कर्म में छल हो गया तो छल के अनुपात में कर्म की उपलब्धि भी कम हो जाएगी। इसी संदर्भ में यह लोकोक्ति है। कभी ऐसा घटनाक्रम वास्तव में हुआ होगा या यह लोक कथाकार की आदर्श कल्पना भी हो सकती है। जो हो यह लोकोक्ति लोक मानसिक प्रवृत्ति की परिचायिका है।

राई का भाव रात गया[6] एक दूकानदार अपने घर पर सोया हुआ था, पास की चारपाई पर उसकी पत्नी सोई हुई थी। घर में चोर घुस गया। बनिये ने सोचा, लड़ने की अपनी हिम्मत नहीं, और कोई उपाय नहीं, इसलिए इसे चकमा देना चाहिए। तब पत्नी से बातचीत शुरू की। पति ने पूछा-आज मैं जो राई लाया था उसे सम्हाल कर रखा है न? पत्नी ने उत्तर दिया 'हां, कोठड़ी में जो टांड है, उस पर रख दी है, किंतु यह तो बताइये, आज आप बराबर राई का रट क्यों लगाये हुए हैं?' पति ने कहा, जोर से मत बोल, कोई सुन लेगा, बात यह है कि राई से एक खास किस्म की दवा बनने लगी है और विदेश में इसकी बहुत मांग है, अनाप-शनाप दामों में बिक रही है, अपने गांव में आज तक किसी को पता नहीं था, कल यहां भी लोगों को मालूम हो जायगा और राई सोने से महंगी बिकेगी। चोर ने सोचा कि और चीजों के पीछे पड़ने से क्या? अपन तो राई ही ले चलें। यह सोच वह चुपचाप राई लेकर चला गया। दूकानदार मन-ही-मन हंसा कि पूत को खूब छकाया। दूसरे दिन वह चोर बाजार में राई बेचने गया तो बनियें ने राई का जो भाव था उसके अनुसार पैसे देने लगा तो चोर ने कहा, परंतु राई तो आज सोने के भाव बिकेगी, इस परउस दूकानदार ने कहा कि राई का वह भाव तो रात गया अर्थात सोने से महंगी राई तो रात को ही थी, अब राई का भाव वह नहीं रहा चोर अपनी मूर्खता पर पछताया और शर्मिन्दा होकर घर चला गया।

यह लोकोक्ति बनिये की वणिक बुद्धि और चोर की मूर्खता को व्यंजित करती है। यह भी कि कठिन परिस्थितियों में भी अगर व्यक्ति घबराता नहीं है, स्थिर बुद्धि से काम लेता है तो बिगड़ता हुआ काम भी रस्ते पर आ जाता है, अधिक हानि नहीं होती। इसमें यह संदेश निहित है कि आदमी को कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी विचलित न होकर चतुरता पूर्वक स्थिति का समाना करना चाहिए।

नाई हाळो ठोलो, बाणिया हाळो टक्को[7] : एक नाई किसी बनिये के यहां हजामत बनाने गया। जब वह हजामत बना चुका तो उसने बनिये की टाट (खोपड़ी) को एक बार अपनी अंगुली की ग्रन्थि से ठोला देकर बजाया। यद्यपि इससे बनिया मन-ही-मन रुष्ट तो बहुत हुआ तथापि उसने नाई को उसकी करतूत का फल चखाने के उद्देश्य से कृत्रिम हर्ष प्रकट किया और उसे एक टका दे दिया। वही नाई एक दिन किसी ठाकुर के यहां हजामत बनाने गया। ठोला मारने पर बनिये से पुरस्कार मिल जाने के कारण उसे हजामत के बाद टाट बजाने का चस्का पड़ गया था। इसलिए पुरस्कार के लिए लालायित होकर ठाकुर के सिर पर भी अंगुली की ग्रंथि से ठोला मार दिया। ठाकुर ने इसे अपना अपमान समझा और तुरंत ही तलवार हाथ में ले नाई का सिर धड़ से अलग कर दिया। इस प्रकार जब किसी को उसके कुकर्म की सजा दिलवाने के लिए कुछ प्रलोभन देकर कुमार्ग की ओर प्रवृत्त कर दिया जाता है, तब उक्त 'उक्ति' का प्रयोग किया जाता है। इस लोकोक्ति का आधार बनियें की जातीय विशेषता है। आपके साथ किसी ने कुछ बुरा किया और आप चाहते हैं उसे सजा मिले तो स्वयं सजा न देकर उसके बुरे कार्य को बढ़ावा दें, ताकि वह व्यक्ति अन्यत्र भी वैसा ही करे। जब वह किसी दमदार व्यक्ति के साथ वैसा करेगा तो उसे उसी तरह सजा भुगतनी पड़ेगी जिस प्रकार नाई को ठाकुर के सिर पर ठोला मारने से मिली। बनिये ने नाई को बढ़ावा दिया। नाई समझा मैं अच्छा करता हूं और बिना सोचे समझे उस मूर्ख ने ठाकुर के साथ भी वैसा किया और मारा गया।

गूगो बड़ो क राम, बड़ो तो है सो ही है पण सांपां सैं कुण बैर करै[8] : एक बार एक चौधरी (जाट) की पत्नी ने उससे पूछा, गूगा बड़ा या राम? उसने उत्तर दिया कि बड़ा तो जो है वही है अर्थात राम बड़ा है, किंतु यह कह कर कि राम बड़ा है, सांपों से कौन बैर बांधे? गूगा सापों का देवता समझा जाता है। उसके नाखुश होने पर सांप काटने का भय बना रहता है। अर्थात भयवश किसी सत्य बात को स्पष्टतः प्रकट न करना।

लोकोक्तियों में कभी-कभी मार्मिक-आनुभविक तथ्य उजागर हो जाते हैं। वास्तविक सत्य की तुलना में, प्रत्यक्ष हानिकारक से वैर करना, अल्प बुद्धि का परिचायक है। अप्रत्यक्ष कल्याणकारी तो कल्याण करने आएगा, जब आएगा परंतु प्रत्यक्ष हानिकारक तो चोट कर ही देगा। अतएव उससे बचना अधिक प्रासंगिक है। 'गोगा बड़ा

क राम' में राम अप्रत्यक्ष हैं, गुगो/सर्प प्रत्यक्ष है, हानि पहुंचा सकता है, इसलिए लोग भयवश सच कहना उचित नहीं समझते, यह लोकोक्ति आज की राजनीति पर सटीक बैठती है।

नौकर थारा हां क बैंगण का[9] : मालिक ने बैंगन की तरकारी खाई और उसे बहुत स्वादिष्ट लगी। उसने नौकर से सामने कहा 'बैंगन बहुत अच्छा होता है' नौकर ने चट हां भरी कि इसीलिये उसके सिर पर मुकुट धरा है। रात को मालिक का दुखा पेट तो सुबह उसने नौकर से कहा-'बैंगन तो बहुत बुरा होता है' नौकर ने चट उत्तर दिया, 'इसीलिए इसका बेगुन नाम धरा है!' मालिक ने कहा, 'रात तो तुम बैंगन की सराहना करते थे।' नौकर ने उत्तर दिया, 'नौकर थारा हां क बैंगण का?' अर्थात् नौकर आपका हूं या बैंगन का? उपर्युक्त कथन में लोकोक्ति का अंश तो 'नौकर थारां हां क बैंगण का' इतना ही है और सामान्य बातचीत में इसी का उपयोग भी होता है। नौकर मालिक की हां में हां मिलाता है, ठकुर सुहाती कहता है, मालिक ने बैंगन को अच्छा कहा तो उसने भी बैंगन के माथे पर मुकुट की बात कह दी, जब मालिक ने बैंगन को बुरा कहा तो उसने बैंगन को 'बे-गुन' (बिना गुण का) कह दिया। लोकक्ति में रचयिता अनपढ़ होते हुए भी लोक जीवन के सत्यों के व्यावहारिक कितने निकट होते हैं, यह लोकोक्ति इस कथन का प्रमाण है। डॉ. सत्येन्द्र[10] ने लोकोक्तियों के लिए कहा भी है कि 'बहुत सीधे-सादे शब्दों में लघुतम रूप में भावों को प्रकट करने की चेष्टा में व्यवहार दृष्टि से उपयोगी बनाने के लिए लाकोक्तियों का जन्म हुआ होगा।'

तू खत्राणी मैं पांडियो, तूं बेस्या मैं भांड, तेरे जिमाये मेरे जीमणै में पत्थर पड़ियो रै रांड[11] : एक बार एक वेश्या ने पुण्य लूटने के लोभ में एक ब्राह्मण को निमंत्रित करने का निश्चय किया। उसने अपने आप को खत्राणी (क्षत्राणी) के रूप में प्रकट किया। कोई ब्राह्मण तो उसके यहां गया नहीं। तब किसी भांड (बहुरुपिये) ने ब्राह्मण की वेशभूषा बनाकर उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। जब भांड भोजन कर चुका तो वेश्या को कुछ शक हुआ तो उसने पूछ लिया कि आप ब्राह्मण ही हो न? इस पर उस भांड ने कहा कि यदि तू खत्राणी है तो मैं ब्राह्मण हूं, यदि तू वेश्या है तो मैं भांड हूं। दो बराबर के अधम व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार पर यह उक्ति है। इसका समानार्थी रूप है-जैसे को तैसा मिला, कर कर लम्बे हाथ। वेश्या को ब्राह्मण जिमाना था, नहीं मिला। एक भांड ने यह स्थिति देखी तो ब्राह्मण बन कर आ बैठा, वेश्या खुश। किंतु अंत में उसने स्वयं कह दिया कि तू वेश्या है मैं भांड हूं। जैसी तू वैसा मैं। यह लौकिक सत्य है जिसके उदाहरण समाज में राशि-राशि मिल जाते हैं। कोई किसी को मूर्ख बनाने की चेष्टा करता है तो कोई दूसरा उसे मूर्ख बना देता है। लोकोक्तियां यथार्थ के अधिक निकट होती हैं। लोकसाहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में लोकोक्तियां, भाषा की समृद्धि में भी सहायक बनती हैं। भले ही लोकगाथा, लोकगीत उतने प्रासंगिक न रह जायें, पर लोकोक्ति प्रासंगिक बनी रहती हैं। लोकोक्तियों में लोक-मानस के विविध-पक्षों का साक्षात्कार किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. पियूष दईया (सं)-लोक, बांगला लोक साहित्य (लेखक-मानस मजुमदार), भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर 2002, पृ. 301। **2.** डॉ. सत्येन्द्र-लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, सं. 2006, पृ.15। **3.** डॉ. सत्येन्द्र-लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, द्वितीय संस्करण 2006, पृ.369। **4.** विजयदान देथा-राजस्थानी हिंदी कहावत कोश-3, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2003, पृ.1412। **5.** विजयदान देथा-राजस्थानी हिंदी कहावत कोश-3, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2003, पृ. 1647। **6.** कन्हैयालाल सहल-राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रंथागार, 5वां संस्करण, 2010, पृ.सं. 213। **7.** कन्हैयालाल सहल-राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रंथागार, 5वां सं., 2010, पृ.161। **8.** कन्हैयालाल सहल-राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रंथागार, 5वां संस्करण, 2010, पृ.सं. 111। **9.** कन्हैयालाल सहल- राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रंथागार, 5वां संस्करण, 2010 पृ.सं. 165। **10.** डॉ. सत्येन्द्र- लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, द्वितीय सं. 2006, पृ.373। **11.** कन्हैयालाल सहल-राजस्थानी कहावतें, राजस्थानी ग्रंथागार, पांचवां संस्करण, 2010, पृ.145।

❐❐

सहायक आचार्य (हिंदी)
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राजस्थान)

राजस्थान का सांस्कृतिक पर्व-गणगौर

पवन कुमार कल्ला

भारत में बहुभाषी और सांस्कृतिक भिन्नता अनेक प्रांतों में दृष्टिगत होती है। मौलिक सांस्कृतिक परिलब्धियां प्रत्येक प्रांत/क्षेत्र की निजी थाती है। लोक पर्व, उत्सव, परंपराएं सुदीर्घकाल से इन्द्रधनुषी रंगों में संपूर्ण भारत वर्ष में व्याप्त हैं। प्रत्येक अंचल की मौलिक विशेषता पर्व, त्यौहार, परंपराएं अपने मूल रूप में किसी षाडसी पर किये स्वर्णिम आभूषणों के शृंगार से कम नहीं लगती। राजस्थान का गणगौर पर्व भी मरु अंचल की निजी मौलिक विशेषता को उद्घाटित करता है।

नव वर्ष के प्रारंभ चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से चैत्र शुक्ल तृतीया तिथि तक गणगौर त्यौहार मनाया जाता है। गणगौर 'गण' और 'गौर' शब्दों से बना है। गण का शाब्दिक अर्थ समूह का सूचक होता है मगर राजस्थान में गण का अभिप्राय भगवान शिव से माना जाता है। गौर शब्द गौरी का बोध कराता है अर्थात् शिव-पत्नी पार्वती। कुंवारी लड़कियां भविष्य में अच्छा वर प्राप्त करने तथा विवाहिता अपने अखण्ड सुहाग की कामना पूर्ति हेतु गणगौर अर्थात् 'गवर' तथा 'ईसर' का पूजन करती है जो शिव पार्वती के प्रतीक हैं। एक अन्य कथानक में ईसर को ब्रह्माजी का पुत्र माना गया है तथा गौरी को ईसर की पत्नी एवं कान्हीराम तथा रोवण को ईसर के छोटे भाई- बहन माने गये हैं। इस कथानक में एक पात्र मालिन इन सबकी सेविका के रूप में जानी जाती है। यह सब लोक गीतों में द्रष्टव्य है।

राजस्थान में शिव-पार्वती प्रतीकार्थ में ही गण-गौर का पूजन होता है। गौर की काष्ठ-प्रतिमा पूजित की जाती है। उसे स्त्री रूप में तथा गण या ईसर को पुरुष में सजाया जाता है। सुन्दर आभूषणों और वस्त्रों से सुसस्जित गौर की प्रतिमा के एक हाथ में जंवारा तथा दूसरे हाथ में पंखी होती है। सार्वजनिक रूप से आदमकद प्रतिमाओं को लकड़ी के विशाल पाटों पर अवस्थित कर सुसज्जित किया जाता है और पूजन पश्चात उसके आगे जन-समूह मेले के रूप में आह्लादित अवस्था में, ढोल-नगाड़ों के बीच नृत्य-गीतों से पर्वोत्सव का आनंद उठाता है।

बीकानेर में गणगौर की काष्ठ प्रतिमाएं सुथार (खाती) व मथैरण जाति के लोग बड़े ही मनोयोग से बनाते हैं। ये प्रतिमाएं भी दो प्रकार से तैयार की जाती हैं, एक प्रकार की प्रतिमाएं तो वो होती हैं जिनमें संपूर्ण अंगों को उभारते हुए, पूर्ण शरीर की संरचना की जाती है दूसरी प्रकार की वो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं जिनमें गौर का शरीर नाभि तक ही दर्शाया जाता है, ये प्रतिमाएं मिट्टी की बनी होती हैं जबकि पहले प्रकार की प्रतिमाएं काष्ठ द्वारा निर्मित होती हैं।

चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को गणगौर का पूजन होली के बाद धुलंडी के दिन से आरंभ होता है और चैत्र-शुक्ल तृतीया को संपन्न होता है। इस दिन गढ़ या राजमहल से गौर या गवर की सवारी जुलूस के रूप में निकलती है और किसी निश्चित कूप या जलाशय तक जाती है, वहां

मेला लगता है। पूर्व राजघराने अभी भी इस परंपरा का पालन कर रहे हैं। राजस्थान में गणगौर पूजन में कुछ क्षेत्रीय भिन्नता भी है। बीकानेर में बहुत से घरों में छोटी-छोटी गौर प्रतिमाओं का पूजन होता है। कुंवारी लड़कियां प्रातःकाल समूह में इकट्ठा होकर घर की छत पर अथवा घर में खुले स्थान पर विभिन्न प्रकार की मिट्टी के मांडणे बनाती हुई, गणगौर के लोक-गीतों की स्वर लहरियां बिखेरती हैं। ये लोक-गीत पूर्व परंपरागत तथा आधुनिक तर्जों पर आधारित होते हैं। इन गीतों के दौरान सर्वप्रथम बालिकाएं 'गवर' माता से जागने का आग्रह करती हैं पश्चात् वे अपनी विनती सुनने की प्रार्थना करती हैं। लोकगीतों के बीच हंसी-ठिठोली के साथ भावी वर की कामना से आनंदित होकर भावी जीवन की कल्पनाएं बालिकाएं करती हैं। करीब घंटे भर तक किये जाने वाले गणगौर पूजन के दौरान लोकगीतों के माध्यम से बालिकाएं सुयोग्य वर की कामना के साथ-साथ, अन्न-समृद्धि, धन-समृद्धि, सामाजिक वैभव-समृद्धि की कामना करती हैं। इन गीतों के मध्य में अपने पिता को विष्णु, माता को लक्ष्मी, भाई को कृष्ण-कन्हैया तथा भाभी को राधा-रुक्मण सदृश, बालिकाएं बताती हैं। लोकगीतों के माध्यम से कुवारियां बहनोई सवारी वाला हो, ऐसी कामना भी करती हैं।

धुलण्डी के दिन से प्रारंभ हुआ गणगौर का पूजन प्रातःकाल तो अविरल चलता ही है मगर उसके बाद शीतलाष्टमी के दिन से उसके स्वरूप में और निखार आ जाता है। इस दिन से बालिकाएं सायंकाल आस-पड़ौस के मंदिर में समूह के रूप में इकट्ठा होकर दांतणिये देती हैं। 'दांतणिये' देने से अभिप्राय निमंत्रण देकर भित्ति-मांडणे अंकित करने से है यानि इस दिन से, पर्वोत्सव के समापन तक मंदिर की दीवारों पर अथवा पानी स्टैण्ड या कुएं आदि स्थान पर बालिकाएं विभिन्न रंगों की गुलाल से गणगौर तथा उसके परिवार से संबंधित आकृतियां अंकित करने के साथ-साथ लोकगीतों की स्वर लहरियां बिखेरती रहती हैं।

शीतलाष्टमी के ही दिन से ही बालिकाएं रात्रि समय में 'घुड़ला' घुमाती है। 'घुड़ला' घुमाने से अभिप्राय यह है कि मिट्टी का छोटा घड़ा, जिसमें बीच-बीच में छिद्र बने होते हैं तथा जिसके ऊपर मिट्टी का ढक्कन होता है, इसे 'घुड़ला' कहा जाता है। इस घड़ले या 'घुड़ले' में दीपक जलाकर रखा जाता है। इसे लेकर बालिकाओं का समूह गली-गली में, घर-घर जाकर 'घुड़लो घुमे छै जी, घुमे छै' गीत गाते हुए दस्तक देती हैं। घर वाले श्रद्धा के वशीभूत होकर उसे घुड़ले में सिक्के डालते हैं। इस प्रकार से अनेक घरों के आगे नित-प्रति रात्रिकालीन भ्रमण करने के पश्चात् बालिकाओं के पास अच्छी राशि एकत्रित हो जाती है जिसको वे पर्वोत्सव के समापन के बाद गोठ करने में व्यय करती हैं। इस प्रकार से शीतलाष्टमी से शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि तक प्रातः, संध्या तथा रात्रि के समय में गणगौर के गीतों की स्वर लहरियां चारों तरफ सुनने को मिलती हैं। गणगौर संपूर्ण राजस्थान का मुख्य त्यौहार है बावजूद इस पर्वोत्सव को मनाने के संबंध में राजस्थान में ही कहीं-कहीं भिन्नताएं पाई जाती हैं। गणगौर पूजन तो प्रातःकालीन पूरे प्रांत में होता है मगर 'दांतणिये देना' व 'घुड़ला-घुमाना' के संबंध में पूर्णतया समानता नहीं है।

शीतलाष्टमी के दिन ही होली की राख में महिलाएं गेहूं या बोती हैं और रोज सींचती हैं फिर पर्वोत्सव के अंतिम दिन इन जवारों को विसर्जित कर दिया जाता है। अलवर, किशनगढ़, कोटा, उदयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर में संपन्न परिवार लकड़ी से बनी मूर्तियों का पूजन करते हैं। कहीं पर दीवारों पर 'ईसर' तथा 'गवर' के चित्र भी अंकित किये जाते हैं। जिसमें उन्हें आमने-सामने बैठे चौपड़ खेलते हुए दिखलाया जाता है। इस चित्र का लोकगीतों की स्वर लहरियों के साथ महिलाएं पूजन करती हैं। लालसोट में गणगौर पार्वेत्सव पर हेला-ख्याल गायकी दंगल आयोजित किया जाता है। आदिवासी क्षेत्रों में इस पर्वोत्सव के दौरान लड़के-लड़कियां अपना जीवनसाथी चुनते हैं। जोधपुर में इसे लोटिया मेले के रूप में मानये जाने की परंपरा है। पीतल अथवा चांदी के लोटे एक दूसरे के ऊपर सजाकर सिर पर रखकर कुंवारी लड़कियां गीत गाती हैं, पूजन करती हैं, दोपहर में ईसर-गवर की सवारी भी निकाली जाती है। जयपुर में सिर्फ गवर की प्रतिमा ही सवारी के रूप में निकाली जाती है। उदरपुर में नगाड़ों की ध्वनि के साथ गवर की

सवारी चलती है तथा झील तक आती है। राजथान में केवल बूंदी का पूर्व राजपरिवार ही ऐसा अपवाद है जहां गणगौर पर्वोत्सव नहीं मनाया जाता है क्योंकि राव बुद्धसिंह के भाई राव जोधसिंह गणगौर त्यौहार के दिन नाव सहित तालाब में डूब गये थे।

दक्ष यज्ञ में उमा या सती के भस्म हो जाने के बाद शिव भगवान विक्षिप्त होकर घूमने लगे थे और अंत में हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। हिमालय की पुत्री पार्वती भगवान शंकर को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये हिमालय पहाड़ पर तपस्या कर रही थी। इस दौरान उनके नाभि के नीचे के सारे अंग बर्फ में फंस गये थे परंतु उन्होंने अपनी तपस्या भंग नहीं होने दी। उनकी तपस्या पर प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उनके साथ विवाह की हां भर दी थी, यही कारण है कि गवर की प्रतिमा कहीं नाभि तक के अंगों से निर्मित होती है और कहीं पूरे स्त्री रूप में पूर्ण अंगों से सुसस्जित होती है।

विदाई के दिन बीकानेर में गणगौर पर्वोत्सव संबंधी अलग ही रिवाज है। बीकानेर की समस्त 'गवरें' शाम के समय चौतीने कुंए पर पहुंच जाती हैं वहां पूर्व राज परिवार द्वारा उनको पानी-पिलाने तथा भोग-लगाने संबंधी रस्म पूरी की जाती है तथा खोल-भराई भी की जाती है पश्चात पूर्व राज परिवार के गवर-'ईसर' जूनागढ़ किले में चले जाते हैं जबकि शहर की गवरें औरतें अपने सिर पर रखकर कोटगेट की ओर दौड़ती हैं। केवल भादाणी जाति के पुरुष ही सिर पर गवर लेकर दौड़ने की रस्म में शामिल होते हैं बाकी सभी जातियों की महिलाएं ही दौड़ती हैं। कोटगेट पर सर्वप्रथम पहुंचने वाले को राजपरिवार द्वारा आज भी पांच रुपये का नकद ईनाम प्रदान कर सम्मानित किया जाता है।

❑❑

ब्रह्मपुरी चौक
हनुमानजी मन्दिर के सामने
बीकानेर-334005 (राज.)

वेदों में प्रकृति का चिंतन

वेद धर्म के सर्वोच्च ग्रंथ हैं, किन्तु उनका उद्देश्य केवल धर्म का निरूपण करना नहीं था। विचारकों ने अपनी रुचि के अनुसार वेदों में मूल भावनाओं को लेकर उनका विकास किया है। कर्म, उपासना और ज्ञान, वेदों में निहित इन मूल भावनाओं का विकास हम फिर क्रमशः ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों में पाते हैं। षडदर्शनों में जिन विचारों की व्याख्या हुई है, उनको दृष्टि में रखकर हम वेदों में दार्शनिक विचारों का अन्वेषण करें तो हमें लगता है कि वेदों में ऋषियों ने जिस सर्वोपरि प्रकृति का चिंतन किया है, वही दर्शन की प्रेरणा और उसका उद्‌गम है। हमारे ऋषि विचारवान थे। इस जगत के मूल में उन्होंने एक अदृश्य शक्ति को स्वीकार किया था, जिसको उन्होंने 'प्रकृति' नाम दिया। अदृश्य प्रकृति के रहस्यों और शक्तियों को जानने के लिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि जीवात्मा और परमात्मा की एकता से ही परम श्रेय की उपलब्धि हो सकती है। यह परम श्रेय ही वस्तुतः अदृष्ट शक्ति की सहचर है। प्रकृति के रहस्यों से आतंकित ऋषियों का उद्देश्य वस्तुतः इसी परम श्रेय की उपलब्धि के लिए था। चिंतन प्रधान ऋषियों के द्वारा प्राप्त यह परम श्रेय ही वेदों का ज्ञानकाण्ड और वेदांत का अद्वैतवाद है। प्रकृति जड़ प्रवाह मात्र नहीं है, बल्कि वह एक प्रकार का धर्म विधान है। जिस विधान के द्वारा प्राकृतिक नियम शासित होते हैं, उसी का नाम धर्म विधान है, जहाँ यह धर्म विधान हैं वहाँ किसी नियामक को स्वीकार करना अनिवार्यतः सिद्ध है। इसी अनुशासन में चलने में नैतिक और आध्यात्मिक लक्ष्यसिद्धि संभव है। ***-स्वामी सहजानंद***

लोक पर्व टेसू-विवाह

रामचरण यादव

भारत में अनेक त्यौहार प्रचलित व प्रसिद्ध हैं उनमें एक लोकपर्व शरद पूर्णिमा के दिन बड़े घूमधाम के साथ मनाया जाता है जिसे 'टिसवारी पूनो' या टेसू पूर्णिमा के नाम से जाना जाता है और बुन्देलखंड ब्रज, हरियाणा एवं कन्नौज क्षेत्र में इस पर्व का प्रचलन बहुत है। दशहरे के दिन छोटे-छोटे बच्चे लड़कियों व मिट्टी से टेसू बनाते हैं और छोटी बालिकाएं झिंझिया बनाती हैं। टेसू की प्रतिमा पृथ्वी पर टिकी रहे इसलिए इसके तीन पैर बना दिये जाते हैं। टेसू के चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूंछें तथा हाथ में ढाल तलवार सुशोभित रहती है। मिट्टी का सिर बनाकर उसमें कौड़ी की आंखें तथा गाय के पूछों के बाल की चोटी लगाते हैं। तीनों लकड़ियों के जोड़ पर दिया जलाया जाता है। झेंझी कच्चे घड़े में छिद्र कर बनायी जाती है, इस घड़े के अंदर दीपक जला कर रखते हैं तथा टेसू की प्रतिमा से झेंझी को छुपाकर रखा जाता है। टेसू व झेंझी के इस खेल में सिर्फ विभोर किशोरियां तथा बालवृंद ही सम्मिलित रहते हैं। दशहरे से लेकर शरद पूर्णिमा तक संध्या के समय लड़के टेसू के साथ तथा बालिकायें झेंझी के साथ घर-घर जाकर धन व अन्न एकत्र करती हैं। पांच दिन तक लगातार टेसू व झिंझियां के साथ गीत गाते हैं। देखें दो उदाहरण–

टेसू टेसू कहां गये थे, पत्ता तोड़न गये थे, पत्ता ले गये कौआ,
टेसू हो गयो नौआ, नौआ ने मूड़े मूड़, टेसू हो गये ठूठ, ठूठ में रखो अंगरा,
टेसू हो गये बंदरा, बंदरा ने खायी पाती, टेसू हो गये हाथी, हाथी ले गह लई गैल,
टेसू हो गये बैल, बैल ने तोड़ों छकड़ा, टेसू गये पकड़ा।

x x x

चक नक बहू चक नक बहू आये पड़े सरवार के टहू,
टट्म टोर मलीदा खाओ, भांति भांति वाने नाच नचाओ
चल मेरे हथिया संग नहीं डोरी, मैं बांधू गिरधारी डोरी,
गिद्द गिद्द के दो ईट पकाये, पहलो है सतरेवा दूसरो परेवा,
चलो राम संग देखन चलियो, इल्ला बिल्ला ईसुरिया,
विद्या दे पर मेसुरिया।

इस लोक पर्व के अवसर पर बच्चे टेसू के तथा बच्चियां झेंझी के गीत सामूहिक रूप से सुनाते हैं जिन्हें सुनकर सभी बड़े प्रसन्न होते हैं। रुपये, दो रुपये या अनाज आदि का दान देते हैं। इकट्ठा किये अनाज या धन से शरद पूर्णिमा की रात टेसू का झेंझी के साथ घूमधाम से विवाह संपन्न होता है। विवाह उपरांत सभी भोजन ग्रहण करते हैं। नाच गाना आदि से खुशियां मनाते हैं। विवाह के साथ ही पांच दिन से चल रहे इस लोकोत्सव का समापन होता है। संपूर्ण

ग्रामवासी इस लोक पर्व में अवश्य शामिल होते हैं। ग्वाल समाज में यह लोक पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है।

महाभारत में टेसू से संबंधित प्रसंग प्राप्त होता है हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच ने सुरदानव की कन्या शालकटकटा से उसकी पहेली का उत्तर देकर विवाह किया था। उसी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम बर्बरीक था जो अत्यधिक बलवान था, इसका ही अन्य नाम टेसू था। इसके पास एक सिद्धि द्वारा प्राप्त चूर्ण था। महाभारत समर में इसने अद्भुद पराक्रम दिखाना चाहा था। इसके चूर्ण से अनेक योद्धा मूर्छित हो गये तब श्रीकृष्ण ने इसका सिर काट दिया। यह देखकर भीम एवं घटोत्कच बहुत दुखी हुए अतएव भगवान श्रीकृष्ण ने इसके सिर को पुनः जीवित कर दिया तथा उसकी इच्छानुसार उसे अठारह दिन तक महाभारत युद्ध दिखाया। झेंझी नरकासुर दैत्य की कन्या थी। विवाह से पूर्व टेसू का शिरच्छेदन कर दिया गया था।

एक अन्य कथा के अनुसार सुआटा नामक दैत्य किशोरी कन्याओं को परेशान करता था। जब वे वन विहार को जाती तो वह उन्हें छेड़ता तथा अपनी पूजा करने को बाध्य करता। दैत्य के उत्पीड़न से तंग होकर कन्याओं ने मां गौरी की आराधना की। इसी बीच टेसू नामक वीर का उद्भव हुआ जिसने सुआटा दैत्य का वध कर उसकी पुत्री झिंझिया से विवाह रचाया। इसीलिए शारदीय नवरात्र में कन्याएं- 'नौरता' के नाम से मां दुर्गा की उपासना करती हैं। नौरता के खेल में सुआटा नामक राक्षस की विशालकाय प्रतिमा गोबर से बनाई जाती है। इसी खेल का अगला भाग टेसू विवाह होता है। लोक जीवन में टेसू शब्द भोले भाले तथा मूर्ख व्यक्ति का पर्याय भी है। टेसू बर्बरीक का प्रतीक है जो श्रीकृष्ण के द्वारा छला गया था इसलिए इसे टेसू कहा जाता है। टेसू लेकर बाल मण्डली जिस घर पर पहुंचती है उस घर से अनाज अथवा पैसे अवश्य मिलते हैं। टेसू की लंबी मूंछ, सिर पर साफा, ढाल तलवार तथा तीर कमान से यह सिद्ध होता है कि वह वीर पुरुष रहा होगा। कुछ गीतों में टेसू को अड़ियल स्वभाव का जबरन धन उगाहने वाला व्यक्ति दर्शाया है। वैसे तो टेसू के असंख्य गीत हैं। कुछ गीतों का मनन चिंतन करने पर पाया कि कालक्रमानुसार टेसू गीतों का स्वरूप बदलता रहा है। कुछ गीत तो लुप्त होते जा रहे हैं, आजकल अर्थहीन व विलक्षण बातों को जोड़कर गीतों का सृजन कर बालवृन्द घरों के दरवाजे पर गाते चलते हैं जैसे–

टेसू की गइया लचपे दरिया अस्सी डला भुस खाय,
सात समुन्दर पानी पिये हगन बटे सुर जाय,
टेसू आय बन वीर, हाथ लिये सोने का तीर,
एक तीर मार दिया, दिल्ली को सलाम किया,
देखो मेरा काला कोट, मारा सिकन्दर पहली चोट।

कुछ गीतों में वर्ण्य विषय समाज में सम्पन्नता और शिष्टाचार का द्योतक भी है किंतु कुछ गीतों में अनर्गल, उटपटांग संदर्भहीन बातें भी मिलती हैं। झेंझी गीतों का वर्ण्य विषय मुख्य रूप से पारिवारिक और सामाजिक है। पारिवारिक चित्रण करने वाले झेंझी गीतों में देवर भाभी, सास-बहू, पिता-पुत्री आदि के मधुर-कटु संबंध परिलक्षित होते हैं। कुछ गीतों का विषय समुद्ध लोकजीवन है। लोक गायिकाएं अपनी निर्धनता में ही संपन्नता के स्वप्न संजोती हैं– *'काहे की री सखि चनन किवरियां काहे की गज ओबरी, सोने की सखि चनन किवरियां रूपे की गज ओबरी।'* झेंझी के कुछ गीतों में लोक जीवन इतना कल्पनाशील है कि एक कृषक-पत्नी चन्द्रमा पर निवास करना चाहती है। कामधेनु गाय से उत्पन्न बैलों को पाल-पोस कर कृषि कार्य करना चाहती है। कुछ गीतों में बालिकाओं की असहाय अवस्था का वर्णन भी मिलता है। *'ऊंचों चउतरा चउखटो जहां बेटी खेलन जाय'।*

झेंझी गीतों में बालाओं के कारुणिक प्रसंगों के साथ-साथ विविध प्रकार की नारियों के चरित्रों का भी कथन होता है। टेसू व झेंझी के गीत हास परिहास से परिपूर्ण हैं ये स्वस्थ मनोरंजन के अच्छे साधन हैं। ये गीत रीति-रिवाज एवं सामाजिक मान्यताओं की स्थापना करते हैं। ये गीत किशोर किशोरियों में फैली विविध कुप्रथाओं को समाप्त कर पारस्परिक आत्मीयता, सहयोग, उत्तरदायित्व की भावना एवं जिज्ञासा वृत्ति आदि गुणों को विकसित करते हैं। बालवृन्द में इन

गीतों से मस्तिष्ट की उर्वरता व तर्कशक्ति का विकास होता है। कहने का आशय यह है कि इन गीतों में हास्य व्यंग्य के पुट के साथ सामाजिक कुरीतियों पर अच्छी छींटाकशी है अतः इनकी व्यावहारिक उपोयदयता असंदिग्ध है और यही मूल कारण है कि इनकी लोकप्रियता में किसी प्रकार की गिरावट की संभावना नहीं है। इनमें जीवन के शाश्वत मूल्यों का विचारोत्तजक विश्लेषण सन्निहित है। टेसू और झेंझी के विवाह के समय दोनों पक्षों के व्यक्ति उपस्थित रहते हैं। वेदपाठी ब्राह्मण अथवा पंडित के अलावा नाई की उपस्थिति अनिवार्य होती है। विधिवित विवाह होता है। टेसू और झेंझी के छः फेरे होने के पश्चात् ही नाई दोनों को नदी या तालाब में विसर्जित कर देता है। ऐसी मान्यता है कि उनका अंतिम फेरा जल में पूर्ण होता है। इस अवसर पर पटाखे छोड़े जाते हैं आजकल तो बैण्ड पार्टी आदि का भी इन्तजाम कर लेते हैं।

❐❐

रामचरण यादव 'याददाश्त'
सदर बाजार, बैतूल (म.प्रदेश)-460001

राम के वंशज कौन?

राम जन्म भूमि विवाद के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने पूछा था कि क्या राम के वंशज भारत अथवा अन्यत्र कहीं हैं? सरकारी वकील ने कहा- पता नहीं। इस समाचार के छपने के उपरांत जयपुर एवं उदयपुर के पूर्व राजघरानों ने सूचना दी है कि वे राम के वंशज हैं।

लव के वंशज : मेवाड़ के पूर्व राजपरिवार के वंशजों ने कहा कि वे राम-पुत्र लव के वंशज हैं जिन्होंने 'लव कोटे' (लाहौर) बसाया था, वे ही कालांतर में मेवाड़ के आहाड़ (उदयपुर) में बस गये थे। इतिहासकारों ने भी ऐसा कहा है कि इनका सूर्यवंशी होना भी एक प्रमाण है।

इसी राजघराने के महेंद्र सिंह मेवाड़ ने कहा है कि वे श्रीराम के वंशज हैं, मेवाड़ में उनकी 76 पीढ़ियों का इतिहास दर्ज है, जबकि राजघराने का इतिहास और भी पुराना है। संत चतुरसिंह बावजी ने 'चतुर चिन्तामणि' में महाराणा प्रताप को रघुवंशी श्रीराम का वंशज लिखा है।

कर्नल जेम्स टाड ने अपनी पुस्तक 'Anals and activities of Rajasthan' में लिखा है– श्री राम की राजधानी अयोध्या थी। उनके बेटे लव ने लव-कोटे (लाहौर) बसाया था, लव के वंशज कालांतर में गुजरात होते हुए आहाड़ यानी मेवाड़ में आए, जहां उन्होंने सिसोदिया राज्य की स्थापना की। चित्तौड़ के बाद उदयपुर को राजधानी बनाया था। मेवाड़ का 'राज प्रतीक' सूर्य रहा है। श्री राम शिव उपासक थे और मेवाड़ राज परिवार भी 'एकलिंग नाथ' (शिव) के उपासक हैं।

कुश के वंशज : जयपुर के पूर्व राजघराने का कहना है कि वे भगवान राम के बेटे कुश के वंशज हैं, यह बात इतिहास में भी दर्ज है। पूर्व राजकुमारी 'दीया कुमारी' ने एक पत्रावली दिखाई, जिसमें श्रीराम के सभी पूर्वजों एवं वंशजों का नाम क्रमवार दर्ज है। दशरथ राजा इसमें 62 वंशज थे, राम 63वें, लव एवं कुश 64वें। सिटी पैलेस (जयपुर) के पोथीखा के 9 दस्तावेज एवं 2 नक्शे यह बताते हैं कि अयोध्या के जयसिंहपुरा एवं रामजन्म स्थान सवाई जयसिंह द्वितीय के अधीन थे। औरंगजेब की मृत्यु के उपरांत सवाई जयसिंह द्वितीय ने हिन्दू धार्मिक बहुल क्षेत्रों में बड़ी-बड़ी जमीने खरीदी। उन्होंने सन् 1717-1725 में रामजन्म मंदिर अयोध्या में बनवाया था। *(संदर्भ : दि. 11.8.19 एवं 12.8.19 का दैनिक भास्कर।)*

प्राचीन राजस्थान के संस्कृत अभिलेखों में वर्णित नारी-शिक्षा

रेखादेवी शर्मा

विश्व की संस्कृतियों की आधारशिला नारी प्रत्येक युग के चिन्तकों, मनीषियों एवं अध्येताओं के अध्ययन का मुख्य विषय रहा है। नारी के बिना सम्पूर्ण जगत का सृजन एवं अस्तित्व अकल्पनीय है। तदपि देश, काल एवं स्थिति से प्रभावित नारी की स्थिति बदलती रही है। किसी भी युग विशेष की संस्कृति एवं सामाजिक स्तर का उचित मूल्यांकन तत्कालीन समाज में नारी के जीवन स्तर के आधार पर भलीभांति किया जा सकता है। समाज में नारी की प्रतिष्ठा समाज की श्रेष्ठता का द्योतक है। इस दृष्टि से समाज में नारी की स्थिति तत्कालीन समाज की संस्कृति एवं स्तर को मापने का मापदंड होती है। वह एक ऐसा दर्पण है जिसमें समाज प्रतिबिम्बित होता है।

जीवन के समस्त पहलुओं के सर्वांगीण विकास का माध्यम शिक्षा है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण विकास हेतु शिक्षा प्राप्त करना प्राचीन समय से ही आवश्यक माना गया है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का उद्देश्य था चरित्र का संगठन, व्यक्तित्व का निर्माण, प्राचीन संस्कृति की रक्षा और सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए उदीयमान पीढ़ी का प्रशिक्षण।[1] भारतीय संस्कृति के वैदिक काल की ओर दृष्टिपात करने पर, शिक्षा के क्षेत्र में नारी की स्थिति को शिखर पर माना जा सकता है। वह पुरुषों की भांति बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करती थी तथा बुद्धि एवं ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थी।

वैदिक कालोपरांत स्त्री-शिक्षा की स्थिति में परिवर्तन दिखाई देता है। स्त्री शिक्षा की अधिकारिणी तो बनी रही, किन्तु वैदिक ग्रंथों के अध्ययन का उसको अधिकार नहीं रहा। धीरे-धीरे उनके उपनयन का महत्व समाप्त होने लगा। मन के समय स्त्रियों के उपनयन का केवल औपचारिक महत्व रह गया। इस समय बालिकाओं के उपनयन में वैदिक मंत्रों के वाचन को प्रतिबंधित कर दिया गया तथा स्त्रियों के विवाह को ही उनका उपनयन मान लिया गया।[2] मनु के परवर्ती स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों के लिए उपनयन संस्कार का सर्वथा निषेध कर दिया।[3] उपनयन के अभाव में वह वैदिक शिक्षा की अधिकारिणी नहीं रही तथा उसे शूद्र वत मान लिया गया।[4]

प्राचीन भारतीय संस्कृत एवं बौद्ध साहित्य के अध्ययन एवं अवलोकन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राजपरिवार तथा समाज के धनाढ्य वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा का उचित प्रबंध किया जाता था। उनकी शिक्षा में संगीत, गायन, वादन, नृत्य, चित्रकला आदि ललित विषय सम्मिलित थे। महान गद्यकार बाणभट्ट ने लिखा है कि राज्यश्री को बौद्ध सिद्धधान्तों की शिक्षा देने के लिए दिवाकर मित्र को नियुक्त किया गया था। बहुत सी स्त्रियां

बौद्ध भिक्षुणियां भी होती थीं, जो निश्चय ही बौद्ध सिद्धांतों से भी भलीभांति परिचित रही होंगी। शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने वाली मंडन मिश्र की प्रकाण्ड विदुषी पत्नी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसने शंकराचार्य को भी निरुत्तर कर दिया था। प्रतिहार नरेश महेंद्रपाल एवं उसके पुत्र महीपाल के राजकवि राजशेखर की पत्नी चाहमान राजकुमारी अवन्ति सुन्दरी बहुत विदुषी एवं काव्य रचना में निष्णात थीं।[5] स्त्री शिक्षा के विषय में राजशेखर ने लिखा है कि- पुरुषों की तरह स्त्रियां भी कवि हों। संस्कार तो आत्मा में होता है, वह स्त्री और पुरुष के भेद की अपेक्षा नहीं करता। राजाओं और मंत्रियों की पुत्रियां, वेश्यायें, कौतुकियों की स्त्रियां, शास्त्रों में निष्णात, बुद्धि वाली और कवयित्री देखी जाती हैं।[6] इस समय की अनेक संस्कृत कवयित्रियों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिनमें इन्दुलेखा, मारूला, मोरिका, विज्जिका, शीला, सुभद्रा, पद्मश्री, मदालसा और लक्ष्मी आदि प्रमुख हैं। इस समय स्त्रियों को गणित की शिक्षा दिए जाने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। भास्कराचार्य ने अपनी पुत्री लीलावती को गणित का अध्ययन कराने के लिए लीलावती नामक ग्रंथ की रचना की।[7] चाहमान नरेश चन्दनराज की रानी रुद्राणी अथवा आत्मप्रभा एक 'योगिनी' के रूप में प्रसिद्ध थी।[8] राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में शीला भट्टारिका का उल्लेख एक विदुषी महिला के रूप में किया है। उनके द्वारा लिखित कुछ श्लोक संस्कृत साहित्य में उल्लिखित मिलते हैं। पृथ्वीराज विजय में चाहमान नरेश गूवक द्वितीय की बहिन लीलावती को चौंसठ कलाओं में पारंगत बताया गया है।[9]

इसी प्रकार जैन प्राकृत ग्रंथ 'कुवलयमाला' और 'समराइच्चकहा' से भी स्त्री शिक्षा पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। 'कुवलयमाला' की एक कथा से विदित होता है कि कुवलयमाला के जन्म पर पुत्र जन्म से भी अधिक उत्सव मनाया गया था[10]। 12वें दिन नामकरण संस्कार के अवसर पर अनेक कलाओं की शिक्षा दी गई। इसी प्रकार मरुकच्छ के राजा भृगु की पुत्री केवल विदुषी ही नहीं अपितु अध्यापन कार्य में भी निपुण थी। उसने थोड़े ही समय में राजकीर को अक्षरज्ञान, नृत्य, व्याकरण, समुद्रशास्त्र आदि सभी विद्याओं का अध्ययन करवा कर पंडित बना दिया। राजकीर ने सभी शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात अध्यापन कार्य करने की कुशलता भी प्राप्त की थी। अवसर पड़ने पर उसने संन्यासिनी ऐणिका को अक्षरज्ञान से लेकर धर्म, अर्थ एवं काम विद्याओं के सभी शास्त्रों का अध्ययन कराया।[11] कुवलयमाला से विदित होता है कि साधु-साध्वियों को उपाश्रयों में भी विद्या-अध्ययन कराया जाता था। समराइच्चकहा में कन्या की शिक्षा-दीक्षा पर विशेष बल दिया गया है, क्योंकि रूप, कला तथा विज्ञान आदि कन्या के गुण माने जाते थे।[12] चित्रकला के साथ-साथ उसे काव्य आदि की भी शिक्षा दी जाती थी।[13]

समराइच्चकहा से पता चलता है कि माता-पिता अपनी कन्या को कला, विज्ञान आदि से सुशिक्षित करने का भरपूर प्रयास करते थे।[14] अहो मे धूयाये चित्तयम्म चउरत्तणम्। समराइच्चकहा की भांति रत्नावली में भी कन्या द्वारा चित्रपट्ट पर चित्र अंकित करने का उल्लेख है। कर्पूरमंजरी तथा विद्धशालभंजिका की नायिकाएं अपने प्रेमियों को पद्य रचना तथा पत्र लेख द्वारा समाचार भेजती थी।

राजस्थान के संस्कृत अभिलेखों में राजकुमारियों तथा धनाढ्य वर्ग की पुत्रियों की शिक्षा प्रबन्धन के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं। वि.सं. 1012 के बयाना अभिलेख में चित्रलेखा को शास्त्रों का ज्ञाता कहा गया है[15]। 1057 के हस्तिमाता मंदिर (उदयपुर) शिलालेख में चालुक्य कुल में उत्पन्न सोढक की पुत्री जो राजा (नाम खंडित) की पिया (रानी) थी, उसकी राजकाज की निपुणता एवं क्षमता को देखकर राजा द्वारा उसे प्रोत्साहित किए जाने का उल्लेख है।[16] निश्चित ही सोढक की यह पुत्री शिक्षित रही होगी। जिसकी राजकीय निपुणता एवं बुद्धि चातुर्य से प्रभावित हुए बिना राजा भी न रह सके। वि.सं. 1219 के लाडनू के दिगम्बर जैन मंदिर की सरस्वती प्रतिमा के पाद लेख में श्रेष्ठी बहुदेव की पत्नी आशा देवी द्वारा कुटुम्ब सहित विद्या की देवी सरस्वती को प्रणाम करने का उल्लेख मिलता है।[17] इस उल्लेख को नारी शिक्षा के प्रति श्रद्धा एवं जागरूकता का प्रतीक माना जा सकता है। अभिलेखों

में यद्यपि सामान्य परिवार की स्त्रियों की शिक्षा का उल्लेख नहीं मिलता तदपि कतिपय उदाहरण इस तथ्य के पोषक हैं कि साधारण महिलाएं भी अपनी कलाओं का प्रदर्शन कर आजीविका अर्जन करती थी। वि.सं.1205 के अल्हणदेव के खण्डित ताम्रपत्र (नाडौल)[18] से विदित होता है कि नृत्यकला स्त्रियों की आजीविका का माध्यम भी थी। लेख में विलासिनी पद्मावती की पुत्री वजिला को नृत्यकला में निपुण बताया गया है जिसे अन्य नर्तकियों के साथ दान का 16वां भाग दिया गया। परन्तु सामान्य परिवारों में स्त्रियां अशिक्षिता रहती थीं। कुछ ऐसी स्त्रियों के उदाहरण देखने को मिलते हैं जो दर्शन, धर्म तथा साहित्य में रुचि रखती थीं। गोगेश्वरी नामक महिला उज्जैन के एक शैव आश्रम की प्रमुख थी।[19] परमार शासक उपेंद्रराज के दरबार में सीता नामक कवयित्री रहती थी, जिसने उस नरेश की प्रशंसा में अनेक गीत लिखे।[20] नारी शिक्षा के प्रति समाज सचेत था। अशिक्षित स्त्रियों में अशिष्टता एवं कुमार्गप्रवृत्ति का प्रमाण मिलता है।[21] जिससे स्पष्ट होता है कि लोगों में इस भावना के कारण स्त्री-शिक्षा के प्रति विशेष झुकाव था। शिक्षित एवं सुसंस्कृत स्त्रियां सदैव अपने कुल एवं मर्यादा का ध्यान रखकर आत्मकल्याण के मार्ग पर बढ़ती थी जो कुल एवं राष्ट्र कल्याण के लिए भी अपेक्षित था। अतः एक सफल गृहस्थ धर्म के पालनार्थ कुशल गृहणी बनाने हेतु कन्या को सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। रूप, कला एवं विज्ञान आदि से सम्पन्न कन्याएं युवावस्था को प्राप्त कर विवाह योग्य समझी जाती थी।[22] स्वेच्छा से अपने भावी पति का वरण कर सकती थी।

राजस्थान के अभिलेखों एवं साहित्य के अध्ययन से यह बात सिद्ध होती है कि नारी शिक्षा के प्रति समाज में जागरूकता थी। यद्यपि अभिलेखों में धनाढ्य एवं सामन्त वर्ग की स्त्रियों की अपेक्षा सामान्य स्त्री की शिक्षा के कतिपय उल्लेख मिलते हैं। गृहस्थी का सम्यक संचालन, कुल, परिवार तथा समाज का कल्याण एवं मानवर्धन स्त्री का परम कर्तव्य होने के कारण, तत् कर्म पूरक शिक्षण व्यवस्था के पर्याप्त प्रबन्ध भी किए जाते थे। सम्भवतः इसी कारण उसकी शिक्षा ललित कलाओं के शिक्षण में सीमित नजर आती है। अध्ययनोपरांत कहा जा सकता है कि नारी की शिक्षा के प्रति समाज सावचेत था। स्त्री शिक्षा की स्थिति संतोषप्रद थी।

संदर्भ

1. अल्तेकर ए. एस., प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति (वाराणसी, 1979-80), पृ.7। **2.** वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहाथौ अग्नि परिक्रिया। मनुस्मृति 2.67। **3.** याज्ञवल्क्य स्मृति 1.13। **4.** अल्तेकर, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 161। **5.** वर्मा श्यामा, आचार्य राजशेखर (भोपाल, 1971), पृ.17-18। **6.** ओझाजी एच., मध्यकालीन संस्कृति (इलाहाबाद, 1966), पृ.57। **7.** वही, पृ.57-58। **8.** शर्मा दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टीज (दिल्ली 1975), पृ.31। **9.** वही, पृ.287। **10.** जैन प्रेमसुमन, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन (वैशाली बिहार, 1975) पृ. 121। **11.** वही, पृष्ठ 229। **12.** यादव झिनकू, कुवलयमालाकहा एक सांस्कृतिक अध्ययन (वाराणसी 1977), पृ.131। **13.** वही। **14.** वही। **15.** बनर्जी आर. डी. दि बयाना इंशक्रिप्शन ऑफ चित्रलेखा वि.सं. 1012, एपिग्राफिया इंडिका, वाल्यूम 22, पृ. 120-127। **16.** गहलोत एस.एस., पुरोहित एस. के. एवं शर्मा नीलकमल, राजस्थान के प्रमुख अभिलेख (जोधपुर 1988), पृ. 171-173। **17.** श्रीमाली जी. एल., राजस्थान के अभिलेख- भाग प्रथम (जोधपुर 2000), पृ. 26। **18.** श्रीमाली, जी.एल., पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 144। **19.** एपिग्राफिया इंडिका, वॉल्यूम11, पृ. 221-22। **20.** नवसाहसांकचरित, 11वां, 76-78। **21.** यदाव झिनकू, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 131-132। **22.** वही, पृ. 132।

❑❑

द्वारा- डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
बी-48ए, जवाहरनगर,
भरतपुर (राज.)-321001
मो. 9413838168

विवाह का बदलता सामाजिक स्वरूप

विवाह स्त्री-पुरुष को समाज सम्मत यौन-सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति प्रदान करने वाली संस्था है, जिसमें बच्चों के जन्म एवं पालन पोषण के प्रावधान सम्मिलित होते हैं। विवाह का यह सार्वभौमिक स्वरूप भारतीय समाज में एक धार्मिक संस्कार के रूप में परिलक्षित होता है जिसका उद्देश्य-धर्म, प्रजापत्य और रति है। परन्तु वर्तमान आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जब समाज तीव्र गति से भौतिकतावाद की ओर अग्रसर है, सूचना तकनीकी व ज्ञान आधारित व्यवस्था इस युग की पहचान है, द्विअर्जन (स्त्री पुरुष दोनों क्रियाशील) परिवार की आवश्यकता बनती जा रही है, विवाह में इच्छाएं व कामनाएं केन्द्र में आ रही है तथा वैवाहिक सम्बन्ध दो लोगों के चतुर्दिक केन्द्रित हो रहे हो, तथा वर्चुअल व आभाषी दुनिया वास्तविकता पर हावी हो रही हो, तो ऐसे में एक धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह का 'अस्तित्व संकट' में दिखता है। सहजीवी (लिव-इन-रिलेशनशिप) डेटिंग, सोरोगेसी, समलैंगिक विवाहों को मान्य कराने की जिद्द, धारा 377 का पाप (अपराध) के श्रेणी से बाहर आना आदि जो संस्कारगत विवाह से द्वन्द पर आधारित है, हिन्दू विवाह के धार्मिक संस्कार वाले पक्ष के लिए- 'पहचान का संकट' उत्पन्न कर सकते हैं। इससे एक तरफ जहाँ परिवार और नातेदारी व्यवस्था प्रभावित होगी वहीं दूसरी तरफ सामाजिक संरचना और उसके प्रकार्य पर भी प्रभाव पड़ेगा तथा समाज में विचलन व विघटन की नवीन स्थितियां भी उत्पन्न होगी। इन्हीं संदर्भों में इस शोध पत्र में अध्ययन किया जायेगा।

विवाह एक ऐसी मौलिक सामाजिक संस्था है, जिससे परिवार और नातेदारी जैसी आधारभूत समितियों और संस्थाओं का प्रस्फुटन होता है। प्रस्थिति तथा भूमिकाएं सुनिश्चित होती हैं। यद्यपि विवाह एक सार्वभौमिक संस्था है परन्तु इस का स्वरूप सर्वत्र और सर्वदा एक जैसा नहीं है। परम्परागत भारतीय समाज में विवाह जहां एक धार्मिक संस्कार के रूप में अस्तित्वमान रहा है वहीं दुनिया के अन्य देशों में विशेष रूप से पश्चिमी समाजों में विवाह यौन-सन्तुष्टि का आधार रहा है। भारतीय दृष्टिकोण से विवाह ही वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों में श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि यही वह आश्रम है जहां व्यक्ति एक साथ चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करता है। तीन ऋणों से उऋण होने में भी विवाह की महत्वपूर्ण भूमिका है इतना ही नही पंच महायज्ञ गृहस्थ आश्रम में ही संभव हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के बाद ही संभव है और यज्ञ, हवन जैसी क्रियाओं में सपत्नीक होना आवश्यक रहा है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू सामाजिक संगठन में विवाह धार्मिक संस्कार रहा है। विवाह से सम्बन्धित बहुत से तथ्य और शब्दावलियां विवाह संस्कार के तत्वों की ओर संकेत करती हैं। 'उद्वाह' का अर्थ है कन्या को उसके पितृ गृह से उच्चता (श्रेष्ठता) के साथ ले जाना। 'परिणय या परिणयन' से तात्पर्य है पवित्र अग्नि की प्रदक्षिणा करना। जबकि 'विवाह' का अर्थ है विशिष्ट

ढंग (धार्मिक संस्कार) से कन्या को अपनी स्त्री बनाने को ले जाना तो 'उपयम' का अर्थ है सन्निकट ले जाना और अपना बना लेना जबकि 'पाणिग्रहण' शब्द कन्या का हाथ पकड़ने को दर्शाता है। इस प्रकार विवाह से जुड़े सभी शब्द उसके धार्मिक चरित्र को दर्शाते है, परन्तु वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन की विविध प्रक्रियाओं के चलते भारत में विवाह का संस्कारगत स्वरूप आज परिवर्तन के दौर में है। आधुनिकता की तीव्र लहर विवाह के संस्कारगत स्वरूप को विकृत करने मे लगी है, तो क्या भारत में विवाह का धार्मिक स्वरूप बदल रहा है? इसके मूल में निहित कारण क्या हैं? 'आधुनिक भारत में एक धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह कैसे अपना मूल्य या महत्व खो रहा है?'

सामाजिक संस्थाएं स्वभाव से ही अधिक स्थायी प्रकृति की होती है। भारत के परम्परागत समाजों की संस्थाए तो और भी अधिक स्थायी प्रकृति की रही हैं परन्तु परिवर्तन की प्रक्रियाओं यथा-भौतिकतावादी मूल्यों का बढ़ता महत्व, व्यक्तिवादिता, औद्योगिकरण, नगरीकरण आधुनिकीकरण, परिवार के संबंध में बन रहे सामाजिक विधान, उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास, पश्चिमीकरण, विवाह-विच्छेद को मान्यता, वैश्वीकरण, सूचना और संचार क्रांति, सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव तथा डिजिटल होते समाज आदि के संयुक्त परिणामस्वरूप भारत में 'विवाह' मौलिक संस्था आज परितर्वन के दौर से गुजर रही है। प्रश्न उठता है कि किन आधारों पर यह कहा जा सकता है कि विवाह एक धार्मिक संस्कार है? ऋग्वेद के अनुसार 'विवाह का उद्देश्य था गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोपत्ति करना।' जबकि 'शतपथ ब्रह्मण में कहा गया है कि पत्नी, पति की आधी (अर्धांगिनी) है अतः जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता, जब तक वह संतानोत्पत्ति नहीं करता, तब तक वह पूर्ण नहीं है।

इस प्रकार ऋग्वेद, उत्तर वैदिक काल, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, आपस्तम्ब धर्म सूत्र मनुस्मृति आदि के विवाह सम्बन्धी अध्ययनों से विवाह के धार्मिक संस्कारगत स्वरूप सम्बन्धी जो निष्कर्ष प्राप्त होते है उस आधार पर विवाह के तीन उद्देश्य हैं–

1. धर्म, 2. प्रजापत्य एवं 3. रति

परम्परागत भारतीय समाज में विवाह के ये तीनों उद्देश्य विवाह को एक धार्मिक संस्कार का स्वरूप प्रदान करते हैं। विवाह की अविभेद (अटूट) प्रकृति, विवाह सम्बन्धी नियम और अनुलोम, प्रतिलोम विवाह, बहिर्विवाह, अन्तर्विवाह आदि विवाह के तरीकों में प्रशस्त (मान्य) तथा अप्रशस्त (अमान्य) सम्बन्धी नियम तथा विवाह के अवसर पर होने वाले धार्मिक अनुष्ठान आदि भारत में हिन्दू विवाह को एक धार्मिक स्वरूप प्रदान करते हैं।

भारत में डिजिटल होते समाज और बदलते सामजिक मूल्यों, तकनीकी के बढ़ते प्रभाव तथा भौतिकतावाद की ओर अग्रसर समाज में अति उपभोग तथा दिखावे की प्रवृत्ति ने विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में कमजोर किया है। वर्तमान भौतिकतावादी परिप्रेक्ष्य में समाज जीवन के चरम उद्देश्य मोक्ष और धर्म संचय की अपेक्षा भौतिक संचय तथा उपभोग की संस्कृति की ओर तीव्र गति से बढ़ रहा है। ऐसे में ऋग्वेद में उल्लिखित विवाह का उद्देश्य गृहस्थ होकर देवों के लिए 'यज्ञ' करना शायद ही किसी गृहस्थ के द्वारा सम्पन्न किया जाता हो। पुरुषों के सोलह संस्कार विहित कहे गये हैं परंतु स्त्रियों के लिए विवाह ही एक मात्र संस्कार होता था और पति परमेश्वर की अवधारणा तो सर्वविदित है, इससे विवाह को एक अटूट प्रकृति प्राप्त होती थी किन्तु शिक्षा, बढ़ते समानता के अवसर तथा संवैधानिक प्रावधानों के आलोक में ये अवधारणाएं ओझल हो रही हैं।

प्राचीन भारत में पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था जो धर्म से नियंत्रित तथा निर्देशित थी उस व्यवस्था में विवाह संस्कार के द्वारा स्त्रियां भले ही अर्द्धांगिनी या सहचरी हो अनुगामी ही बनी रही परन्तु समयान्तराल में तीव्रगति से बदलती सामाजिक व्यवस्था में शिक्षा के बढ़ते स्तर, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सोशल मीडिया व आधुनिक विश्वव्यवस्था से सन्निकटता में आज जब महिलाएं पुरुष की सहगामी बनी तो विवाह रूप धार्मिक संस्कार की थाती भी प्रभावित हुई क्योंकि परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में, संस्कृति, संस्कार और परम्पराओं की वाहक महिलाएं ही अधिक रही हैं, तो ऐसे में एक

तरफ जहां पति परमेश्वर की अवधारणा विखण्डित हुई, वहीं दूसरी तरफ विवाह की अटूट प्रकृति में धर्म और संस्कारों के आलोक में जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध स्थापित होते थे वह भी आधुनिक सोच एवं वैधानिक प्रावधानों के सानिध्य में एक जन्म में ही विघटित होते दृष्टिगत होने लगे हैं।

हिन्दू विवाह में विवाह के आठ स्वरूप विद्यमान रहे हैं, जिसमें ब्रह्मविवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह, प्रजापत्य विवाह को धर्म सम्मत ओर संस्कारों से युक्त प्रशस्त (मान्य) विवाह की संज्ञा दी गयी। जबकि गन्धर्व, राक्षस, असुर और पैचाश विवाह को संस्कार युक्त न होने के कारण धर्म सम्मत नहीं माना गया तथा इसे अप्रशस्त (अमान्य) विवाह की संज्ञा दी गयी। पी.वी काणे ने विवाह के अवसर पर सम्पन्न होने वाले जिन 39 अनुष्ठानों का उल्लेख किया है वे सभी प्रशस्त विवाहों के अवसर पर ही सम्पन्न होते थे। परन्तु वर्तमान में धर्म और संस्कार वाले पक्ष तो विवाह के अवसर पर कमजोर पड़ते जा रहे है तथा दिखावेपन की प्रवृत्ति, वीडियोग्राफी, फोटोग्राफी, नृत्य, डी.जे., भोज का पक्ष सशक्त होता जा रहा है। मांगलिक गीत, संगीत, और अनुष्ठानों का स्थान तीव्र साउंड वाले वाद्ययन्त्र और रीमिक्स लेते जा रहे हैं। विवाह के अवसर पर होने वाली साज-सज्जा के मध्य से व्यक्ति की हैसियत प्रदर्शित होती दिखती हैं। 'उद्वाह' अर्थात कन्या को उसके 'पितृगृह' से उच्चता के साथ ले जाने में अनुष्ठान और धार्मिक संस्कार सन्निहित होते थे, परन्तु पितृगृह से दूर किसी सुविधाजनक ढंग से सुनिश्चित किए गए मैरेज हाल, होटल, लॉन तो गृह का आभास ही नहीं कराते, यहां बहुत से संस्कारों का समय अत्यन्त सीमित हो जाता है और कभी-कभी तो कुछ संस्कार सम्पन्न भी नहीं हो पाते।

भारतीय समाज में विवाह संबंधों के निर्धारण में नातेदारी या रिश्तेदारी व्यवस्था का पक्ष कमजोर पड़ता जा रहा है। पूर्व में तो विवाह नातेदारी के माध्यम से तय व सम्पन्न कराए जाते थे, परन्तु आज इसके लिए समाचार पत्रों में विज्ञापन, मैरेज व्यूरो, सोशल मीडिया आदि ने सम्बन्धों की एक आभासी दुनिया तैयार कर दी है। जहां रिश्ते बनते व विघटित होते देखे जा रहे हैं। इस वर्चुअल दुनिया में विवाह संस्कार नहीं रहा। नवीन उभरती अवधारणाएं विवाह के संस्कारगत स्वरूप से समन्वय नहीं स्थापित कर पा रहीं हैं क्योंकि इन नवीन अवधारणाओं का स्वरूप भारतीय संस्कृति व धर्म से द्वन्द्व पर आधारित है। इसमें सहजीवी (लिव इन रिलेशनशिप), डेटिंग, कोर्ट मैरिज, विवाहेत्तर सम्बन्धों को पाप की श्रेणी से बाहर निकालना आदि विवाह के संस्कारगत धार्मिक पक्ष को कमजोर बना रहे हैं।

विवाह का दूसरा उद्देश्य जो विवाह को संस्कार का स्वरूप प्रदान करता है वह है प्रजापत्य अर्थात संतानोत्तपत्ति जो समाज को गति और निरन्तरता प्रदान करती है। विवाह के उपरान्त संतानोतपत्ति से ही एक व्यक्ति पितृऋण से उऋण होता है तथा संस्कारयुक्त धार्मिक विवाह से उत्पन्न पुत्र ही पिता का उत्तराधिकारी तथा तर्पण, श्राद्ध कर्म व पिण्डदान आदि का अधिकारी होता था, परन्तु बदलते परिप्रेक्ष्य में सोरोगेसी तथा टेस्ट ट्यूब से उत्पन्न संतान जहां वैध मानी जा रही हैं वहीं 'थ्री पैरेंटल बेवी' की अवधारणा भी उभर रही है तथा सहजीवी (लिव-इन) से उत्पन्न संतान को भी वैध माना जा रहा है तो ऐसे में यह अवधारणा कि धार्मिक संस्कारों से युक्त विवाह से उत्पन्न माता-पिता की संतान ही वैध होगी, खण्डित व विघटित होती दृष्टिगत हो रही है। जो विवाह के संस्कारगत स्वरूप को विघटित कर रही है।

भौतिकतावाद की तरफ अग्रसर अर्थप्रधान समाज में कामनाएं (इच्छाएं) केन्द्र में आती जा रही हैं। ऐसे में रति जो विवाह का सबसे गौण उद्देश्य होता था और पुरुषार्थों में जहां काम को सबसे कम महत्व दिया गया था परिवर्तित होता दिख रहा है। इस तरह विवाह के धार्मिक संस्कारगत स्वरूप के तीनों मुख्य उद्देश्य परिवर्तन के दौर में हैं।

भारत में विवाह के धार्मिक संस्कारगत स्वरूप के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन व विश्लेषण से स्पष्ट है कि परिवर्तन की विविध प्रक्रियाओं तथा भौतिकतावाद की तरफ अग्रसर समाज के गुण व धर्म एवं तकनीकी व डिजिटल होती दिनचर्या ने सम्मिलित रूप से विवाह के धार्मिक संस्कारगत स्वरूप में विघटन उत्पन्न किया

है। परिणामस्वरूप एक धार्मिक संस्कार के रूप में विवाह के उद्श्यों में नवीन प्रवृत्तियां दृष्टिगत हो रही हैं। विवाह की आयु, विवाह संबंधी नियम व निषेध, विवाह की स्थिरता वाला पक्ष तथा विवाह के प्रशस्त व अप्रशस्त स्वरूपों में परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है जो विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में कमजोर कर रहा है। यद्यपि भारत गावों का देश है जिसकी कुल जनसंख्या का लगभग 68.8 प्रतिशत (2011) जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और नगरीय क्षेत्रों के सापेक्ष परिवर्तन की प्रक्रियाओं की गति व तीव्रता वहां कुछ शिथिल है ऐसे में परिवर्तन की प्रकृति की यह शिथिलता विवाह के संस्कारगत स्वरूप को किसी हद तक सुरक्षित रखे है। परिवर्तन की लहर भले ही तीव्र हो लेकिन भारत में विवाह की लोकाचारात्मक अनुष्ठानात्मक प्रकृति विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में बनाये रखेगी।

सहायक ग्रन्थ

1. K.M. Kapadia 'Marriage and Family in India' Bombay : Ox-ford Univrsity Press, 1966. **2.** Edward Westermarck ' The History of Human Marriage' 1891, macmillan, London. **3.** P.H. Prabhu 'Hindu Social organization' 'A study of the socio-psychological and Ideological Foundations' Pupular Prakshan, Bombay. **4.** डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे 'धर्मशास्त्र का इतिहास' उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग) राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ। **5.** दैनिक अंग्रेजी समाचार पत्र 'द टाइम्स ऑफ इण्डिया' लेख दीपांकर गुप्ता, दिनांक 10 जून, 2023। **6.** शोभिता जैन, भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी, 'रावत पब्लिकेशन, सत्यम आपर्टमेंट, सेक्टर-3, जवाहरनगर, जयपुर-302004। **7.** Irawati Karve, Kinshiporganization in India Published by Asia Publishing House, 1968.

❐❐

सीता पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर-समाजशास्त्र,

रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय

अकबरपुर, अम्बेडकरनगर (उ.प्र.)।

मो. 9076571313

हमारे पूर्वज हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में

चार वर्ष पूर्व हरियाणा के राखीगढ़ी (जि. हिसार) में की गई खुदाई में हड़प्पा सभ्यता की अनेक मुहर, बर्तन, ज्वैलरी, कंकाल इत्यादि प्राप्त हुए थे, किन्तु मूर्तिकला की कृति प्राप्त नहीं हुई थीं, जबकि मोहनजोदड़ो (पाक) में पुजारी राजा की बहुचर्चित अलंकृत मूर्ति प्राप्त हुई थी, जिसमें उस समय का सुन्दर परिधान व माथे के फीते/बैंड के संबंध में जानकारी प्राप्त हुई। राखीगढ़ी खुदाई स्थल को मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा से भी अधिक प्राचीन पाया गया है। यह भी निष्कर्ष निकला है कि सर्वप्रथम 'नगरीय सभ्यता' की परिकल्पना यहां से प्रारम्भ हुई एवं बाद में अन्य स्थानों पर पहुंची। राखीगढ़ी से प्राप्त एक स्त्री के कंकाल (5000 वर्ष प्राचीन) पर शोध किया गया था। डॉ. वसन्त एस. शिंडे पुरावैज्ञानिक ने बताया कि हमारे पूर्वज विदेश से नहीं आये थे। कम से कम 12000 वर्ष पूर्व भारतीय एवं नीयोलिथिक इरानियों के पूर्वज एक ही थे, उपरांत भारतीय घटक अलग हुआ था।

उनका कथन–'Late Neolithic Iranians and Indians Shared a Common ancestory, which split over 12000 years ago, the Study itself in based on 'An Ancient Harappn Genome,' The DNA of a woman from Rakhigarhi who lived approximately 5000 years ago, prof Shinde said the team had both archaeological and Genetic evidence to be sure of its findings.'

विशेषज्ञों ने राखागढ़ी से प्राप्त अनेक खोपड़ियों में से दो पर कम्प्यूटेड रोमोग्राफी डाटा द्वारा क्रेनोफेशियल रिकन्सट्रक्शन तकनीक का उपयोग किया था। जिससे सिंधु घाटी सभ्यता के लोग कैसे दिखते थे, पता चल सका है। इस शोध में भारत के अतिरिक्त दक्षिण कोरिया एवं ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने भी कार्य किया था।

संगमेश्वर मंदिर का नन्दी

1200 वर्ष प्राचीन यह शिव मंदिर दो नदियों के संगम के समीप पुणे से 40 कि.मी. दूरी पर स्थित था। इसमें की गई नक्काशी अति सुन्दर थी। काले पत्थर के नन्दी के ऊपर दो सर्प बने थे, जिनके फण उठे हुए थे। इस प्रकार की प्रतिमायें बहुत कम हैं। सर्प बनाने का तात्पर्य स्पष्ट नहीं है। इसी प्रकार का नन्दी मैंने चावण्ड (जि. उदयपुर) से 10 किमी. दूरी पर स्थित

एक मंदिर में देखा था, यह एक ग्राम में स्थित था। इसी से सटे एक कमरे में पूजा हेतु पत्थर से तराशे अनेक सर्प रखे थे, जिनके एक से अधिक फण थे।

अधर में झूलती तीर्थंकर पार्श्वनाथ मूर्ति

नेमगिरि पहाड़ी पर एक जैन तीर्थस्थल (महा.) स्थित है, जो कि अत्यंत प्राचीन बताया जाता है। पूर्व में यह मंदिर प्रकृतिक कारणों से भूमि में धंस जाने के कारण नहीं दिखता था। फिर किसी भक्त को इसके संबंध में स्वप्न हुआ था और इसे खुदाई कर निकालने पर यह फिर से व्यवहार में आने लगा। औरंगजेब के आक्रमण के समय मंदिर को तो क्षति हुई थी, किन्तु मूर्तियां सही-सलामत बच गई। मंदिर का पुनः निर्माण किया गया। यहां बड़े आकार की काले पत्थर की मूर्तियां हैं– प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ, नेमीनाथ एवं पार्श्वनाथ। पार्श्वनाथ की मूर्ति 9 टन वजन की है, आक्रमण से पहले मूर्ति प्लेटफार्म से उठी हुई हवा में झूलती थी, इसके नीचे करीब 1 सेमी. चूना मसाला लगा दिया गया था। वर्तमान में चारों ओर से उक्त मसाले को खुरच दिया गया एवं बहुत थोड़े स्थान पर ही मसाला दिखता है, जो कि 9 टन की मूर्ति को सम्हालने के लिए सक्षम नहीं है। आदिनाथ की मूर्ति में सिर के केश भी बने हैं, इसी प्रकार की मूर्ति उदयपुर के कांचवाले जैन मंदिर में भी है। नेमगिरि, जिन्तूर जि. परबनी, महाराष्ट्र में स्थित है। एक अन्य अधर में झूलती पार्श्वनाथ मूर्ति म.प्र. व महा. की सीमा पर स्थित सिरपुर में है, इसे 'अंतरिक्ष पार्श्वनाथ' के नाम से जाना जाता है। यहां भी, कहा जाता है कि पहले मूर्ति एवं बेदी में अधिक ऊंचाई थी, जो कालांतर में कम हो गई, इसके नीचे से कागज आरपार अभी भी किया जा सकता है।

मार्कण्डेय शिव मंदिर

8वीं शताब्दी का यह प्राचीन मंदिर उत्तर वाहिनी वैन गंगा के तट पर, विदर्भ क्षेत्र के गढ़चिरौली में स्थित है। पूर्व में इसके समीप 24 अन्य मंदिर स्थित थे, वर्तमान में 14 हैं, मुख्य मंदिर का शिखर भी काल के साथ ध्वस्त हुआ, पुनः इसका निर्माण किया जा रहा है। इस मंदिर की शिल्प कला दर्शनीय है, सुरसुन्दरी अप्सरायें, देव, देवी, रामायण एवं महाभारत के प्रसंग भी बनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त खजुराहो जैसी ही अनेक काम प्रसंग की मूर्तियां हैं। व्याल (अर्ध पशु, अर्ध मनुष्य/दो भिन्न पशु) भी बने हुए हैं। 14 मंदिरों में अनेक मंदिरों के नाम 12 ज्योतिर्लिंगों के भी हैं, गणेश मंदिर एवं ध्यान मंदिर भी हैं। कुछ शिलालेख भी उपलब्ध हैं।

अम्बादेवी (म.प्र.) के शैल चित्र

अनेक राक शैल्टर, धारूल (जि. बेतूल) की सतपूड़ा पर्वत माला में स्थित हैं, जिनकी खोज जनवरी 2007 में डॉ. इनगोले ने की थी, पुरा-वैज्ञानिकों ने इनका काल 20-25 हजार वर्ष आंका था। कुछ दूरी पर गुफा में स्थित अम्बादेवी का प्राचीन मंदिर है। ये शैल्टर सुरंग/गुफा सरीखे नहीं हैं। ऊपर की चट्टान आगे की ओर निकली हुई है एवं उसके नीचे का भाग अंदर की ओर है। प्रतीत होता है कि आदि मानव ने ही कम कठोर पत्थर को तराश कर रहने का स्थान निर्मित किया होगा। एक स्थान पर भूमि से कुछ ऊपर एक छेद दिखा है, जो कि पूर्व में प्राकृतिक जल स्रोत रहा होगा। शैल चित्र कई प्रकार के हैं–1. गेरूये रंग से बनी आकृतियां, इनमें एक शतुरमुर्ग की भी है। 2. गेरूए रंग से ही निर्मित ज्यामिति पैटर्न, जैसे रेखाओं के समायोजन से चौकोर का निर्माण। कई पैटर्न पेचीदा भी हैं। 3. पत्थर खुरच कर बनाई आकृतियां, इनमें एक ऐसे जीव की आकृति भी है, जिसकी ऊंचाई कम है एवं 4 से अधिक पैर हैं (कानखजूरा हो सकता है)।

इराक में भारतीय सभ्यता के चिह्न

प्राचीन समय में इराक को मेसोपोटामिया कहा जाता था, यहां इस्लाम अरब आक्रमणकारियों द्वारा 1400 वर्ष पहले पहुंचा था। इराक में एक गणेश मूर्ति मिली थी सुलेमानिया की एक पहाड़ी पर एक मूर्ति उकेरी हुई थी, जिसमें राम धनुष लिये हैं और भूमि पर हनुमान बैठे हैं, इसे 6000 वर्ष प्राचीन आंका गया है। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय सभ्यता इतने वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में रही होगी।

महत्वपूर्ण बौद्ध स्तूप

बौद्ध धर्म प्रवर्तक बुद्ध एवं उनके शिष्यों के स्मारक के रूप में स्तूप बनाये गये हैं, जिनके भीतर उनके शरीर की हड्डी अथवा व्यवहार की गई किसी वस्तु को दबा दिया जाता है। इनका आकार मंदिर से भिन्न

होता है, ऊपरी भाग गोलाकार होता है।

1. जेतवनारमया श्रीलंका : यह 60 मीटर ऊंचा, केवल पक्की ईंटों से बना है, गोलाकार ऊपरी भाग पर एक चारदीवारी और उसके भीतर एक बेलनाकार स्तम्भ है, एक अनुमान के अनुसार इसके निर्माण में 93 लाख ईंटें 1700 वर्ष पूर्व उपयोग की गई थी। नीचे के गोलाकार प्लेटफॉर्म में पत्थर भी लगे हैं, जिन पर आकृतियां उकेरी गई हैं। इस प्लेटफार्म के दोनों ओर एक-एक द्वार है, जिनसे सीढ़ियां नीचे की ओर जाती प्रतीत होती हैं। द्वार तार के द्वारा बंद कर दिया गया है। एक द्वार के बाहर पत्थर पर सप्तफणी नाग बना है, एक अन्य में सर्प मनुष्य रूप में दर्शाया गया है, जिसके पांव द्वार के भीतर जाने की दिशा में मुड़े हुए हैं। स्तूप के समीप ही एक मंदिर है, इसमें बुद्ध की लेटी हुई प्रतिमा है, जिसके ऊपर के भाग में हिन्दू देवताओं की मूर्तियां बनी हैं– शिव, गणेश, पार्वती इत्यादि। दूसरे भाग में अन्य मूर्तियां हाथ जोड़े खड़ी हैं, जिनकी कलाई पर घड़ी जैसा कोई आभूषण बंधा है। इन मूर्तियों में कार्तिकेय भी थे।

2. केसरिया स्तूप : इस स्तूप को लार्ड कनिंघम ने खोजा था, फिर 1988 में पुरातत्व विभाग ने खुदाई की थी। यह पटना से 110 किमी. दूरी पर पूर्व चम्पारण (बिहार) में स्थित है। इसका काल ईसा उपरांत 200-170 वर्ष आंका गया था। इसकी पूर्व की ऊंचाई 47 मीटर थी जो समय के साथ क्षतिग्रस्त होने पर 37 मी. रह गई। इसके उपरांत इसकी ऊंचाई भूकम्प के कारण 31.5 मी. रह गई। यह स्तूप इस कारण से महत्वपूर्ण है कि यह बुद्ध की अंतिम यात्रा से संबंद्ध है, वे यहां वैशाली से पहुंचे थे, अनेक भक्त उनके साथ यहां तक पहुंच थे, बहुत कठिनाई से वे वापस लौटे, कहा जाता है कि उन्होंने उन लोगों को अपना भिक्षा पात्र दे दिया था, जिसके यहां दबे होने की संभावना बताई गई है। इंटरनेट पर यह पात्र देखा जा सकता है जो किसी संग्राहलय में रखा हुआ है। इसके पास अनेक प्राचीन सिक्के एवं वस्तुएं प्राप्त हुई थीं। यह स्तूप सांची स्तूप से दुगने आकार का है। इसका निर्माण लिच्छवियों ने कराया था। इस स्तूप में पांच स्तर पर मंडल थे, जिसकी परिधि 120 मी. थी। 7वीं सदी में चीनी पर्यटक Hien Tshang ने भी इस स्तूप को देखा था।

3. बोरोबदर स्तूप : यह जावा द्वीप, इंडोनेशिया में स्थित है, इसका निर्माण 9वीं सदी में किया गया था एवं यह अत्यंत भव्य था। इसमें नौ प्लेटफार्म थे, जिनमें छह चौकोर थे, तीन गोलाकार थे, ऊपर एक गुम्बद था। इसकी सजावट हेतु 2672 पैनल (उकेरे हुए पत्थर) एवं बुद्ध की 504 प्रतिमायें लगाई गई थी। गुम्बद की परिधि में 72 बुद्ध मूर्तियां थीं, जिन्हें झरी Perforated छोटे स्तूप के भीतर रखा गया था।

4. सारनाथ (धामेक) स्तूप : सारनाथ वाराणसी से 10 कि.मी. दूरी पर स्थित है, यहां पर बुद्ध ने अपना पहला उपदेश/प्रवचन दिया था। इस स्तूप का निर्माण ईसापूर्व 249 में सम्राट अशोक ने करवाया था, इसके उपरांत भी इसका विस्तार हुआ था। यहां पर एक अशोक स्तम्भ भी बना हुआ है। स्तूप ठोस है, ईंटों से निर्मित, इसकी ऊंचाई 43.6 मी. एवं व्यास 28 मीटर है। बौद्ध इसकी परिक्रमा करते हैं। स्तूप में नक्काशी किये हुए कुछ पत्थर भी लगे हैं।

5. साँची स्तूप : मध्य प्रदेश में स्थित यह स्तूप ईंटों से निर्मित हुआ था, ईसा पूर्व तीसरी सदी में सम्राट अशोक ने बनवाया था। इसका आकार आधी गेंद जैसा है, ऊपर से गोलाई लिए हुए। ईसा पूर्व दूसरी सदी में यह क्षति ग्रस्त हुआ था, जिसके उपरांत इसका जीर्णोद्धार एवं विस्तार हुआ, अब इसे बड़ा स्तूप नं.1 कहा जाता है। इसकी चौड़ाई 37 मी. एवं ऊंचाई 17 मी. है। इसके बीच में प्रतीक रखा गया था। इस गुम्बद के ऊपर एक चौकोर क्षेत्र में रेलिंग है, जिसके भीतर एक स्तम्भ है। बौद्ध इसकी परिधि में परिक्रमा करते हैं। इसके बाहर की ओर कम ऊंचाई की चारदीवारी है, जिसमें चार कलात्मक द्वार बने हुए हैं, जिनमें पत्थरों पर बुद्ध के जीवन तथा पिछले जन्म की घटनायें प्रदर्शित की गई हैं। इनमें शुभ चिह्न भी बनाये गये हैं। इन पर दानदाताओं के नाम भी लिखे गये हैं, जिनमें विदिशा के हाथीदांत के कारीगरों का प्रमुख स्थान है।

❐❐

जीतेंद्रनाथ जौहरी
ई-234, सेक्टर-14, हिरणमगरी,
उदयपुर (राज.)-313002, मो. 8003188087

प्रतिस्वर

वैचारिकी के भाग 39 अंक 2 में प्रकाशित प्राचीन भारतीय उत्कीर्णन-अंकन में 'श्रीराम' शीर्षक विस्तृत निबंध में (पृष्ठ 33-53) श्री ललित शर्मा ने प्राचीन भारतीय कलाओं में श्री राम तथा उनसे संबंधित वाल्मीकि-रामायण में वर्णित नाना दृश्यों, प्रसंगों तथा आख्यानों के बहुविध अंकन का जो प्रमाणिक तथा बोधप्रद निरूपण किया है, वह उनके गहन अध्ययन तथा शोधवृत्ति का परिचायक है। मूर्तिकला, चित्रकला तथा मुद्राशास्त्र के बृहत् फलक पर व्याप्त अनंत सामग्री का एक निबंध के कलेवर में समाहार करना कितना श्रमसाध्य है और उसके लिए कितना कौशल और अध्यवसाय अपेक्षित है, सच्चा शोधक ही उसके आयामों का आकलन कर सकता है। ललित जी ने देश-विदेश में स्थित ऐसे ज्ञान-भंडार को व्यवस्थित रूप में सुलभ बनाकर जो गुरुतर कार्य किया है, उसके लिए वे अभिनंदन के पात्र हैं। रामकथा में अनुस्यूत महान् आदर्शों, मर्यादाओं, जीवन मूल्यों तथा त्याग-बलिदान, धैर्य-औदार्य, समता-सहिष्णुता आदि प्रेरणादायक उदात्त भावों ने भारतीय जनजीवन को इतनी गहराई तक प्रभावित तथा अनुप्राणित किया है कि एक ओर जहां श्रीराम समाज के रोम-रोम में रम गये हैं, वहां उनके आदर्श चरित के आधार पर विविध भाषाओं में विशाल राम-साहित्य का प्रणयन हुआ है। मानव की सौंदर्यवृत्ति की प्रतीक कला भी उसके सर्वातिशयी प्रभाव से ओत-प्रोत रही है। श्री ललित की इस मनोरम कृति से यह निर्भांत प्रमाणित है। यदि राम-संबंधी समग्र शिल्पराशि को एकत्र कर दिया जाए तो पता नहीं उससे कितने संग्रहालय खड़े हो जाएं।

भारतीय मूर्तिकला में रामायण का अंकन सुदूर अतीत में आरम्भ हो गया था। श्री एस.सी. काला का यह कथन कि ईसा-पूर्व काल में अंकित/निर्मित कोई राम-संबंधी शिल्प अद्यावधि उलब्ध नहीं हुआ है, विज्ञात तथ्यों के विपरीत है। उन्होंने कौशाम्बी से प्राप्त तथा वर्तमान में प्रयाग संग्रहालय में विद्यमान जिस मृदफलक को स्त्रीवाही पुरुष के रूप में चिह्नित किया था, सुधी कलाविदों के अनुसार उस पर रावण द्वारा सीता-हरण का (दारुण) प्रसंग अंकित है और उसकी रचना शुंगकाल अर्थात ई.पू. द्वितीय-प्रथम शताब्दी में हुई थी।[1] इससे पूर्व का कोई रामायण-संबंधी शिल्प प्रकाश में नहीं आया है। अतः प्रस्तुत फलक राम-शिल्प के अंकन का प्राचीनतम उदाहरण माना जाता है। ललितजी ने इसका निबंध में उल्लेख अवश्य किया है।[2] किन्तु पृष्ठभूमि तथा विवरण से रहित होने के कारण वह निष्प्राण-सा प्रतीत होता है।

कौशाम्बी ने जिस काल में प्रथमशः रामायण का पूर्वोक्त प्रसंग अंकित कर अनन्य गौरव प्राप्त किया था, उसी कालखंड में हरियाणा के अति प्राचीन वैभवपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र सुध्न (वर्तमान सुध, जिला यमुनानगर) ने रामायण के प्राणभूत श्रीरामकी प्राचीनतम उपलब्ध मृण्मय मूर्ति की रचना कर कला-जगत को अनुपम उपहार दिया था। सांचे से निर्मित यह मृण्मय मूर्ति शुंगकालीन कला की भव्य कृति है। अल्पाकार नेत्रों, गोल-मटोल कपोलों, मनोहर ओष्ठों, सुरचित नासिका तथा रम्य आनन से सुशोभित श्रीराम के मुखमंडल की सौम्यता सुखद तथा

आकर्षक है। बायीं भुजा खंडित है। दायां हाथ कंधे पर रखा हुआ है, जिस पर एक गड्ढा-सा बना हुआ है। यह संभवतः धनुष की कोटि को उसमें खोंसने के लिए बनाया गया था। बायें कंधे के पीछे बाणों से भरपूर तूणीर (तरकश) अंकित है, जो मूर्तिकला में श्रीराम की विशिष्ट पहचान है। केशराशि सिर पर बायीं ओर गोलाकार बद्ध है, जिसे पुष्पदाय से कस दिया गया है। कौशाम्बी का उक्त फलक तथा सुध से प्राप्त मृण्मय मूर्ति समकालीन रचनाएं हैं तथा राम-शिल्प के प्राचीनतम (ई.पू. द्वितीय-प्रथम शताब्दी) अंकन के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि मूर्तिकला के इतिहास में हनुमानजी का अंकन भी प्रथमशः सुध के कलाकारों द्वारा किया गया था। सुध्न या सुध से मारुति की मूर्तियों के कई शीर्ष भाग उपलब्ध हुए हैं, जिनकी अपनी कलात्मक विशेषताएं हैं। उनमें से एक हनुमानजी की दूसरी-तीसरी शताब्दी में निर्मित प्राचीनतम मूर्ति का भाग है।[3]

हरियाणा के सन्धाया ग्राम (जिला यमुनानगर) से उपलब्ध अघोभाग, भुजाओं और शीर्ष से विहीन एवं छन्नवीर धारी तथाकथित योद्धा की मृणमय मूर्ति वस्तुतः श्रीराम की गुप्तकालीन मूर्ति है। दाएं कन्धे के पीछे अंकित तूणीर से यह सुतरां स्पष्ट है। गुप्तकालीन कला में राम को तूणीर और छन्नवीर के साथ ही अंकित किया गया है। सन्धाया से ही प्राप्त एक मृदफलक पर श्रीराम को स्वयं को नागपाश से मुक्त करने के लिये जद्दोजहद करते दिखाया गया है। फलक पर नाग के पांच फण अंकित हैं। श्रीराम की मुख-मुद्रा से असाध्यता का भाव झलक रहा है।[4]

मृणमय फलक इष्टिका पर अंकित नचार खेड़ा (जिला-जीन्द) के श्रीराम कला-जगत् में सुप्रसिद्ध हैं। गुप्तकालीन ब्राह्मी अक्षरों में, बायीं जांघ के निकट लिखित 'राम' शब्द से उनकी पहचान सुनिश्चित है। श्री ललित शर्मा ने अपने निबन्ध में प्रस्तुत शिल्प का, शायद उसके सुविख्यात होने के कारण चलता-सा संकेत किया है। शिल्प में श्रीराम ने योद्धा की भांति छन्नवीर धारण किया हुआ है और उनका परिधान गुप्तकालीन सम्राटों के परिधान उनकी मुद्राओं पर अंकित के समान हैं। मूर्ति की रचना इस कुशलता से की गयी है कि उसे देखने मात्र से श्रीराम के पराक्रमी व्यक्तित्व का बोध हो जाता है।

हरियाणा से श्रीराम की पाषाण की स्वतंत्र मूर्ति प्रकाश में नहीं आई है। इस दृष्टि से पिंजोर (जिला पंचकूला) से प्राप्त प्रस्तर चौखट पर अंकित राम की अल्पाकार मनोरम मूर्ति का निजी महत्व है। श्रीराम के बाएं हाथ में धनुष है जबकि दाहिना हाथ कटि पर रखा हुआ है। दायें कंधे के पीछे तूणीर भी दिखाई देता है। चौखट पर अन्यत्र उत्कीर्ण वराह की मूर्ति से प्रतीत होता है कि राम को भी यहां विष्णु के एक अवतार के रूप में अंकित किया गया है।[5]

श्री ललित शर्मा ने प्रदेश-वार विवरण में हरियाणा के नचारखेड़ा आदि से प्राप्त सुविज्ञात राम शिल्पों की ही चर्चा की है। उसमें सुध, सन्धाया, पिंचोर आदि के उपर्युक्त शिल्पों का संकेत भी नहीं है। राम तथा रामायण केवल मूर्तिकारों की कला के ही प्रिय विषय नहीं रहे हैं, प्राचीन मुद्राओं पर भी उन्हें ससम्मान अंकित किया गया है। ललितजी के अनुसार कुषाणवंशीय हुविष्क से आरम्भ होकर अनेक परवर्ती शासकों ने श्रीराम को नाना विधि से अपनी मुद्राओं पर अंकित किया है। कुछ साहसी शोधकों ने तो उन्हें आहत मुद्राओं पर भी ढूंढ निकाला है।[6] कुछ भी हो, अकबर द्वारा अपने शासनकाल के अंतिम वर्ष में जारी की गई 'राम सीय' प्रकार की सोने-चांदी की मुद्राओं का गौरव सर्वोपरि है। उनका यह गौरव केवल इसलिए नहीं है कि उन पर एक मुस्लिम धर्मावलम्बी शासक द्वारा कलमे के स्थान पर राम और सीता के चित्र तथा उनके ऊपर देवनागरी में 'राम सीय' शब्द अंकित करवाए गये हैं, बल्कि उनसे प्रेरणा पाकर परवर्ती काल में देवस्थान आदि में दान-भेंट के लिए उन धार्मिक पदकों का चलन हुआ, जिन्हें आम भाषा में टंका कहते हैं। हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों ने ऐसे टंके प्रचलित किए हैं। उन पर बैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध आदि सम्प्रदायों के आराध्य राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, कालिका, राधा, बुद्ध, हनुमान आदि देवों के चित्र अंकित हैं। श्री ललित ने निबन्ध में उन टंकों की भी चर्चा की है, किन्तु वे उनके उद्भव

के स्रोत का उल्लेख करने से चूक गये हैं। हमारे संग्रह में दो अति विशिष्ट रामटंके विद्यमान हैं। उनमें से एक टंके पर राम और लक्ष्मण को मुसलमानों के प्रिय परिधान, घुटने के नीचे तक का अचकन पहने अंकित किया गया है, दूसरे पर राम और सीता को रेखाओं द्वारा आकृति प्रदान की गयी है। सिख टंकों पर गुरुओं का अंकन किया गया है, जैसे एक टंके में एक ओर गुरुनानक अपने शिष्यों, बाला और मरदाना के साथ सबद गान कर रहे हैं, दूसरी ओर गुरु गोविन्द सिंह पूर्ण गरिमा के साथ विराजमान हैं। हमारे संग्रह में एक टंका-नुमा मुस्लिम पदक भी विद्यमान है। उसके अग्रभाग पर एक वर्ग में कलमा अंकित है। वर्ग के चारों ओर चार खलीफाओं के नाम हैं। पृष्ठभाग पर मदीना की मस्जिद बनी है, जिसके नीचे उर्दू में 'मस्जिदे मदीना' लिखा हुआ है।

संदर्भ

1. Kala : The Journal of Indian Art History Congress, Vol. XVI, 2010-2011, P.17. **2.** वैचारिकी, 39/2, P.33. **3.** Kala, of Cit. P.17. **4.** Devendra Handa : Sculptures from Haryana, Indian Institute of Advanced Study, Shimla, Aryan Book International, New Delhi, 2006, P. 106-107. **5.** Indib, P.111. **6.** वैचारिकी, 39/2, P.46-47.

❑❑

–डॉ. सत्यव्रत वर्मा
7/34, पुरानी आबादी,
नामदेव फ्लोर मिल के पास,
श्रीगंगानगर-335001
मो. 9461281112 / 9828654943

'वैचारिकी' सितम्बर अक्टूबर 2023 के पृष्ठ-95 में 'हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान' पुस्तक के लोकार्पण के अवसर पर पढ़े गये रपट के प्रकाशन में कुछेक त्रुटियां रह गयी हैं। कृपया इन्हें सुधार कर पढ़ें–**1.** निर्वाचित हिंदी गल्पों का प्रकाशन सन् 1995 और 'भारतीय भाषा गल्पों' का 1998 है। इनका प्रकाशन क्रमशः– देज पब्लिशर्स एवं मॉडेल पब्लिशिंग हाउस ने किया है। **2.** बांग्ला की 'देश' पत्रिका के संपादक– श्री सागरमय घोष थे। उनके संपादन काल में यह पत्रिका साप्ताहिक थी, जिसके प्रत्येक माह के प्रथम अंक में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की एक-एक कहानियां छपती रहीं। यह सिलसिला लम्बे समय तक चला। इन कहानियों का प्रकाशन 'देज पब्लिशर्स ने 1995 में और मॉडेल पब्लिशिंग हाउस ने 1998 में किया।

निर्वाचित हिन्दी गल्पों के कहानीकार– फनीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रसाद प्रभाकर, गिरीश अस्थाना, भीष्म साहनी, शिवानी, मन्नु भंडारी, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, रमेश बक्षी, दूधनाथ सिंह, हृदयेश, अमरकांत, ज्ञानरंजन, हिमांशु जोशी, मृदुला गर्ग, सिद्धेश। (प्रकाशक- देज पब्लिशर्स, संपादक- सुनील गंगोपाध्याय एवं सिद्धेश, प्रकाशन-1995)। **3.** भारतीय भाषाओं के गल्पों के रचनाकार एवं भाषाएं– वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य, शीलभद्र (असमिया), अली बाकर, इस्मत चुगताई (ऊर्दू), मनोज दास, शांतनु कुमार आचार्य (ओड़िया), शांतिमय चक्रवर्ती (कक-बरक), यू.आर. अनन्तमूर्ति, पी. बंकेश (कन्नड़), अवतारकृष्ण रहबर, सूफी गुलाम मुहम्मद (कश्मीरी), पुण्डलीक नारायण नायक (कोंकणी), गुलाबदास ब्रोकर, चन्द्रकान्त बक्षी (गुजराती), मनहर चौहान (छत्तीसगढ़ी), ललित मगोत्रा (डोगरी), केतु विश्वनाथ रेड्डी (तेलगु), मोहम्मद इमासिन (तमिल), शरद खेत्री (नेपाली), जसबीर भुल्लर, शांता प्रीतम (पंजाबी), सुनील गंगोपाध्याय (बांग्ला), एन. कुंजमोहन सिंह (मणीपुरी), कमला दास, मणिमय मुकुन्दन (मलयालम), अनन्त बामन बर्टी, गंगाधर गाडगिल (मराठी), सी. शुमास्लु आइया (मिजोरम), जयनाग (मुंडारी), राजकमल चौधरी (मैथिली), रामेश्वर दयाल श्रीमाली (राजस्थानी), रूपचंद हेमब्रम (सांवताली), ईश्वर चंद्र, लक्ष्मी रिलानी (सिंधी), गिरीश अस्थाना, सिद्धेश (हिंदी)। (प्रकाशक- मॉडल पब्लिकेशंस, संपादक- सिद्धेश-मृत्युंजय सेन, प्रकाशन-1998)।

❑❑

–सिद्धेश, कोलकाता
(मो. 9830859660)

आप द्वारा संपादित भारतीय संस्कृति-साहित्य पर आधारित **'वैचारिकी'** पत्रिका पाकर बहुत खुशी होती है। भारतीय विद्या मंदिर ने इसे प्रकाशित कर अद्‌भुत कार्य कर रहा है। समय-समय पर पढ़कर लाभान्वित होता हूं। ऐसी सुन्दर, साहित्यिक व ज्ञानवर्धक पत्रिका के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

❐❐

—कुंज बिहारी अग्रवाल
मैनेजिंग डायरेक्टर
रूपा एण्ड कम्पनी लि., मेट्रो टावर,
1, हो-ची-मिह्न-सरणी,
कोलकाता-700071
फोन : 033-40573100, ईमेलः kba@rupa.co.in.

नवंबर-दिसम्बर 2023 का अंक हाथ में है। गांधी को न जानते, समझते और बूझते उन पर बार-बार झूठे इल्जाम लगाना, उन्हें बदनाम करना, उनके लिए अपशब्दों का प्रयोग करना, उनके हत्यारों को महिमा-मंडित करना आज केवल आम बात ही नहीं हो गई है बल्कि ऐसा कर अनेक लोग गौरव का अनुभव तक करते हैं। ऐसे मौसम में चंद शब्दों में जिस प्रकार आपने उनके जीवन की कुछ घटनाओं को बिना किसी लाग-लपेट के उजागर किया है, ऐसा लगा जैसे कि राजस्थान की तपती रेत पर चलती लू के मध्य किसी ने शीतल जल से तन-मन भिगो दिया। आपके इस प्रयास के लिए सविनय नमन।

❐❐

—महेश लोधा, कोलकाता
इमेल : mahesh.lodha@gmail.com

The journal **'Vaichariki'** is a good periodical and the articles therein are educational and informative. We heartily congratulate you and your editorial team, as well as all others who are working for the cause. May the Almighty Lord give all the necessary strength, and support in this Knowledge-sacrifice (ज्ञान-यज्ञ). With best wishes, regards, and prayers for the welfare of you and yours.

❐❐

- Swami Japasiddhananda
Head, Department of Sanskrit and Philosophy
School of Indian Heritage,
Prajna Bhavan
Ramakrishna Mission Vivekananda Educational and Research Institute (RKMVERI) (a Deemed University),
P.O.- Belur Math
District - Howrah-711202, West Bengal,
Phone: 033-26549999

वैचारिकी नवम्बर-दिसम्बर 2023 अंक मिल गया है। पढ़ रहा हूं। मधु बाबू प्रख्या का आलेख अवधारणाओं, भौतिकी तथा वारणेय अभिव्यक्तियों के समुच्चय में बहुत जटिल विश्लेषण है। पढ़ते-पढ़ते बार-बार रुकना पड़ता है जटिलताओं के सामने! ..... पढ़ रहा हूं। जोधाबाई के संदर्भ में डॉ. महेन्द्र भानावत के शोधपरिपूर्ण तथ्य राजपूतों के मुगलों से संबंधों के तात्कलिक आवश्यकता की मौलिकी की तरफ ध्यान आकर्षित करते हैं।

❐❐

—बी.एल.माली 'अशांत'
3/343, मालवीय नगर, जयपुर (राजस्थान)

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी. आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक- डॉ. बाबूलाल शर्मा।

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

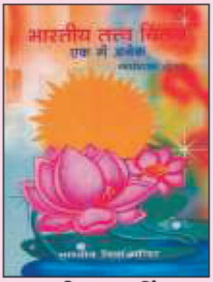

भारतीय तत्त्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

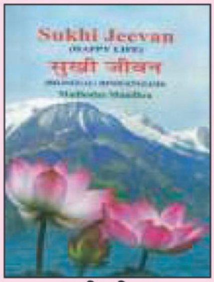

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

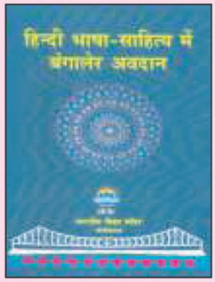

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

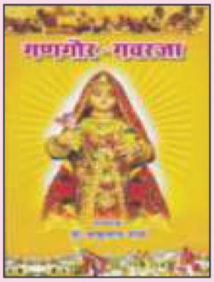

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

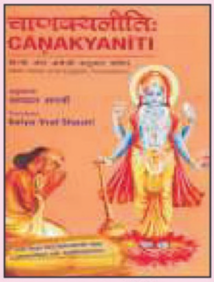

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

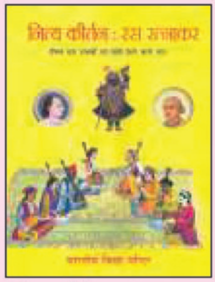

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

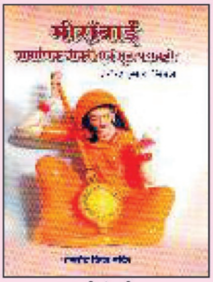

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

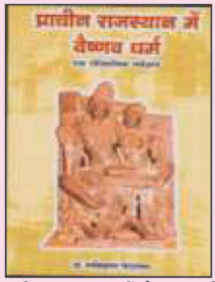

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

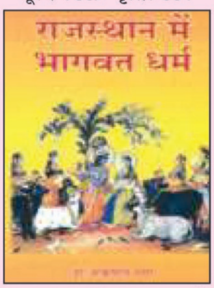

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

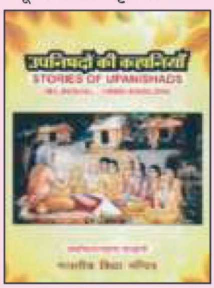

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

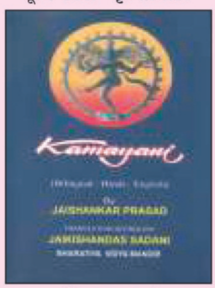

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

G.D.M. Public School　Mob. 7977715540
Pugal Road, DIET. Office, Bikaner
(Rajsthan) Pin - 334004
E-mail : gdmpublicschool1342@gmail.com

सेठ गिरधरदास मूंधड़ा इंगलिस मीडियम स्कूल का विशाल भवन।

मुनीश्री दिनेश कुमारजी ठाणा को भारतीय विद्या मंदिर की विभिन्न गतिविधियों से अवगत कराते हुए डॉ. बी.डी. मूंधड़ा परिलक्षित हैं।

अणुव्रत अमृत महोत्सव सम्पूर्ति समारोह साउथ सिटी सभागार कोलकाता में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. बी.डी. मूंधड़ा।

अध्यक्ष डॉ. बी.डी. मूंधड़ा को जैन मुनीश्री द्वारा प्रशस्ति पत्र प्रदान करते हुए, साथ में शंकरलाल सोमानी परिलक्षित हैं।

अध्यक्ष डॉ. बी.डी. मूंधड़ा द्वारा डॉ. पी.के. सिंह, (आईआईटी बीएचयु, सिविल इंजीनियरिंग विभाग) एवं दायीं तरफ प्रो. डी.पी. मिश्रा (एनआईटीटीटी एवं रिसर्च कोलकाता) को उपहारस्वरूप पुस्तकें प्रदान करते हुए, साथ में सचिव शंकरलाल सोमानी।